प्रकाशक —

मंत्री-श्री जैन-हितेच्छु श्रावक मंडल,

रतलाम [मालवा]

श्री जैन-सिद्धान्त कहता है कि :—

सव्वे जीवा वि इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं ।

अर्थात्—सर्व जीव जीना चाहते है, मरना नहीं ।

अन्य दर्शनकार भी कहते है :—

प्राणिनां रक्षणं धर्मः, अधर्मः प्राणिनां वधः ।
तस्माद्धर्मं सुवि ाय, कुर्वन्तु प्राणरक्षणम् ॥

अर्थात्—प्राणियों के प्राण की रक्षा करना (मरते हुए को बचाना) धर्म है और प्राणियों के प्राणों का विनाश करना (हिंसा करना) अधर्म है, पाप है। इस प्रकार धर्म और अधर्म को जानकर प्रत्येक प्राणी के प्राणों की रक्षा करे।

मुद्रक :—

श्री जालमसिंह के प्रबन्ध से

श्री गुरुकुल छापाखाना, फतहपुरिया बाजार, ब्यावर में मुद्रित।

नुवाद की ोर से:

जैनधर्म अहिंसाप्रधान धर्म है। मरते ए प्राणी की प्राण-रक्षा करना जैनधर्म का मुख्य सिद्धान्त है। रक्षारूप दया के लिए ही जैनागम की रचना हुई है। प्रश्न व्याकरण सूत्र के प्रथम 'वरद्वार मे कहा है:—

'व्व गजीवरक दयट्ठयाए पाव णं वया

सुकहियं'

अर्थात्—जगत् के सम्पूर्ण जीवो की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन (आगम) फरमाया है। अत: जीव-रक्षा रूप धर्म जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है। किन्तु इस विषम अवसर्पिणी काल के प्रभाव से छ वर्षो पहले भीषणजी नाम के एक व्यक्ति हुए थे। यद्यपि उन्होने पूज्य श्री रघुनाथजी महाराज साहब (बाईस सम्प्रदायानुयायी) के पास दीक्षा ली थी किन्तु फिर मिथ्यात्व मोहनीय के उदय से उनकी श्रद्धा विपरीत होगई। इस कारण से पूज्य श्री ने उनको अपने गच्छ से बाहर निकाल दिया। भीषणजी दया और दान मे पाप की प्ररूपणा करने लगे और फिर इन्होने तेरह पन्थ नामक एक नवीन मत चलाया। इनके चौथे पाट पर जीतमलजी स्वामी हुए। उन्होने इस मत को पुष्ट करने के लिए थली प्रान्त की मारवाड़ी भाषा मे भ्रमविध्वंसन नामक एक ग्रन्थ बनाया और छ ढालें जोड़ी, तेरहपन्थी साधु इन्हीं ढालो को गा-

गाकर थली प्रान्त की भोली जनता को अपने जाल में फंसाने लगे।

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्यश्री जवाहरलालजी महाराज साहब इस समय में एक महान् प्रभावशाली, प्रतिभा सम्पन्न, ज्योतिर्धर, युगप्रधान आचार्य हुए हैं। उन्होंने जनता के उपकारार्थ और इनके भ्रमजाल को तोड़ने के लिए एवं सत्य सिद्धान्त का प्रतिपादन करने के लिए 'सद्धर्म मण्डन' और 'अनुकम्पा-विचार' ये दो ग्रन्थरत्न बनाये। इनके अध्ययन से थली प्रान्त की जनता का भ्रम दूर होकर शनैः शनैः वह सत्य मार्ग की ओर अग्रसर होने लगी। थली प्रान्त में अपने मत को किलेबन्दी को इस प्रकार ढसते देखकर ये भीषण-मतानुयायी तेरहपन्थी साधु गुजरात, काठियावाड़ और पंजाब आदि प्रान्तों में अपने पैर बढ़ाकर वहाँ जाल फैलाने लगे। तब वहां से सद्धर्म मण्डन और अनुकम्पा-विचार, इनकी मांग आने लगी। सद्धर्म मण्डन की भाषा तो शुद्ध हिन्दी है। अतः किसी भी प्रान्त की जनता को समझने में कोई कठिनाई नहीं होती, किन्तु 'अनुकम्पा-विचार' नामक ढालों की पुस्तक पद्यमय होने से तथा उसकी भाषा मारवाड़ी होने से उसको समझने में कठिनाई आने लगी। इसलिए इस पुस्तक के भाव सर्व-साधारण जनता की समझ में सरलतापूर्वक आ जाय, इस बात को लक्ष्य में रखकर 'श्री हितेच्छु श्रावक मण्डल रतलाम' ने इसका गद्यमय अनुवाद करवाना निश्चित किया। तद्-नुसार मण्डल के मानद उपसभापति श्रीमान् बालचन्दजी सा० श्रीश्रीमाल ने इस पुस्तक का गद्यमय हिन्दी अनुवाद करने का कार्य मुझे सौंपा। अतः मैंने यह हिन्दी अनुवाद

किया है। आशा है अब स्वर्गीय श्रीमज्जवाहिराचार्य द्वारा विरचित इस 'अनुकम्पा-विचार' की ढालों के भावों को समझने में किसी भी प्रान्त की सर्व साधारण जनता को समझने में कोई कठिनाई न होगी।

श्रीमज्जवाहिराचार्य ाज इस भूतल पर विद्यमान नहीं है। अतः उनके द्वारा शास्त्रानुकूल रचित इन ढालों का अनुवाद करने में कोई त्रुटि रह गई हो अथवा उनका आशय स्पष्ट रूप से व्यक्त न हुआ हो या अर्थ विपर्यास हो गया हो तो इसका उत्तरदायित्व मुझ (अनुवादक) पर है। इस विषय में कहीं से भी सूचना मिलने पर आगामी आवृत्ति में उचित संशोधन कर दिया जायगा।

निवेदकः—

पं० घेवरचन्द्रजी बाँ या 'वीर त्र'

न्याय व्याकरण तीर्थ

जैन सिद्धान्त शा ी

बीकानेर
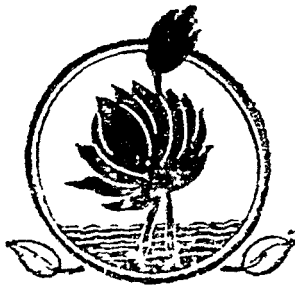
श्री जैन-हितेच्छु श्रावक-मण्डल, रतलाम

का

—: पदाधिकारी :—

प्रेसीडेन्ट—श्रीमान् सेठ हीरालालजी नांदेचा

वाइस-प्रेसीडेन्ट—श्रीमान् बालचन्दजी श्रीश्रीमाल

[illegible]ी—श्रीमान् सेठ बर्दीचन्दजी बरदभाणजी पीतलिया

सेक्रेटरी—सुजानमलजी तलेरा, न्यायतीर्थ

—: चालू प्रवृत्तियाँ :—

१—श्री धार्मिक परीक्षा बोर्ड का स[illegible]ालन

२—शिक्षण-संस्थाओं का [illegible]लन

३—निवेदन-पत्र का सम्पादन एवं प्रकाशन

४—साहित्य का सम्पादन एवं प्रकाशन

५—न्यायपूर्ण, सरल, सत्य सिद्धान्तों का प्रचार

—: सदस्य :—

५०१) एक मुश्त देने वाले वंशपरम्परा के सदस्य ।

१०१) ,, ,, आजीवन सदस्य ।

२) वार्षिक शुल्क देने वाले वार्षिक सदस्य माने जाते हैं ।
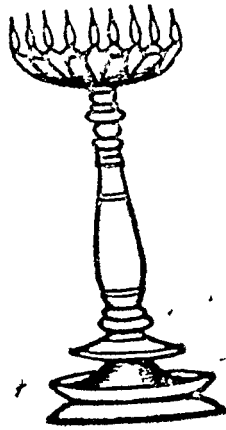
किंचिद्वक्तव्य

श्रमण भगवान् श्री महावीर स्वामी इस अवसर्पिणी का में अन्तिम तीर्थंकर हुए हैं। तीर्थंकर वे होते हैं जो चतुर्विध संघ की स्थापना करके तीर्थ की सुव्यवस्था करते हैं तथा प्राणीमात्र को बिना किसी भेदभाव के कल्याण का मार्ग दिखलाते हैं। भगवान् महावीर ने संसार को साम्यभाव, विश्वबन्धुत्व, समन्वय, स्याद्वाद और अहिंसा का पाठ पढ़ाकर केवल मनुष्य-जाति का ही नहीं, सारे विश्व का कल्याण किया है।

जैनधर्म की अहिंसा जगत्प्रसिद्ध है। इसके अहिंसा-सिद्धान्त की छाप सब धर्मों पर पड़ी है। भगवान् महावीर ने इस अहिंसा-सिद्धान्त के द्वारा हिंसारत प्राणियो की हिंसावृत्ति तथा धर्मान्धता को नष्ट करके "सत्वेषु मैत्री" का महामन्त्र देकर उनका उद्धार किया है किन्तु आश्चर्य यह है कि इस हुण्डा अवसर्पिणी के प्रभाव से उनकी विद्यमानता मे ही उनके सिद्धान्तों का अपलाप (विरोध) करने वाले 'जमाली' जैसे निन्हव विद्यमान थे और उनके मोक्षगमन के पश्चात् भी कई निन्हव हुए हैं।

इस युग में भी तेरहपन्थ नाम का एक सम्प्रदाय है, सो वैसे तो वह अपने को भगवान् महावीर का अनुयायी बतलाता है परन्तु भगवान् महावीर के "गौशालक मंखलीपुत्र को वैश्यंपायन बालतपस्वी की तेजोलेश्या से बचाने रूप रक्षा के कार्य को भूलभरा बताने मे जरा भी संकोच नहीं करता है और अपनी नता दिग्दर्शन करासा है।

इस सम्प्रदाय के आचार्यों मे से श्री जीतमलजी स्वामी ने "भ्रम-विध्वंसन" नामक एक ग्रन्थ बनाया है जिसमें जैन-सिद्धान्तो के पाठों एवं शास्त्रीय वाक्यों को तोड़-मरोड़ कर उनका स्वमत्यानुसार अर्थ लगाकर प्रवचन का बहुत अपलाप किया है तथा उन्हीं की मान्यतानुसार स्थली प्रान्त की मारवाड़ी भाषा में ढाले रची हैं और इन्हीं को गाते रहते हैं। यह भी एक नियम है कि जो जैसा सुनता है उसके विचार भी वैसे ही हो जाते है। तदनुसार भोली अज्ञ जनता इन ढालों की जाल में बुरी तरह फँस गई है।

इन पन्थियो ने भगवान् महावीर के प्राणिरक्षारूप महा पवित्र सिद्धान्त को एकान्त पाप बता-बता कर निर्दयतापूर्ण हत्या कर डाली है और सर्व जीव-सुखदायक दया एवं दान को अधर्म का रूपक दे दिया है जो दयाप्रेमी जन से सहन नहीं होता।

श्रीमज्जैनाचार्य पूज्य श्री जवाहिरलालजी महाराज साहब इस युग के एक महान् क्रान्तिकारी प्रभावशाली आचार्य हुए हैं। जब वे मारवाड़ मे विचरते थे तब यह स्थली प्रान्त का दयनीय दृश्य देखकर भद्रजनो के उद्धार करने के हेतु उसी प्रान्त की भाषा मे उसी प्रकार की ढाले बनाकर भगवान् महावीर के सत्य सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया जिसका जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा।

उन ढालो की उपयोगिता को जानकर बीकानेर एवं थली प्रान्त के श्रावको की प्रेरणा से श्रीयुत मानमलजी साहब राणा ब्यावर वालो ने सं० १९८७ मे इसे पुस्तकाकार प्रकट की थी, तदनन्तर इसी ग्रन्थ को विशेष सरल एवं सुगम बनाने के हेतु शास्त्रीय घटनाओ की वास्तविकता चित्रो द्वारा समझाने वाली

सचित्र अनुकम्पा-विचार नामक पुस्तक सं० १९८६ में लाला धन्नोमलजी कपूरचन्दजी देहली वाले की तरफ से प्रकाशित की गई थी।

इन ढालों का वहाँ की जनता पर अच्छा प्रभाव पड़ा और कई हलुकर्मी उनकी मिथ्या मान्यताओं को वोसिरा कर सत्पथ पर आरूढ़ हो गये। इससे घबरा कर इन लोगों ने इस ग्रन्थ को बन्द करने के लिए राज्य की शरण भी ली किन्तु असफल ही रहे। तब इन्होंने कुछ साधुओं को महाराष्ट्र, गुजरात, काठियावाड़, पंजाबादि अन्य प्रान्तों में भेजकर अपना मायाजाल फैलाना प्रारम्भ किया। इनके मायाजाल एवं भूलभूलैया में अज्ञ जनता न [illegible] जावे—इस हेतु श्रीमज्जवाहिराचार्य रचित सत्सिद्धान्त प्रतिपादक "सद्धर्म-मंडन" एवं "अनुकम्पा-विचार" नामक ग्रन्थ उधर भेजे गये। परन्तु अनुकम्पा-विचार ना [illegible] ढालों की पुस्तक मारवाड़ी भाषा में पद्य स्वरूप होने से उसके भावों को वे अच्छी तरह न [illegible] झ सके। अतः उन लोगो को ये सत्सिद्धान्त सुगमतापूर्वक समझ मे आ जावे इसलिए सं २००२ में मण्डल की बगड़ी की बैठक मे यह पुस्तक हिन्दी भावार्थ एवं सम्बन्धार्थ सहित तैयार करवा कर प्रकाशित कराने का ठहराव हुआ था उसके अनुसार मण्डल-ऑफिस ने 'वीरपुत्र' पं० श्री घेवरचन्दजी साहब बांठिया से कथा का पूर्वापर सम्बन्ध मिलाता [illegible] उन ढालो की गाथाओ के नीचे उनका भावार्थ सम्पादन करा कर प्रकाशित करवाया है। इससे किसी भी प्रान्त की जनता सुगमता-पूर्वक ढालों के भावों को समझकर सत्य सिद्धान्तो के द्वारा उनकी ढालो के जाल से बच सकेगी, क्योंकि हिन्दी भाषा अब भारत की प्रधान भाषा बन रही है।

ऐसा करने से ग्रन्थ का मेटर बढ़ जाता है। इससे यह ढालें अनुकम्पा-विचार के दो भागो मे जाकर पूर्ण होगा।

वर्तमान समय की परिस्थिति विषम होने से कागज व छपाई का खर्च ही बहुत बढ़ गया है अतः सम्पादनादि खर्च इस पर न चढ़ाते हुए सिर्फ छपाई खर्च व कागज आदि सामग्री का खर्च गिनकर ही पुस्तक का मूल्य रक्खा गया है। यदि कोई उदारचित्त श्रीमन्त सहायता प्रदान करेंगे तो मूल्य कम करके आपके कर-कमलो मे पहुँचाने की चेष्टा की जायगी।

स्वर्गीय आचार्यश्री ने इन ढालो को जनसाधारण के हित की दृष्टि से रखकर सरल मारवाड़ी भाषा मे रची थी। आज आचार्य म० भौतिक शरीर से हमारे बीच विद्यमान नही हैं अतः ढालो का अर्थ-भावार्थ करने मे कोई त्रुटि रह गई हो तो सुज्ञ पाठक सूचित करने की कृपा करे जिससे आगामी संस्करण मे समुचित प्रबन्ध किया जायगा।

इस पुस्तक का सम्पादन करने मे श्रीमान् पं० घेवरचन्दजी सा० बांठिया ने जो सुन्दर सहयोग दिया है इसके लिए हम आपके आभारी है। इत्यलम्।

भवदीय :—

श्री जैन हितेच्छु श्रावक-मंडल,
चाँदनीचौक, रतलाम
मिती पोष शुक्ला १ सं० २००६

बालचन्द श्रीश्रीमाल
वाइस-प्रेसीडेन्ट
सुजानमल तलेरा
सेक्रेटरी

❀ संक्षिप्त परिचय ❀

श्री वीतराग प्रणीत, दया एवं दान के प्रतिपादक, जगत् के जीवो को सुखदायक जैनधर्म के अन्दर भी एक वर्ग ऐसा है जो धर्म के प्रधान अङ्गभूत दया एवं दान का मनमाना अर्थ करके विशुद्ध ज्ञानरहित भोले भद्र प्राणियो के हृदय मे से प्राणि-रक्षा एवं प्राणि-पोषण के स्रोत को सुखा डालता है।

दान मे तो अपने (साधु) सिवाय सभी को कुपात्र बताकर भावुक जीवो के हृदय को कठोर बनाता है और दया का अर्थ केवल स्वयं किसी प्राणी को न मारना—इतना ही संकुचित अर्थ करके दूसरो के द्वारा मारे जाने वाले प्राणी की रक्षा करने (बचाने) का निषेध करता है और मरते हुए प्राणियों को बचाने मे पापोपार्जन का भूत बताकर दुःख से पीड़ित आत्मा के प्रति सहानुभूति एवं सद्भावना को भी रोकता है। ऐसा पन्थ-समाज इस आर्यावर्त्त देश का भारी अहित करता है। इस मत के अनु-यायियो को जिनके प्रबल मिथ्यात्व मोहनीय का उदय है, ऐसे कुगुरुओं ने मारवाड़ी भाषा मे कुछ ढाले बनाकर तथा "भ्रम-विध्वंसन" जैसे ग्रन्थ बनाकर उसमे मनगढ़न्त मन्तव्य एवं तर्क कायम कर सच्चे शास्त्रीय ज्ञान से वे मुमुक्षुओ को वंचित रखते हैं। इनके मन्तव्यो का संक्षिप्त दिग्दर्शन इस प्रकार है जो किसी सिद्धान्त से मेल नही खाता और जन-साधारण भी जिनको पसन्द नहीं करता। यथा तेरहपन्थियो का कथन है :—

१—जैनशा ो मे अहिंसा को धर्म माना है। किन्तु बहुत से लोग अहिंसा में रक्षा और दया को अन्तर्गत करके हीन-दीन

दुःखी जीवो की रक्षा करने के लिए दान दिया करते हैं। इसी तरह कसाई आदि हिंसकों के द्वारा मारे जाने वाले प्राणियों की प्राणरक्षा करने के लिए हिंसक को रुपये-पैसे देकर या बल प्रयोग द्वारा उन प्राणियों को छुड़ाते है। इस तरह कार्य करने वाले समझते है कि मेरा यह कार्य धर्मजनक है परन्तु वे भूल मे हैं। वे धर्म के रहस्य को नही जानते है।-अहिसा शब्द का अर्थ यह है कि अपनी ओर से किसी भी प्राणी की हिंसा न करनी चाहिए। अहिंसा शब्द निवृत्तिवाचक है, इसीलिए हिसा न करना ही इस शब्द का वास्तविक अर्थ है।

जैन-शास्त्रो मे 'रक्षा' और 'दया' आदि शब्द भी पाये जाते हैं। उनका अर्थ भी 'स्वयं' किसी प्राणी को न मारना ही समझना चाहिए। दूसरे प्राणी के द्वारा मारे जाते हुए प्राणी को बचाने के लिए प्रवृत्ति करना अहिसा धर्म नही है। वह तो एक प्रवृत्ति-प्रधान दूसरा ही धर्म है। जिसका विधान जैन-शास्त्रो मे कहीं नहीं पाया जाता है। यद्यपि भगवान् महावीर स्वामी ने छद्मस्थावस्था मे वैश्यायन बालतपस्वी के द्वारा जलाये जाते हुए गोशालक की रक्षा की थी। परन्तु उस दृष्टान्त से मरते हुए प्राणियो की प्राणरक्षा करने मे धर्म स्थापन करना बड़ी भारी भूल है क्योकि जब भगवान् महावीर स्वामी को केवल-ज्ञान उत्पन्न हो चुका था, उस समय उनके सामने सुनक्षत्र और सर्वानुभूति मुनि को गोशालक ने जला दिया था। परन्तु भगवान् ने उनकी रक्षा न की। भगवान् के केवली अवस्था के इस उदाहरण से मरते प्राणी की प्राणरक्षा करना कर्त्तव्य सिद्ध नही होता। इस उदाहरण से स्पष्ट सिद्ध होता है कि छद्मस्थ अवस्था मे सर्वज्ञ न होने के कारण भूलकर उन्होने यह काम किया है।

अतः हिंसक द्वारा मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा करने में धर्म बताना मूर्खों का काम है।

२—हीन, दीन दुःखी जीवो को दयालु पुरुष सहायता दिया करते हैं और इस कार्य को वे पुण्यजनक मानते हैं। परन्तु तेरह-पन्थी साधु इसे कुपात्र दान ठहरा कर श्रावको से इसका त्याग कराते हैं। तेरहपन्थियो की मान्यता है कि साधु से भिन्न संसार के समस्त प्राणी कुपात्र हैं। इस विषय मे भ्रमविध्वंसन पृष्ठ ७६ और ८२ मे विस्तारपूर्वक लिखा है। पृष्ठ ७६ मे लिखा है कि 'साधु थी अनेरो कुपात्र छे।' पृष्ठ ८२ मे लिखा है कि 'पात्र-दान, मांसादि सेवन, व्यसन कुशीलादिक ये तीनो ही एक मार्ग के पथिक हैं।' इत्यादि।

३—इसी तरह पुत्र माता-पिता की, पतिव्रता का पति ी की और विद्यार्थी गुरु आदि की जो सेवा सुश्रूषा, सम्मान आदि करते हैं—इसे भी तेरहपन्थी एकान्त पाप बतलाते है। इनकी उक्त मान्यता भी अज्ञान से भरी हुई है। भगवान् ने श्री उववाई सूत्र मे बताया है कि 'अम्मापिउ सुस्सूसगा' इत्यादि। यह पाठ देकर माता-पिता की सेवा करने वाले पुत्र को स्वर्गगामी कहा है। शा के अनुसार माता-पिता आदि की सेवा से पुण्यबन्ध होता है। यह बात शा -सिद्ध होने पर भी तेरहपन्थी बन्धु पितृ-भक्ति को एकान्त पाप बता कर संसार से सेवा का लोप करना चाहते है किन्तु विद्वज्जनो को यह मान्यता अज्ञानपूर्ण ही समझना चाहिए।

और भी इनके खुले मन्तव्य देखिए :—

: दया और दान का संकुचित अर्थ :

"साधु थी अनेरो कुपात्र छे। अनेरा ने दीधां नेरी प्रकृति नो बंध कह्यो ते अनेरी प्रकृति पाप नी छे।"

भ्रमविध्वंसनम् पृ० ७६

" पात्र दान, मांसादिक सेवन, व्यसन कुशीलादि यह तीनों एक ही मार्ग के पथिक है। जैसे चोर, जार, ठग यह तीनों समान व्यवसायी है। उसी तरह जयाचार्य सिद्धान्तानुसार कुपात्र दान भी मांसादि सेवन व्यसन शीलादिक की श्रेणी में गिनने योग्य है।"

भ्रमविध्वंसनम् पृ० ८७ (संशोधक)

"केतला एक जिन आज्ञाना अजाण छे, ते साधु अग्नि मांही बलता ने कोई गृहस्थी बांहे प ड़ ने बाहिर काढे तथा साधुरी फांसी कोई गृहस्थ कापे तिण में धर्म कहे छे।"

भ्रमविध्वंसनम् पृ० २६७

यदि कोई गृहस्थ अग्नि मे जलते साधु की बॉह पकड़कर बाहर निकाल देता है या साधु की फॉसी काट देता है तो उसमे धर्म कहने वाले जिन आज्ञा के अजाण है।

पात्र जीवां ने बचावियां, पात्र ने दिये दानजी।
औ सावद्य कर्त्तव्य सं ार नो, भाख्यो ` भगवान्जी॥

अनुकम्पा ढाल १२ कड़ी १०

संसार रो उपकार किया में, जि र्म रो हीं अंश लिगार।
संसार तणां उपकार किया में, धर्म हे ते मूढ़ गँवार॥

अनु० ढाल ११ कडी ३९

तेरहपंथी भाइयो! आपके मत से सांसारिक कर्त्तव्य या लौकिक उपकार मे धर्म कहने वाला मूढ़ और गँवार है? इन कार्यो मे धर्म नहीं हुआ तो पुण्य भी नहीं हुआ क्योकि धर्म के विना कोरा पुण्य मानते नही है। भावार्थ यही निकला कि लौकिक उपकार करने से पापरूप ही फल हुआ। यही निश्चित मान्यता है और इसी को ये छिपाते है। "लोकभय से सिद्धान्त गोपन करना कायरता है। नींव मजबूत है, सिद्धान्त सही है, तब डर किस बात का!" तो क्यो नहीं स्पष्ट कह देते कि लोकधर्म के पालन करने का फल पापबन्ध है। आप लोकधर्म तो कहते हैं मगर उसका फल क्यो नही बताते। फल बताने मे लुका-छिपी क्यो? भारतीय ऋषि-मुनियो ने पुण्य, पाप और धर्मरूप तीन फल बताये हैं। हम इन्हीं तीन मे से उत्तर चाहते हैं।

स्तन-पान न कराना तो आपने पाप बताया है मगर स्तन पान कराने का फल क्यो नही बताया? भक्त पान का विच्छेद करने से आत्मधर्म की घात होती है मगर भक्त-पान देने से क्या फल होता है? यह क्यो छिपाते है।

प्रतिहिंसा का नाम लेकर तथा मदिरा, मांस और ी-सेवन से सु पहुँचाने की बात कहकर रक्षा और सहायता को उड़ाना

चाहते हैं यह अनुचित है। क्या आप विना प्रतिहिंसा के रक्षा करने मे और मदिरा, मांस व स्त्र्यादि सेवन के सिवाय अन्य साधनो से किसी को साता पहुॅचाने मे धर्म मानते है? आप तो रक्षामात्र मे पाप मानते है। चाहे शुद्ध साधन से रक्षा की गई हो। क्योंकि आपकी मान्यता है कि असंयती जीव जिन्दा रहकर जो पाप करता है वह पाप रक्षक को लगता है।

वर्तमान मे अन्तराय देने मे आप पाप मानते हैं मगर भविष्य के लिए दीन, हीन दुःखी-जनो के लिए दान का दरवाजा बंद करने मे पाप क्यो नही मानते? आपके पूर्वाचार्य दान देने का त्याग करने का उपदेश देते थे जैसे कि कहा है :—

अव्रत में दान देवा तणो, कोई त्याग करे मन शुद्धजी।
त्यांरो पाप निरन्तर टालियो, त्यांरी वीर व गणी बुद्धजी॥

श्रावक-धर्म-विचार पृ० १३१

अब प्रश्न यह रहा कि क्या श्वे० तेरहपंथी गृहस्थ परोपकार के कार्य नही करते! करते भी है मगर शर्माशर्मी और पाप समझकर। छाती मे धड़कन लाकर पश्चात्ताप करते हुए। जैसे कि कहा है :—

व्रत में देतॉ थकाँ, पड़े श्रावक रे मन धरकजी।
काम पड़े व्रत में दान रो, जब देतो ही शरमाशर्मजी॥
पछे करे पछतावो तेहनु, कांइ ढीला पड़े कर्मजी।
अव्रत में दान दे तेहनुं, टालन रो रे उपायजी॥
जाणे कर्म बंधे छै म्हांय रे, मौंने भोगवताँ दुः दायजी।
अव्रत में दान देताँ थकाँ, बंधे ठूँ ही पाप जी॥

श्रावक-धर्म-विचार पृ० १३०

साधु के सिवाय सब प्राणी अव्रती हैं। उनको दान देने से आठों ही 'पापकर्म' बंध जाते हैं। बंधुओ ! फिर भी ये कहते हैं हम कहाँ मना करते हैं। यह ऊपर की ढाल दान के लिए प्रोत्साहन दे रही है या दान का दरवाजा बन्द कर रही है। पाठक सोचे।

उपरोक्त लोक-विरुद्ध मान्यताओ का समाधान एवं सन्मार्ग-दर्शन कराने के लिए ही स्वर्गीय पूज्यश्री ने उन्ही की शैली से ढालों की रचना एवं 'सद्धर्म-मण्डन' ग्रंथ रचकर जनता का आवरण दूर किया है। ऐसे महापुरुष हमारे लिए परमोपकारी हैं, उनका जितना उपकार माने कम ही है, उनका उपकार अनन्त हैं।

श्री धर्मरक्षक समिति के सदस्य,
रतलाम

❀ विषय-सूची ❀

: श्री वीतरागाय नमः :

-: अनुकम्पा-विचार :-

* दोहा *

करुणा वरुणालय प्रभो, मंगलमूल अनन्त।
जय जय जिनवर विबुधवर, सुखमय सु मावन्त ॥१॥

भावार्थ :—हे करुणासागर प्रभो! अनन्त मंगलो के मूल, वीतराग, केवलज्ञानी और अनन्त सुखोमे लीन आप सदा जयवन्त रहे ॥१॥

अनन्त जिन हुआ केवली, मनपर्यव मतिमन्त।
अवधिधर मुनि निर्मला, दस पूर्व लगि सन्त ॥२॥
आगम बलिया ये सहू, भाखे आगम सार।
वचन न श्रद्धे तेहना, ते रुलसे संसार ॥३॥

भावार्थ :—पूर्व समय मे अनन्त तीर्थङ्कर एवं सामान्य केवलज्ञानी हो गये है वे, मनःपर्ययज्ञानी, निर्मल अवधिज्ञानी और दस पूर्वों तक के ज्ञाता—ये सभी आगमबलिया अर्थात् आगमविहारी होते है। इनके वचन आगमरूप माने जाते हैं। जो इनके वचनो पर श्रद्धा नहीं करते वे संसार मे परिभ्रमण करते हैं ॥ २-३ ॥

अनुकम्पा आछी ही, जिन आगम रे मांय ।
अज्ञानी सावज कहे, खोटा चोज लगाय ॥४॥

भावार्थ :—जैनशास्त्रो मे अनुकम्पा श्रेष्ठ कही गई है किन्तु कितनेक अज्ञानी कुहेतु लगाकर उस अनुकम्पा को सावद्य-पापकारी कहते है ॥४॥

ढालां नहीं जालां हुई, अनुकम्पा री घ ।
पञ्चमकाल प्रभाव थी, हा! हा! त्रिभुवन तात! ॥५॥

भावार्थ :—अनुकम्पा को सावद्य बतलाने के लिये उन अज्ञानियो ने कितनीक ढाले बनाई है। वे ढाले अनुकम्पा की घात करने के लिये जालरूप सिद्ध हुई है। हे त्रिलोकीनाथ! इस पञ्चम आरे का यह प्रभाव है ॥५॥

अनुकम्पा उठायवा, मांडी माया जाल ।
मूरख मछला ज्यों फँस्या, रुले नन्तो काल ॥६॥

भावार्थ :—संसार से अनुकम्पा को उठा देने के लिये उन अज्ञानियो ने कपटपूर्वक ये ढालेरूपी जाले फैला रक्खी है। जिस प्रकार जाल मे मछली आकर फॅस जाती है उसी प्रकार इन ढालोरूपी जालो मे भोले प्राणी फॅस जाते है। उस विपरीत श्रद्धारूप मिथ्यात्वके कारण अनन्तकाल तक वे संसार मे परिभ्रमण करते रहते है ॥६॥

दुखमि आरे पंचमे, गुरु चलायो पन्थ ।
अनुकम्पा खोटी कहे, मं धरावे सन्त ॥७॥

भावार्थ :—इस दुःषम नामक पाँचवे आरे मे कुगुरु ने यह पन्थ चलाया है जिसमें वे अनुकम्पाको बुरी बतलाते है। इस पर भी । र्य तो यह है कि वे सन्त नाम धराते हैं ॥७॥

थोर ना दूध सम, अनुकम्पा बतलाय ।
मन सों सावज नाम दे, भोला ने भरमाय ॥८॥

भावार्थ :—वे अज्ञानी लोग भोले प्राणियो को भ्रम मे डालने के लिये अनुकम्पा को अपने मन से ही सावद्य बतलाते है और उस अनुकम्पा को वे आक और थूहर के दूध के समान बुरी बतलाते है ॥८॥

सपाप वज नाम है, हिंसादिक थी होय ।
अनुकम्पा हिंसा नहीं, सावज किस विध होय ॥९॥

भावार्थ :—पापकारी कार्य को सावद्य कहा जाता है जो कि हिंसादि पाप-कार्यों से होता है। अनुकम्पा हिंसा नहीं है किन्तु मरते हुये प्राणी की प्राणरक्षारूप दया अनुकम्पा कहलाती है। फिर वह अनुकम्पा सावद्य-पापकारी कैसे हो सकती है? अर्थात् अनुकम्पा सावद्य कभी नही हो सकती ॥९॥

अनुकम्पा रक्षा ही, दया कही भगवन्त ।
पाप हे कोई तेहने, मिथ्या जाणो तन्त ॥१०॥

भावार्थ :—मरते हुए प्राणी की प्राणरक्षा करना एवं दुःखी प्राणी पर दया करना इसे तीर्थङ्कर भगवान् ने अनुकम्पा कहा है। उस अनुकम्पा को यदि कोई पापकारी-सावद्य बतलाने की धृष्टता करे तो उसका कथन मिथ्या समझना चाहिये ॥१०॥

अमृत एक सो जाणज्यो, अनुकम्पा पिण एक ।
भेद प्रभू नहीं भाषियो, सूतर माँही देख ॥११॥

भावार्थ :—जिस प्रकार अमृत एक ही है अर्थात् (१) जिलाने वाला अमृत और (२) मारने वाला अमृत—ऐसे दो भेद अमृत के नही हो सकते उसी प्रकार अनुकम्पा भी एक ही है। उसके (१) सावद्य-पापकारी-अनुकम्पा और (२) निरवद्य अनुकम्पा—ऐसे दो भेद नही हो सकते। तीर्थङ्कर भगवान् ने भी अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य—ऐसे दो भेद शास्त्रों मे कही पर नहीं फरमाये है ॥११॥

तो पिण कुगुरु कदाग्रहे, चढिया बिस्वा बीस ।
मनसूँ करे प्ररूपणा, करड़ी ज्यांरी रीस ॥१२॥

भावार्थ :—ऐसा होने पर भी कदाग्रह के वश होकर कुगुरु अपने मन से अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ऐसे दो भेदो की प्ररूपणा करते हैं। इस विषय मे उनसे प्रश्न करने पर वे ठीक उत्तर तो कुछ नही दे सकते किन्तु प्रश्नकर्त्ता पर क्रोध करने लगते है ॥१२॥

निरवद ने सावद वलि, अनुकम्पा रा भेद ।
अणहूँता कुगुरु करे, ते सुण उपजे खेद ॥१३॥

भावार्थ :—वे कुगुरु अपने मन से ही अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ऐसे अनहोने दो भेद करते है जिसे सुनकर मन मे खेद पैदा होता है ॥१३॥

भरम जाल तोड़न तणूँ, रचूँ प्रबन्ध रसाल ।
धारो भवजी ! तुम्हें, बरते मंगलमाल ॥१४॥

भावार्थ :—कुगुरुओ के उपरोक्त भ्रमजाल को तोड़ने के लिये यह सुन्दर ग्रन्थ बनाया जा रहा है। हे भव्य जीवो ! इसे तुम समझपूर्वक धारण करो जिससे तुम्हारी आत्मा का मंगलकल्याण हो ॥१४॥
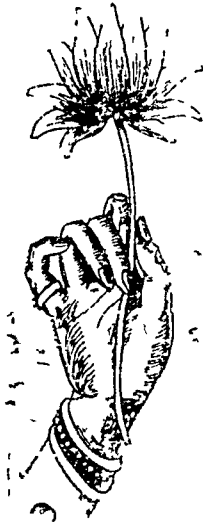
ढाल पहली

❀ मेघकुमार का अधिकार ❀
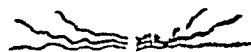
संक्षिप्त पूर्वभव की कथा :—

मेघकुमार का जीव पूर्वभव मे हाथी था। इससे पहले भव मे भी वह हाथी था, आनन्द-पूर्वक जङ्गल मे रहता था। एक समय जङ्गल मे आग लग गई। उसे देखकर वह भागने लगा। दौड़ते-दौड़ते उसे बड़ी जोर से प्यास लगी। पानी पीने के लिये वह एक तालाब की ओर जाने लगा। आगे जाने पर वह तालाब के कीचड़ मे बुरी तरह फँस गया। बहुत कोशिश करने पर भी निकल न सका। इतने मे पीछे से एक दूसरा हाथी आ गया। उसने उसे दन्तप्रहार किया जिससे वह वहाँ मृत्यु को प्राप्त हो गया। दूसरे जन्म मे वह फिर हाथी हुआ। एक समय जङ्गल मे आग लग गई, जिसे देखकर उसे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। इसलिये भविष्य मे ऐसे दावानल से बचने के लिये एक योजन का लम्बा चौड़ा एक मण्डल (घेरा) बनाया। कुछ समय पश्चात् जङ्गल मे फिर आग लग गई। उससे बचने के लिये जङ्गल के अनेक पशु-पक्षी भागकर उस मण्डल मे आ गये। हाथी भी दौड़ता हुआ वहाँ पहुँचा, तब वह मण्डल जीवो से खचाखच भर गया था। बड़ी मुश्किल से थोड़ी-सी जगह हाथी को खड़े रहने के लिये मिली। कुछ समय बाद अपने शरीर को खुजलाने के लिये हाथी ने अपना पैर उठाया। इतने मे दूसरे बलवान् प्राणियो द्वारा ढकेला हुआ एक शशक (खरगोश) उस जगह

आ पहुँचा। शरीर को खुजलाकर जब वह अपना पैर नीचे रखने लगा तो वहाँ एक शशक को बैठा हुआ देखा। तब :—

'पाणा कंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए'

प्राण, भूत, जीव, सत्त्वो की अनुकम्पा से उसने अपना पैर न तो उस शशक पर रक्खा, न दूसरे प्राणियो पर रक्खा और न उन्हें इधर-उधर ढकेला ही, किन्तु उसने अपना पैर अधर उठाये रक्खा। उन समस्त प्राणियो की अनुकम्पा से हाथी ने ऐसे सम्यक्त्वरत्न की प्राप्ति की, जिसकी प्राप्ति उसे आगे कभी नही हुई थी। उसने उस समय संसार परित्त (परिमित) किया और मनुष्य-आयु का बन्ध किया।

वह वन की अग्नि अढाई दिन मे शान्त हुई। सब जीव उस मण्डल से निकलकर चले गये। तब चलने के लिये हाथी ने भी भी अपना पैर पृथ्वी पर रक्खा, किन्तु अढ़ाई दिन तक पैर ऊँचा रहने के कारण अकड़ गया था जिससे वह हाथी चल नही सका प्रत्युत पृथ्वी पर गिर पड़ा। तीन दिन तक उस वेदना को सहन करके अपनी सौ वर्ष की आयु पूर्ण करके मृत्यु को प्राप्त हुआ।

वहाँ से मर कर वह हाथी का जीव राजा श्रेणिक के घर पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ जिसका नाम मेघकुमार रक्खा गया। युवावस्था को प्राप्त होने पर आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया गया। फिर मेघकुमार ने भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। बहुत वर्षो तक दीक्षापर्याय का पालन कर वह विजय नामक अनुत्तर विमान मे ३२ सागरोपम की स्थिति वाला देव हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर संयम ग्रहण करेगा और मोक्ष जायगा।

❀ ढाल ❀

[तर्ज —धिग धिग छे उणी नागश्री ने]

मेघकुँवर हाथी रा भव में,
करुणा करी श्री जिनजी बताई।
प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व री,
अनुकम्पा की, समकित पाई॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो॥ अनु० १॥

निज देह री परवा नहीं राखी,
पर अनुकम्पा रो हुवो रसियो।
बीस पहर पग ऊँचो राख्यो,
पर उपकार सूँ मन नहीं खसियो॥ अनु० २॥

परितसंसार कियो तिण विरियां,
श्रेणि घर उपनो गुण पाई।
आठ रमणी तज दीक्षा लीधी,
ज्ञाता अध्ययने गणधर गाई॥ अनु० ३॥

भावार्थ :—हाथी के भव मे मेघकुमार ने प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व की अनुकम्पा की थी जिससे उसे समकित की प्राप्ति हुई थी ऐसा तीर्थङ्करदेव श्री महावीर स्वामी ने फरमाया है। इस लिये अनुकम्पा को सावद्य नही समझना चाहिये।

प्राणियो की अनुकम्पा मे हाथी इतना लीन हो गया था कि उसने अपने शरीर की परवाह न करके बीस पहर तक यानी

अढ़ाई दिन तक पैर को ऊपर उठाये रक्खा किन्तु परोपकार (प्राणियो की अनुकम्पा) से जरा भी विचलित नहीं हुआ।

इसी कारण उसने समकित की प्राप्ति की और संसारपरित्त (परिमित) किया। फिर श्रेणिक राजा के घर पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ। वहीं आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया। फिर उन्हे छोड़कर उसने भगवान् महावीर स्वामी के पास दीक्षा ग्रहण की। इत्यादि सारी कथा विस्तारपूर्वक ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन मे कही गई है ॥ १-३ ॥

प्रश्न :—'**बलता जीव दावानल देखी,**
सूँ सूँ पकड़ नाय बचाया।'

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानी लोग ऐसा कहते है कि हाथी ने प्राणियो पर अनुकम्पा नहीं की थी किन्तु उसने अपनी आत्मा को पाप से बचाया था। यदि वह प्राणियो पर अनुकम्पा करता तो दावानल (वन की अग्नि) मे जलते हुए प्राणियो को सूँड से पकड़कर क्यों नही उठा लाया और मण्डल मे क्यो नहीं रक्खा ?

उत्तर :—**मूढ़मत्यां री या खोटी कल्पना,**
बलता जीव सूतर न बताया ॥ अनु० ४ ॥
मण्डल जीवां थी पूरण भरियो,
शश बैठण ने स्थान न मिलियो।
जीव लाय किण जागा मेले,
खोटो पक्ष मिथ्याती झलियो ॥ अ ० ५ ॥

भावार्थ :—उपरोक्त प्रश्न अयुक्त है क्योंकि पहली बात तो यह है कि दावानल में जीव जल रहे थे, ऐसा शा में नहीं

बतलाया गया है। दूसरी बात यह है कि हाथी के आने से पहले ही उसका बनाया हुआ मण्डल जीवो से ऐसा खचाखच भर गया था कि हाथी को भी ठहरने के लिये स्थान मुश्किल से मिला। तथा शरीर खुजलाने के लिये उठाये हुए अपने पैर को वापिस नीचे रखने का स्थान नहीं मिला। ऐसी दशा मे वह हाथी दावानल मे जलते हुए जीवो को लाकर कहाँ रखता और उनको लाने के लिये किस मार्ग से जाता, क्योकि वह स्थान तो जीवो से इतना भरा हुआ था कि वहाँ तो पैर रखने को भी जगह न थी। इसलिये उपरोक्त प्रश्न अयुक्त है।

सुसलो न मारयो अनुकम्पा बतावे,
(तो) एक जोजन मण्डल रे मांई।
जीव घणा जामें आई ने बसिया,
(त्यां) सगलां ने हाथी तो मारया नहीं ॥ अनु० ६ ॥

(जो) सुसलो न मारया रो धर्म बतावो,
(तो) दूजा (ने) न मारयां रो क्यों नहीं केवो।
(जो) सुसला रा प्राण बचाया धर्म है,
तो दूजा जीव बचाया रो (पिण) केवो ॥ अनु० ७ ॥

भावार्थ :—पूर्वपक्षवादियो का कथन है कि हाथी ने केवल अकेले खरगोश को न मारने रूप अनुकम्पा की थी। तब प्रश्न यह होता है कि उस एक योजन के मण्डल मे तो बहुत से जीव आकर ठहरे थे, उन सबको भी हाथी ने मारा नही था। उन सबको न मारनेरूप अनुकम्पा मे धर्म क्यो नही कहते ? क्योंकि जब एक खरगोश के प्राण बचाने मे धर्म है तो दूसरो के प्राण

बचाने मे धर्म क्यो न होगा ? इसलिए यह कहना कि 'हाथी ने अकेले खरगोश की अनुकम्पा से संसार परित्त किया है, बहुत जीव जो मण्डल मे आकर बचे थे उनकी अनुकम्पा से संसार परित्त नहीं किया' यह कथन अविवेक का सबसे बड़ा उदाहरण है क्योंकि जब वे लोग भी एक जीव खरगोश की अनुकम्पा से संसार परित्त होना मानते है तब फिर अनेक जीवो की अनुकम्पा से डरने की क्या बात है ? क्योंकि जब एक जीव की अनुकम्पा से संसार परित्त हो सकता है तो अनेक जीवो की अनुकम्पा से धर्म ही होगा ।

जोजन मण्डले जीव जो बचिया,
मंदमती तामें पाप* बतावे ।
त्यांरे लेखे सुसलो बंचिया रो,
'धर्म' कहो जी किण विध थावे ॥ अनु० ८ ॥

भावार्थ :—हाथी के बनाये हुए एक योजन के मण्डल मे बहुत जीवो की प्राणरक्षा हुई थी। मन्दबुद्धि लोग इसमे पाप बतलाते है, जैसा कि उन्होंने अपनी अनुकम्पा की ढाल मे जोड़ रक्खा है। उनके हिसाब से तो शशक के बचने का भी धर्म कैसे हो सकता है ?

---

* जैसा कि वे कहते हैं —

"मांडलो एक जोजन नो कीधो, घणा जीव बचिया तहाँ आई ।
तिण बचिया रो धर्म न चाल्यो, समकित आया विन समझ न काई ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥"

(अनुकम्पा ढाल १ गाथा ४)

उलटी मति सूँ ऊँधी ताणे,
जीव बचाया में पाप बखाणे।
हाथी तो जीव बचाइ ने तिरियो,
उत्तम जन शङ्का नहीं आणे ॥ अनु० ६ ॥

भावार्थ :—उन लोगो की समझ विपरीत है इसलिए वे विपरीत बात की प्ररूपणा करते है और जीव बचाने मे पाप बतलाते है। अनेक जीवो के प्राण बचाकर हाथी ने अपनी आत्मा का कल्याण साधन कर लिया। विवेकी पुरुष इस विषय मे कुछ भी शङ्का नही करते है ॥६॥

२-भ० नेमिनाथजी की करुणा का अधिकार

संक्षिप्त कथा :—

शौर्यपुर नगर मे यदुवंशी महाराज समुद्रविजय थे। उनकी रानी का नाम शिवा देवी था। शिवा देवी की कुक्षि से बाईसवे तीर्थङ्कर भगवान् नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) का जन्म हुआ था।

भगवान् नेमिनाथ से पूर्व होने वाले तीर्थङ्करो ने यह कह दिया था कि बाईसवाँ तीर्थङ्कर बालब्रह्मचारी रहकर ही दीक्षा ग्रहण करेगा तथा भगवान् नेमिनाथ स्वयं अतिशय ज्ञानी होने के कारण इस बात को जानते थे, किन्तु उस समय यादवो मे हिसा बहुत फैली हुई थी। उस हिंसा को हटाने के लिए भगवान् ने विवाह करना स्वीकार किया। राजा उग्रसेन की पुत्री राजमती के साथ उनका विवाह होना निश्चित हुआ। चाँदी, सोने आदि के १०८ घड़ो का जल एकत्रित करके उसमे सुगन्धित अनेक

औषधियाँ डाली गई, फिर उस जल से भगवान् को स्नान कराया गया और सुन्दर तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषणो से अलंकृत किया गया। धूमधाम से बारात रवाना हुई। जब भगवान् विवाह-मण्डप के नजदीक पहुँचे तो क्या देखते है कि अनेक पशु-पक्षी बाड़ो और पिंजरो मे बन्द थे और वे दीनतापूर्वक शब्द कर रहे थे। उन्हें देखकर भगवान् ने अपने सारथि से पूछा कि 'सुख को चाहने वाले इन बेचारे प्राणियो को यहाँ बन्धन में क्यो डाला गया है ?'

यद्यपि भगवान् अतिशय ज्ञानी होने के कारण इस बात को जानते थे कि इन पशु-पक्षियो को मांस के वास्ते मारा जाने के लिए यहाँ बन्धन मे डाला गया है लेकिन यदि वे अपनी इस जानकारी के आधार पर ही पशु-पक्षियो पर करुणा कर उन्हें बन्धन से छुड़ा देते तो बारात के लोग तथा दूसरे लोग पशु-पक्षियो को बन्धन-मुक्त कराने का कारण न समझ पाते और यादवो मे फैली हुई हिंसा को मिटाने का जो भगवान् का उद्देश्य था वह पूरा नहीं होता। महापुरुषों के प्रत्येक कार्य मे कोई न कोई गूढ़ तत्त्व छिपा रहता है। इसीलिये सब कुछ जानते हुए भी भगवान् ने सारथि से यह प्रश्न किया।

सारथि ने उत्तर दिया कि 'हे प्रभो ! ये समस्त भद्रप्राणी आपके विवाह के कारण एकत्रित कर यहाँ बाड़ो और पिजरो में बन्द किये गये है। इन्हें मारकर आपके विवाहमहोत्सव मे आये हुये लोगो को इनके मांस का भोजन कराया जायगा।'

सोउण तस्स वयणं, बहुपाणिविणासणं ।
चिंतेइ से महापण्णे, साणुक्कोसो जिएहि उ ॥१८॥

जइ मज्झ कारणा, एए हम्मंति सुबहु जिया ।
न मे एयं तु निस्सेसं, परलोगे भविस्सइ ॥१९॥

सो कुण्डलाण जुयलं, सुत्तगं च महायसो ।
आभरणाणि य सव्वाणि, साराहिस्स पणामइ ॥२०॥

(उत्तराध्ययन अध्ययन २२)

टीका :—इत्थं सारथिनोक्ते यद् भगवान् विहितवांस्तदाह सुगममेव । नवरं तस्य सारथेः बहूनां प्रभूतानां प्राणिनां प्राणानां विनाशनं हननं अभिधेयं यस्मिन् तद् बहुप्राणिविनाशनम । स भगवान् सानुक्रोशः सकरुणः केषु 'जिएहि उ' त्ति जीवेषु, तु पादपूरणे । मम कारणादिति मद्विवाह-प्रयोजने भोजनार्थत्वादमीषामिति भावः । हम्मंति हन्यन्ते वर्तमान सामीप्ये लट् ततो हनिष्यन्ते इत्यर्थः । पाठान्तरतः 'हमिहंति' त्ति, सुस्पष्टम् । सुबहवः अतिप्रभूताः 'जिय' त्ति जीवाः, एतदीति जीवहननं तुः एवकारार्थे, नेत्यनेन योज्यते ततः न तु नैव, निःश्रेयसं कल्याणं परलोके भविष्यति पापहेतुत्वादस्येतिभावः भवान्तरेषु परलोकभीरुत्वस्यात्यन्तमभ्यस्ततयैवमभिधानमन्यथा चरमशरीरत्वादतिशयज्ञानित्वाच्च भगवतः कुतः एवंविध चितावसरः । एवं च विदितभगवदाकूतेन सारथिना मोचितेषु सत्त्वेषु परितोपितोऽसौ यत्कृतवांस्तदाह 'सो' इत्यादि सुत कंचेति कटिसूत्रमर्पयतीति योगः । किमेतदेवेत्याह आभरणाणि सर्वाणि शेषाणीति गम्यते ।

दीपिका :—तदा नेमिकुमारः कि चितयतीत्याह यदि मम विवाहादिकारणेन एते सुबहवः प्रचुराः जीवाः हनिष्यन्ते मारयिष्यन्ते तदा एतद् हिंसाख्यं कर्म परलोके परभवे निःश्रेयस कल्याणकारी न भविष्यति परलोकभीरुत्वस्यात्यन्तमभ्यस्ततयैवमभिधा-

नमन्यथा भगवत रमदेहत्वात् अतिशयज्ञानित्वाच्च कुत एवंविधा चिन्ता इति भाव: ॥१६॥

स नेमिकुमारो महायशा:, नेमिनाथस्याभिप्रायात् सर्वेषु जीवेषु बन्धनेभ्यो मुक्तेषु सत्सु सर्वाणि आभरणाणि सार्थये प्रणामयति ददाति तान्याभरणाणि कुण्डलानां युगलं पुन: सूत्रकं कटिदवरकं चकारात् आभरणशब्देन हारादीनि सर्वाङ्गोपाङ्ग-भूषणानि सार्थये ददौ ॥२०॥

अर्थ :—इस प्रकार सारथि के कहने पर भगवान् नेमिनाथ ने जो किया वह इन गाथाओ मे कहा गया है। बहुत से प्राणियों का विनाशरूप अर्थ को बतलाने वाले सारथि के वचनो को सुनकर बड़े बुद्धिमान् नेमिनाथ, उन प्राणियो पर दयायुक्त होकर सोचने लगे :—

यदि ये बहुत से प्राणी मेरे कारण यानी मेरे विवाह मे आये हुए लोगों के भोजनार्थ मारे जायेंगे तो यह कार्य मेरे लिये परलोक मे कल्याणकारक नही होगा। (यद्यपि भगवान् नेमिनाथ अतिशय ज्ञानवान् और चरमशरीरी होने के कारण उसी भव मे मोक्ष जाने वाले थे अत: उन्हे परलोक की चिन्ता करने की आवश्यकता न थी तथापि दूसरे भवो में परलोक से डरने का जो उनको अत्यन्त अभ्यास था उस अभ्यास के कारण उन्हें पूर्वोक्त चिन्ता हुई थी।)

भगवान् नेमिनाथ का अभिप्राय समझकर सारथि ने जब उन प्राणियो को बन्धन से मुक्त कर दिया तब भगवान् ने प्रसन्न होकर कानो के कुण्डल और कटिसूत्र (कन्दोरा) तथा दूसरे सब आभूषण उतार कर सारथि को इनाम दे दिये। (यह उक्त गाथाओं का, टीका और दीपिका के अनुसार अर्थ है।)

इसके बाद भगवान् अरिष्टनेमि ने सारथि को रथ वापिस लौटा लेने की आज्ञा दी। अपने महल मे आकर भगवान् अरिष्ट-नेमि ने समस्त सांसारिक बन्धनो को तोड़कर दीक्षा लेने का विचार किया। तदनुसार उन्होने वार्षिक दान देना प्रारम्भ किया। एक वर्ष तक वे बराबर दान देते रहे। इस प्रकार संसार को दया और दान का पाठ पढ़ाकर भगवान् अरिष्टनेमि ने एक हजार यादवकुमारो के साथ दीक्षा ग्रहण की। ७०० वर्षों तक दीक्षापर्याय का पालन कर भगवान् मोक्ष पधार गये।

तीन ज्ञान धर नेम प्रभुजी,
ब्याव न करणा निश्चय जाणे।
बाल चारी बावीसमो,
होसी जिनवर जिनजी बखाणे॥ नु० १॥
जीव दया सब जग ने बतावा,
जादवी हिंसा मेटण काजे।
पंचेन्द्री प्राणी रा प्राण बचावा,
प्रत्यक्ष न्याय प्रभुजी रो राजे॥ अनु० २॥
इत्यादि उपकार रे अर्थे,
ब्याव करण री बात ज मानी।

भावार्थ:—जन्म के समय ही भगवान् अरिष्टनेमि को मति-ज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इस प्रकार तीन ज्ञान थे। तीन ज्ञान के धनी होने के कारण अपना विवाह न होना वे जानते थे और उनके पूर्व तीर्थङ्करो ने भी कहा था कि बाईसवे तीर्थङ्कर बालब्रह्मचारी रहकर ही दीक्षा ग्रहण करेगे किन्तु उस समय

यादवो में फैली हुई हिंसा को मिटाना और पंचेन्द्रिय जीवों के प्राणो की रक्षा करके जगत् को दया का पाठ पढ़ाना आदि उपकारो के लिये उन्होने विवाह करने की बात स्वीकार कर ली ॥२

स्ना अर्थे पाणी बहु देख्यो,
जामें भी जीव जाणे बहु ज्ञानी ॥ नु० ३ ॥

पिण प -पक्षी री हिंसा मोटी,
रक्षा पिण ज्यांरी मोटी ाणी ।
यो ही भेद सब जग ने बतावा,
स्नान कियो सूतर री या वाणी ॥ अनु० ४ ॥

भावार्थ :—दूल्हा बनाते समय भगवान् अरिष्टनेमि को स्नान कराने के लिए सोने चॉदी आदि के १०८ घड़ो का जल एकत्रित किया गया। उस जल मे अप्काय के असंख्य जीव हैं, इस बात को वे जानते थे किन्तु जिस प्रकार एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा पशु-पक्षी आदि पंचेन्द्रिय जीवो की हिंसा बड़ी है उसी प्रकार एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा पंचेन्द्रिय जीवो की रक्षा भी बड़ी है। यही भेद समस्त संसार को बताने के लिये जलस्नान करने मे भगवान् ने कोई आपत्ति नही की ॥४॥

मन्दमती कहे जीव सरीखा,
ए न्द्री पंचेन्द्री भेद न दाखे।
छोटी मोटी हिंसा रा भेद ने,
केई अज्ञानी सरीखा भाखे ॥ अनु० ५ ॥

जो या श्रद्धा नेम री होती,
तो पाणी ने देखि स्नान न करता ।
वाड़ा रा जीवां थी असंख्यगुणा ये,
तत्क्षण देखी ने पाछा फिरता ॥ अनु० ६ ॥
पशुपंखी री दया (रक्षा) रे मांही,
लाभ घणो प्रभु परगट कीनो ।
अल्प हिंसा पाणी री जाणे,
तिण थी पंचेन्द्रिय में मन (ध्यान) दीनो ॥७॥
छोटी मोटी हिंसा रक्षा रा,
ज्ञानी तो भेद परगट जाणे ।
मन्दमती रक्षा नहीं चावे,
तेथी ते तो ऊँधी ताणे ॥ अनु० ८ ॥

भावार्थ :—कितनेक मन्दबुद्धि एकेन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव की हिंसा को एक समान बताकर उसमे अल्प और महान् का भेद नही करते इसी तरह एकेन्द्रिय की दया की अपेक्षा पंचेन्द्रिय की दया को भी प्रधान नही मानते हैं, परन्तु यह उनका अज्ञान है क्योंकि उत्तराध्ययन सूत्र के उपरोक्त बाईसवे अध्ययन मे भगवान् अरिष्टनेमि के विवाह के निमित्त जलस्नान करना लिखा है। विवाह मण्डप मे बँधे हुए पशु-पक्षियोसे जल के जीव असंख्यगुणा अधिक थे फिर भगवान् उन जल के जीवो की हिंसा को देखकर स्नान करने से क्यो नही निवृत्त हो गये ? इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि भगवान् ने जल के जीवो की अपेक्षा मण्डप मे बाँधे हुए पंचेन्द्रिय जीवो की हिंसा को बहुत ज्यादा पाप और

एकेन्द्रिय की अपेक्षा पंचेन्द्रिय की दया को बहुत ज्यादा उत्तम समझा था। इसीलिये वे जलस्नान से तो निवृत्त न हुए परन्तु मण्डप मे बॉधे हुए पशुओ की रक्षार्थ वे निवृत्त हो गये।

इस प्रकार ज्ञानियो ने तो एकेन्द्रिय जीवो की अपेक्षा पंचेन्द्रिय जीवो की दया का महत्त्व स्पष्ट बतलाया है। किन्तु कितने ही मन्दबुद्धि जीवो को अनुकम्पा से ही द्वेष है, इसलिए वे अपनी विपरीत बुद्धि के कारण उल्टी बात की ही खीच करते है ॥८॥

स्नान करी परणीजण चाल्या,
तोरण पर देख्या बहु प्राणी।
बाड़ा पिंजर में रुकिया दुखिया,
सूत (सारथि) से पूछे करुणा आणी ॥ ६ ॥
सुख थीं ये जीव बिचारा,
क्योंकर यांने दुखिया कीधा।
तब तो सारथि इण विध बोले,
स्वामी वचन सुनो हम सीधा ॥ अनु० १० ॥

भावार्थ :—स्नान करके तथा वस्त्राभूषणो से सुसज्जित होकर भगवान् की बारात रवाना हुई। जब भगवान् तोरण के नजदीक पहुँचे तो उन्होने वहाँ बाड़ो और पिजरो मे बन्द किये हुए अनेक पशु-पक्षियो को देखा। प्रियजनो के वियोग से और मरण के भय से वे अत्यन्त दुःखी हो रहे थे। उन्हे देखकर करुणासागर भगवान् अपने सारथि से पूछने लगे कि सुख को चाहने वाले इन प्राणियो को यहाँ क्यो बन्द कर रक्खा है ? तब सारथि उत्तर देने लगा कि, हे भगवन ! सुनिये :—

ये सहू भद्रिक प्राणी प्रभुजी,
ब्याह कारण तुमरो मन आणी ।
आमिष (मांस) भक्षी रे भोजन सारू,
बाँध्या ै, घात दिल ठाणी ॥ अनु० ११ ॥

भावार्थ :—ये सब भोले प्राणी आपके विवाह के कारण एकत्रित कर यहाँ बाड़ो और पिजरों मे बन्द किये गये हैं। इन्हे मारकर आपके विवाह मे आये हुए मांसभोजी बारातियो को इनके मांस का भोजन कराया जायगा ॥११॥

सारथि वचने रु ज्ञान से जाणी,
दीनदया दया दिल आणी ।
जीवां तणो हित वंछ्यो स्वामी,
आतम सम जाण्या ते प्राणी ॥ अनु० १२ ॥

ब्याह रे ाज मरे बहु प्राणी,
हिंसा से डरिया निर्मल ज्ञानी ।
सारथि प्रभुजी री मनस्या जाणी,
जीवां ने छोड़ दिया अभयदानी ॥ अनु० १३ ॥

भावार्थ :—सारथि के उपरोक्त वचनो को सुनकर तथा अपने ज्ञान से जानकर दीनदयाल भगवान् का हृदय करुणा से भर गया। वे उन प्राणियो को अपनी आत्मा के समान समझ कर उनका हित (रक्षा) चाहने लगे कि यदि ये प्राणी मेरे विवाह के निमित्त मारे जायेगे तो यह कार्य बड़ा अनर्थकारी होगा।

इसलिये उनके हृदय मे अनुकम्पा के भाव उत्पन्न हुए कि इन प्राणियो को बन्धनमुक्त कर दिया जाय तो अच्छा हो। चतुर सारथि ने भगवान् के इन भावो को तत्क्षण जान लिया और उसने सब प्राणियो को बन्धनमुक्त कर अभयदान दे दिया। अभयदान प्राप्त कर वे सब प्राणी बड़े प्रसन्न होते हुए अपने- पने इष्ट स्थान की तरफ भाग गये ॥१२-१३॥

वि छू ं सूँ नेम ी हरष्या,
बत्तीसी दीनी सूत्र में गाई।
कुण्डल युग्म अरु कन्दोरो,
सर्व भूषण दी । बधाई ॥ अनु० १४॥

भावार्थ :—जब सारथि ने उन प्राणियो को छोड़ दिया तो इस कार्य से भगवान् बहुत खुश हुए। उसी समय उन्होने अपने कानो के कुण्डलों की जोड़ी, कन्दोरा और सर्व आभूषण उतार-कर सारथि को इनाम दे दिए ॥१४॥

पीछे वरषीदान जो दीधो,
दयादान दोनूँ ओलखाया।
संजम सहस्रावन में लीधो,
ेवल ले प्रभु मोक्ष सिधाया ॥ अनु० १५॥

भावार्थ :—फिर वहाँ से भगवान् वापिस लौट आये और दीक्षा लेने का विचार कर वे वार्षिक दान देने लगे। इस तरह संसार को दया और दान दोनो का पाठ पढ़ाकर भगवान् ने

सहस्राम्रवन मे संयम अङ्गीकार किया। फिर केवलज्ञान प्राप्त कर प्रभु मोक्ष पधार गये ॥१५॥

(है) "जीवां रो हित नहीं नेमजी वंछ्यो",
दीपिकादिक री साख बतावे।
दीपिका में हितकारी (अर्थ) भाख्यो,
उणने अज्ञानी जाण छिपावे ॥ अनु० १६॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक लोग कहते है कि 'भगवान् नेमिनाथ ने प्राणियो का हित नही चाहा था।' इसमे वे लोग दीपिका के पाठ का प्रमाण देते है किन्तु यह उनका अज्ञान है, क्योकि दीपिका मे 'जीवे हितः' अर्थात् 'जीवो के हितकारी' ऐसा स्पष्ट कहा है ॥१६॥

नहिं मारण ने हित बताओ,
(तो) जीव बचाया अहित किम थावे।
नहिं मारण निज हित पहिचाणो,
मरता बचाया स्वपर हित पावे ॥ अनु० १७॥

भावार्थ :—वे लोग कहते है कि 'किसी जीव को न मारना' यह 'हित' कहलाता है तो प्रश्न यह होता है कि 'जीवो को बचाना अर्थात् जीवो की रक्षा करना' इसमे क्या उन जीवो का अहित होता है ? अर्थात् नही होता। इसलिए ऐसा समझना चाहिए कि 'जीवो को न मारना स्वहित है और मरते हुए जीवो की रक्षा करना स्वपरहित है' अर्थात् जैसे कोई पुरुष जीवो को नही मारता तो वह अपना हितसाधन करता है किन्तु दूसरा

पुरुष जो जीवों को स्वयं मारता भी नहीं है और मरते हुए प्राणियों की प्राणरक्षा करता है, वह स्व और पर दोनों का हितसाधन करता है। ऐसे पुरुष को दुनिया 'परोपकारी' कहकर पुकारती है।

जीव बचे जीने रक्षा कही प्रभु,
देही (जीव) री रक्षा ने दया बताई।
संवरद्वार में पाठ उघाड़ो,
मन्दमती रे मन नहीं भाई ॥ अनु० १८ ॥

भावार्थ :—'जीव को बचाना' इसको तीर्थङ्करदेव ने 'रक्षा' कहा है और रक्षा ही दया कहलाती है। प्रश्नव्याकरण सूत्र के संवरद्वार मे रक्षा के 'रक्षा, दया, अभय' आदि साठ नाम बताये गये हैं। फिर भी कितनेक मन्दबुद्धि जीवों को 'मरते प्राणियो की रक्षा एवं दया' अच्छी नही लगती तो यह उनका पापकर्म का और अज्ञान का उदय समझना चाहिए ॥१८॥

जीवां ने नेमजी नाँय छुड़ाया,
मन्दमति एवी बात उचारे।
अवचूरी, दीपिका, टीका, अर्थ ने,
मिथ्या उदय थी नाय विचारे ॥ अनु० १९ ॥
जीव छु ां री बत्तीसी दीधी,
अवचूरी, दीपिका, टीका देखो।
मूलपाठे बत्तीसी भापी,
मन्दमति ! जरा समझो लेखो ॥ अनु० २० ॥

आज पिण या परतख दीखे छे,
मनमाने काम से स्वामी रीझे।
जब राजी हो बत्तीसी देवे,
पंडित न्याय विचारी लीजे ॥ अनु० २१ ॥

जीव छुट्यां प्रभु राजी न होता,
बत्तीस नेमजी काहे को देता।
निर्दय ऐसो न्याय न लेखे,
करुणाकर यों परगट ेतां ॥ अनु० २२ ॥

भावार्थ :—कितनेक मन्दबुद्धि पुरुष ऐसा कहते है कि 'भगवान् नेमिनाथ ने उन जीवो को छुड़ाया नहीं था।' यह उनका कथन मिथ्या है, क्योंकि अवचूरी, दीपिका और टीका का पाठ जो पहले लिखा जा चुका है उसमे स्पष्ट लिखा है कि 'विदित भगवदाकूतेन सारथिना मोचितेषु सत्त्वेषु परितोषितोऽसौ यत्कृतवांस्तदाह' अर्थात् भगवान् का अभिप्राय समझकर जब सारथि ने उन जीवो को बन्धनमुक्त कर दिया तब सारथि के इस कार्य से प्रसन्न होकर भगवान् ने अपने कानो के कुण्डल, कन्दोरा और सारे आभूषण उतारकर सारथि को इनाम दे दिये। यह बात मूलपाठ मे भी कही गई है।

आज भी यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि अपनी इच्छानुकूल कार्य हो जाने से स्वामी प्रसन्न होता है और तभी इनाम देता है। इसी तरह सारथि के कार्य से प्रसन्न होकर भगवान् ने उसे इनाम दिया था। यदि जीव छूटने से भगवान् प्रसन्न न होते और जीवरक्षा करने मे पाप होता तो भगवान् उन जीवो की रक्षा करने के

ारण सारथि पर प्रसन्न होकर उसे इनाम क्यों देते ? तथा उन जीवों की रक्षा के लिए भगवान् का भाव ही क्यो ? अतः भगवान् नेमिनाथ ने जो कार्य किया उससे मरते जीव की रक्षा करना परम धर्म सिद्ध होता है। जो लोग जीवरक्षा को एकान्त पाप कहते हैं उन्हे उत्सूत्रवादी (सूत्र से विपरीत कथन करने वाले) और निर्दयी समझना चाहिए ॥१६-२२॥

३-धर्मरुचि अनगार का क ण अधिकार

संक्षिप्त पूर्व था :—

पूर्व समय मे धर्मघोष नाम के एक महान् आचार्य थे। अपने शिष्य-परिवार के साथ ग्रामानुग्राम विहार करते हुए आचार्य एक समय चम्पा नगरी मे पधारे। उस समय उनके शिष्य उत्कृष्ट तपस्वी महामुनि धर्मरुचिजी के मासखमण (एक महीने की तपस्या) के पारणे का दिन आया। तब गुरु की आज्ञा लेकर गोचरी के लिए वे नगर मे प्रधारे। प्रथम ही मुनि ने नागश्री त्रा णी (द्रौपदी का पूर्वभव का जीव) के घर मे प्रवेश किया। उसने मुनि को कड़वे तूम्बे का शाक बहरा दिया। उसे लेकर मुनि अपने गुरु के पास आये और उन्होने वह आहार गुरु को दिखलाया। उस शाक को चखकर गुरु ने कहा कि 'यह तो कड़वे तूम्बे का शाक है। यदि तुम इसे खा लोगे तो तुम्हारी अकाल मृत्यु हो जायगी। इसलिये एकान्त निर्वद्य-स्थान मे जाकर इसको परठ दो।' गुरु की आज्ञा पाकर धर्मरुचि मुनि एकान्त स्थान मे आये। वहाँ आकर जमीन पर पहले एक बूँद डाली। शाक मे घृतादि पदार्थ खूब डाले हुये थे इसलिये उसकी सुगन्धि से बहुतसी कीड़ियाँ उस बूँद पर आई और उसके जहर से मर

गईं। यह देखकर मुनि का हृदय अनुकम्पा से भर आया। वे सोचने लगे कि 'जब एक बूँद से इतनी कीड़ियाँ मर गई हैं तो न जाने इस सारे शाक से कितने जीवों का नाश होगा ?' इस प्रकार कीड़ियों पर अनुकम्पा करके धर्मरुचि अनगार वह सारा शाक आप स्वयं पी गये। इससे उसी समय उनके शरीर में प्रबल वेदना उत्पन्न हुई। मुनि ने संथारा कर लिया। समाधिपूर्वक मरण प्राप्त कर वे सर्वार्थसिद्ध अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से चव कर वे महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होंगे और प्रव्रज्या ग्रहण कर मोक्षपद प्राप्त करेंगे।

❀ ढाल ❀

कडुक आहार जहर सम जाणी,
परठण री गुरु आज्ञा दीनी।
खावण रो निषेध जो कीनो,
धर्मरुचिजी 'तहत' कर लीनो ॥ अनु० १ ॥

भावार्थ :—धर्मरुचिजी द्वारा लाये हुए उस शाक को चख-कर जब धर्मघोष आचार्य ने यह जान लिया कि यह तो जहर के समान कडुवा है तब उन्होंने उसे खाने का निषेध कर दिया और निर्वद्य एकान्त स्थान में परठने की आज्ञा दे दी। धर्मरुचि मुनि ने गुरु की इस आज्ञा को 'तहत-तथास्तु' कहकर स्वीकार कर ली।

कडुक आहार सूँ कीड़ियाँ मरती,
अनुकम्पा नि मन मांही आणी।
कडुवा तूम्बा रो भोजन कीधो,
धर्मरुचिजी धन गुणखानी ॥ अनु० २ ॥

भावार्थ :—निर्वद्य एकान्त स्थान मे जाकर मुनि ने पहले उस शाक की एक बूँद जमीन पर डाली। उसकी सुगन्धि से आकर उस बूँद पर अनेक कीड़ियाँ मर गईं। यह देखकर मुनि का मन अनुकम्पा से भर आया। इससे उन्होने वह शाक जमीन पर नहीं डाला किन्तु वे स्वयं अपने आप पी गये। ऐसे गुणो के भण्डार और अनुकम्पा-दया के सागर धर्मरुचि अनगार धन्य है जिन्होने अपने शरीर की परवाह न करके कीड़ियों की अनुकम्पा की ॥२॥

गुरु आज्ञा बिन आहार कियो मुनि,
कीड़ियों री नुकम्पा आणी।
विशुद्ध भाव नि रा अति आ ,,
आराध हुआ गुणखानी ॥ अनु० ३ ॥

भावार्थ :—यद्यपि गुरु ने उस आहार को परठने की आज्ञा दी थी किन्तु कीड़ियो पर अनुकम्पा करके मुनि ने वह शाक स्वयं पी लिया। मुनि के हृदय मे अनुकम्पा के विशुद्धभाव आये थे इसीलिए वे आराधक अर्थात् निकटभविष्य मे मोक्ष प्राप्त करने वाले हो गये ॥३॥

कहत ों "ध रुचिजी (तो),
ीड़ियाँ बचावण भाव लाया।
ापां ँ मरता जीव जाणी ने,
पाप हटा मुनि कर्म खपाया" ॥ अनु० ४ ॥

भावार्थ :—कुतर्क करने वाले कुछ लोग इस विषय मे ऐसा कहते हैं कि 'धर्मरुचि मुनि के हृदय मे कीड़ियो की रक्षा करने के

भाव नहीं आये थे किन्तु अपने द्वारा मरती हुई कीड़ियों को जानकर उन्होंने अपने आपको पाप से बचाया था ॥४॥

जीव बचावा में पाप बतावा,
इण विध भोला ने भरमावे।
न्यायवादी ज्ञानी जन पूछे,
(तो) मन्दमती नें जवाब न आवें ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—जीव बचाने मे अर्थात् जीवो की रक्षा करने मे पाप बतलाने के लिए उपरोक्त प्रकार की कुतर्कें लगाकर वे लोग भोले जीवो को भ्रम मे डालते हैं किन्तु जब कोई बुद्धिमान् न्यायानुसार उन्हे इस विषय मे पूछता है तो उन मन्दबुद्धि कुतर्कियो को कुछ भी न्यायसंगत जवाब नही उपजता ॥५॥

अचित्त मही मुनि बिन्दू परठ्यो,
कीड़ियाँ मारण रा नहीं ामी।
ज्ञान बिना कीड़ियाँ खा मरती,
जाने बचावण कामी स्वामी ॥ अनु० ६ ॥
अचित्त भू परठ्यां पाप जो लागे,
तो गुरु परठण री आज्ञा न देता।
उच्चारादि नित नि परठे,
उपजे मरे जीव त्यां माहीं ेता ॥ अ ० ७ ॥
तिण री हिंसा मुनि ने नहीं लागे,
सूतर मांही गणधर भाषे।

रुचिजी तो विध से परठ्यो,
जिण में पाप कुतर्की दाखे ॥ अनु० ८॥
जो मुनि ड़वो तूम्बो न ाता,
तो परठ्यां दोष मुनि ने न कांई।
करुणासागर कीड़ियों रे खातिर,
निज तन री परवा नहिं लाई ॥ अनु० ६॥

भावार्थ :—धर्मरुचि मुनि ने अचित्त जमीन के ऊपर एक बूँद परठी थी किन्तु कीड़ियो को मारने के उनके परिणाम नहीं थे। किन्तु ज्ञान न होने के कारण उस सारे शाक को ाकर न जाने कितनी कीड़ियाँ मर जाती इसलिए उन्हें बचाने के परिणाम मुनि के हृदय मे उत्पन्न हुए।

जो लोग यह कहते हैं कि 'यदि मुनि उस शाक को परठ देते तो उसे ाकर जितनी कीड़ियाॅ मरती, उन सबका पाप मुनि को लगता। उस पाप से अपनी आत्मा को बचाने के लिए मुनि ने वह शाक पी लिया। इसलिए मुनि ने अपना पाप टाला था, किन्तु कीड़ियो की रक्षा नहीं की।' उनका यह कहना मिथ्या है ोकि यदि अचित्त पृथ्वी पर परठने से मुनि को पाप लगता तो गुरु महाराज उन्हें परठने की आज्ञा क्यो देते? मुनि अचित्त पृथ्वी पर रोजाना मलमूत्रादि परठते हैं, उनमे कितने ही जीव उत्पन्न होते हैं और मरते है किन्तु उनकी हिंसा मुनि को नहीं लगती, ऐसा शास्त्रो मे गणधर देवो ने स्पष्ट फरमाया है। धर्म-रुचि मुनि तो शास्त्र की विधि अनुसार परठते फिर उन्हे पाप कैसे लगता? यदि वे उस कड़ुवे तूम्बे के शाक को न खाते और पृथ्वी पर परठ देते तो मुनि को कोई दोष नहीं लगता, उन्हें कोई

पाप नहीं लगता किन्तु वे महामुनीश्वर करुणासागर थे इसलिए उन्होने अपने शरीर की भी परवाह न करके कीड़ियो पर अनु-कम्पा कर उन्हे बचाया ॥८-९॥

या अधि ई जीव-दया री,
सूतर में गणधरजी गाई।
'पराणुकंपे नो यायाणुकंपे'
चौथा ठाणा में यों दरशाई ॥ अनु० १०॥

भावार्थ :—धर्मरुचि मुनि ने अपने शरीर की भी परवाह न करके कीड़ियो की अनुकम्पा कर उन्हे बचाया, यह उनकी दया की विशिष्टता थी। विशिष्ठ पुरुष ही ऐसा कर सकते हैं, सामान्य व्यक्ति नही। ऐसे विशिष्ठ पुरुषो को ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे मे †'परानुकम्पक, न आत्मानुकम्पक' अर्थात् अपने शरीर की भी परवाह न करके दूसरो की अनुकम्पा करने वाला कहा है ॥१०॥

† नोट :—ठाणांग सूत्र के चौथे ठाणे मे चार प्रकार के पुरुष कहे गये है। वह पाठ टीका सहित यहाँ लिखा जाता है —

चत्तारि पुरिस-जाया पण्णत्ता तजहाः—
यायाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए,
पराणुकंपए णाममेगे णो आयाणुकंपए,
एगे आयाणुकंपए वि पराणुकंपए वि,
एगे णो आयाणुकंपए णो पराणुकंपए।

(ठाणाग सूत्र ठाणा ४ सूत्र ३५२)

टीका :—आत्मानुकम्पकः आत्महितप्रवृत्तः प्रत्येकबुद्धो जिनकल्पिको वा परानपेक्षो निर्घृणः। परानुकम्पकः निष्ठितार्थतया तीर्थङ्कर, आत्मानपेक्षो वा दयैकरसो मेतार्यवत्। उभयानुकम्पकः स्थविरकल्पिकः। उभयाननुकम्पकः पापात्मा कालशौकरिकादिरिति।

अर्थ :—(१) जो अपनी ही अनुकम्पा करते है परन्तु दूसरे की नहीं करते। इस प्रथम भङ्ग के स्वामी तीन पुरुष होते हैं:— प्रत्येकबुद्ध, जिनकल्पी और दूसरे की अपेक्षा न करने वाला निर्दयी पुरुष—ये तीनो अपने ही हित मे तत्पर रहते हैं, दूसरों का हित नहीं करते। (२) जो दूसरे की अनुकम्पा करता है, अपना हित नहीं करता वह दूसरे भङ्ग का स्वामी है। ऐसा पुरुष निष्ठितार्थ होने से तीर्थङ्कर होते हैं अथवा अपनी परवाह नहीं रखने वाला मेतार्य मुनि की तरह परम दयालु पुरुष होता है। (३) जो अपनी और दूसरे की दोनो की अनुकम्पा करता है वह तीसरे भङ्ग का स्वामी है, ऐसा पुरुष स्थविरकल्पी साधु होता है। स्थविरकल्पी साधु अपनी और दूसरे की दोनों की अनुकम्पा करता है। (४) जो अपनी भी अनुकम्पा नहीं करता और दूसरे की भी अनुकम्पा नही करता वह पुरुष चौथे भङ्ग का स्वामी है। ऐसा पुरुष कालशौकरिक (कालिया कसाई) आदि की तरह अतिशय पापी होता है।"

इस चौभङ्गी मे बतलाया गया है कि स्थविरकल्पी साधु उभयानुकम्पी है। वह अपनी और दूसरे की दोनो की अनुकम्पा करता है। अतः मरते प्राणी की रक्षा करना स्थविरकल्पी साधु का धार्मिक कर्तव्य है। जो स्थविरकल्पी साधु कहलाकर दूसरे जीव की रक्षा नहीं करता वह उक्त पाठानुसार अपने कर्तव्य से पतित होता है। जिनकल्पी और प्रत्येक बुद्ध साधु दूसरे की

अनुकम्पा नहीं करते, दूसरों को दीक्षा भी नहीं देते, शिष्य भी नहीं बनाते, प्रत्याख्यान नहीं कराते किन्तु अपने ही हित में प्रवृत्त रहते हैं। इसलिए वे प्रथम भङ्ग के स्वामी कहे गये हैं। उनकी तरह जो दूसरे की अनुकम्पा नहीं करता है उसे प्रथमभङ्ग का स्वामी निर्दयी समझना चाहिए। क्योंकि इस समय जिन-कल्पी और प्रत्येकबुद्ध साधु तो होते ही नहीं है।

परजीवां रा प्राण बचावरण,
अपना प्राण री परवा न राखे।
ऐसा तो विरला इण जग में,
धर्मरुचि सा शास्तर साखे ॥ अनु० ११ ॥

भावार्थ :—अपने शरीर की भी परवाह न करके दूसरे जीवों की रक्षा करने वाले धर्मरुचि अनगार सरीखे केवल परानुकम्पक (एकान्त परोपकारी) पुरुष इस संसार मे विरले ही होते है। शास्त्रो मे भी ऐसे उदाहरण बहुत थोड़े मिलते है ॥११॥

४—श्री महावीर स्वामी का गोशालक पर अनुकम्पा-अधिकार

इस प्रकरण की संक्षिप्त पूर्व कथा :—

भगवान् महावीर स्वामी जिस समय छद्मस्थ थे उस समय गोशालक मंखलिपुत्र अपने आपको उनका शिष्य बतलाता था। एक समय भगवान् विहार करके जा रहे थे। गोशालक भी उनके पीछे-पीछे जा रहा था। मार्ग मे उसने वैश्यायन बालतपस्वी को

देखा जो सूर्य की आतापना ले रहा था और सूर्य के प्रचण्ड ताप से जो जूँ आदि उसकी बढ़ी हुई लम्बी जटा में से नीचे गिर रही थी उसे उठा कर वह वापिस अपने केशों मे र ता जा रहा था। उसे देखकर गोशालक ने उसका उपहास करते हुए कहा कि 'तुम मुनि हो या जूँ आदि की शय्या हो।' यह सुनकर वैश्यायन बालतपस्वी ने गोशालक की बात पर कुछ ध्यान नहीं दिया किन्तु मौन धारण करके रहा। पश्चात् गोशालक ने दो तीन बार यही बात कही तब उसे क्रोध आ गया। क्रोध के मारे मिस-मिस करता हुआ वह आतापना भूमि से पीछे हठा। पीछे हटकर उसने तेज का समुद्घात किया। तेज का समुद्घात करके सात आठ पैर पीछे हटकर गोशालक का वध करने के लिये अपने शरीर सम्बन्धी उस तेज को गोशालक पर फैंका। तब गोशालक की अनुकम्पा के लिये उस पर आती हुई तेजोलेश्या के निवारणार्थ श्री महावीर स्वामी ने शीतल लेश्या छोड़ी। उस शीतल लेश्या से वैश्यायन बालतपस्वी की वह उष्ण तेजोलेश्या शान्त हो गई। फिर भगवान् आगे विहार कर गये और गोशालक भी उनके पीछे चला गया।

❀ ढाल ❀

केवलज्ञानी वीर जिनेश्वर,
गोतमजी ने भेद बतायो।
दयाभाव अनुकम्पा करने,
मैं पिण गोशाला ने बचायो॥ अनु० १॥

भावार्थ :—केवलज्ञान उत्पन्न होने के पश्चात् सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् महावीर स्वामी ने अपने शिष्य गणधर गौतम स्वामी

को यह फरमाया था कि हे गौतम ! दयाभाव एवं अनुकम्पा करके मैंने गोशालक को बचाया था ॥१॥

गोशाल बचाया में पाप होतो तो,
गोतमजी ने क्यों नहीं कीनो ।
'पाप कियो मैं तुम मत करज्यो,
यो उपदेश प्रभू क्यों न दीनो ॥ अनु० २ ॥

भावार्थ :—जो लोग ऐसा कहते है कि भगवान ने गोशालक को बचाया था इससे उन्हे पाप लगा था । उन लोगो से पूछना चाहिये कि गोशालक को बचाने से यदि भगवान् को पाप लगा होता तो केवलज्ञानी होने के बाद भगवान् ने गौतमस्वामी आदि को ऐसा उपदेश क्यो नही दिया कि 'मैने जो गोशालक को बचाया था वह पाप किया था—उससे मुझे पाप लगा, तुम लोग ऐसा पाप का कार्य मत करना' इत्यादि । यदि गोशालक को बचाने से भगवान् को पाप लगा होता तो वे गौतमस्वामी को ऐसा उपदेश जरूर देते ।

केवली तो अनुकम्पा केवे,
मन्दमती तामें पाप बतावे ।
ज्ञानी वचन तज मूढां री माने,
वे नर मोह मिथ्यातम पावे ॥ अनु० ३ ॥

भावार्थ :—उपरोक्त उपदेश न देकर भगवान् ने तो गौतमस्वामी को ऐसा उपदेश दिया कि हे गौतम ! गोशालक को बचाकर मैंने उस पर अनुकम्पा की थी । जिस कार्य को स्वयं भगवान्

अनुकम्पा कहे उस कार्य को पाप बताने वाले व्यक्ति को मूर्ख एवं अज्ञानी समझना चाहिये और जो लोग केवल ज्ञानियों के वचनो को छोड़कर ऐसे अज्ञानी की बात को मानते है उन्हें मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का बंध होता है ॥३॥

असंजती रो नाम लेई ने,
गो ाल बचाया रो पाप जो केवे ।
माखी मूषक पात्र से काढ़े,
ज्यां रो तो ज्वाब सरल नहीं देवे ॥ नु० ४॥
जूँवां संजती ने वे पोषे,
पाप जाणे तो क्यों नहीं फेंके ।
जद कहे म्हारी दया उठ जावे,
तो वीर ने दोष कहो कुण लेखे ॥ अनु० ५॥

भावार्थ :—'गोशालक असंयति था इसलिए उसे बचाने से भगवान् को पाप लगा'—जो लोग इस तरह कहते हैं उनसे पूछना चाहिये कि तुम्हारे पात्र (जल के पातरे) मे यदि मक्खी और चूहा आदि गिर जाय तो उसे बाहर निकालते हो या नही ? और यदि तुम्हारे कपड़ो वगैरह मे जूँएँ पड़ जाय तो तुम उनका पोषण करते हो या नही ? तब वे कहते है कि हमारे पात्र मे गिरी हुई मक्खी चूहे आदि को हम बाहर निकाल देते है और जूँओ का भी पोषण करते है क्योंकि यदि ऐसा न करे तो हमारी दया ही उठ जाय । तब फिर उनसे पूछना चाहिये कि जब तुम स्वयं असंयति मक्खी, चूहे और जूँओ आदि की रक्षा करते हो और इस कार्य से अपने-आपको पाप लगना नही मानते फिर

गोशालक को बचाने से भगवान् महावीर स्वामी को पाप लगना कैसे बतलाते हो ? ॥४-५॥

प्राणी आदि अनुकम्पा करने,
वैसायण जूँवां शिर धारे।
सूत्र भगोती शतक पन्द्रहवें,
केवलज्ञानी वचन उचारे ॥ अनु० ६ ॥

भावार्थ :—आतापना लेते हुए वैश्यायन बालतपस्वी के शरीर से जो जूँएँ नीचे गिर रही थीं उन पर अनुकम्पा करके वह उन्हें उठाकर वापिस अपने शिर पर रखता था यह बात केवलज्ञानी भगवान् महावीर स्वामी ने भगवती सूत्र के पन्द्रहवे शतक मे फरमाई है ॥६॥

प्राणी भूत जीव सत्त्वानुकम्पा,
साता वेदनी रो कारण भाख्यो।
सप्तम शत छठे उद्देशे,
वीर प्रभू गोतम ने दाख्यो ॥ अनु० ७ ॥

भावार्थ :—प्राणी (बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौइन्द्रिय), भूत (वनस्पतिकाय), जीव (पंचेन्द्रिय) और सत्त्व (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय और वायुकाय) इनकी अनुकम्पा करने से सातावेदनीय कर्म का बन्ध होता है। यह भगवती सूत्र के सातवें शतक के छठे उद्देशे मे श्री वीर प्रभु ने गौतमस्वामी को लक्ष्य करके फरमाया है ॥७॥

मेघकुँवर अधिकार पाठ यों,
णी भूतादि जीवदया रो।
याँ पाठाँ में असंजती आया,
पाप नहीं अनुकम्पा किया रो ॥ अनु० ८॥

भावार्थ :—श्री ज्ञातासूत्र के प्रथम अध्ययन मे जहाँ मेघकुमार के पूर्वभव का वर्णन किया गया है वहाँ इस तरह पाठ आया है :—'पाणाणुकंपाए भूयाणुकंपाए जीवाणुकंपाए सत्ताणुकंपाए' अर्थात् मेघकुमार के जीव ने हाथी के भव मे प्राणी-भूत जीव सत्त्व की अनुकम्पा करके संसार परिमित किया था।

उपरोक्त इन सब पाठो मे असंयतियो की अनुकम्पा का वर्णन किया गया है किन्तु उन असंयतियों की अनुकम्पा का फल पाप होना कहीं नही बतलाया गया है ॥८॥

नुकम्पा उठावण कारण,
वीर ने द्वेषी पाप बतावे।
सूत्र रो न्याय बतावे ज्ञानी,
ो न्दमती ने जवाब आवे ॥ अनु० ९॥

भावार्थ :—तब फिर भगवान् ने असंयति गोशालक को बचा दिया तो उन्हें पाप कैसे लग सकता है ? किन्तु अनुकम्पा के द्वेषी लोग संसार से अनुकम्पा को उठा देने के लिए वीर भगवान् को गोशालक की अनुकम्पा से पाप होना बतलाते हैं। जब पण्डित पुरुष उन्हे सूत्र का न्याय बतलाते है तब उन मन्द-बुद्धियो को कोई उत्तर नहीं आता ॥९॥

जब भगवान् केवलज्ञानी हो गये थे उसके बाद एक समय का जिक्र है कि गोशालक, जहाँ भगवान् विराजते थे वहाँ आया। गोशालक के आने से पहले ही भगवान् ने अपने सब साधुओ से कह दिया था कि 'गोशालक यहाँ आकर कुछ कहे, यहाँ तक कि मेरा अवर्णवाद भी बोले तो भी कोई साधु उसको जवाब न दे और उसके साथ वादविवाद न करे।'

जब गोशालक आकर भगवान् के सामने उटपटांग बोलने लगा तो सब साधु मौन रहे किन्तु सुनक्षत्र और सर्वानुभूति इन दो मुनियो से नही रहा गया। वे उससे वादविवाद करने लगे। क्रोध मे आकर गोशालक ने उन पर तेजोलेश्या फेकी जिससे उन दोनो मुनियो की घात हो गई।

इस पर वे लोग प्रश्न करते है :—

"दोय साधां ने क्यों न बचाया,
गोशाला थी बलता जाणी।"

भावार्थ :—यदि मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने मे धर्म होता है तो गोशालक की तेजोलेश्या से जलकर मरते हुए सुनक्षत्र और सर्वानुभूति इन दो साधुओ की रक्षा भगवान् ने क्यो नही की?

आयुष आयो ज्ञानी जाण्यो,
न्याय न सोचे खेंचाताणी ॥ अनु० १० ॥

भावार्थ :—उन दोनो साधुओ का आयुष्य आ चुका था और गोशालक द्वारा उन दोनो का मरना अवश्यंभावी था। टीका मे यह बात स्पष्ट कही गई है। वह टीका यह है :—

'अवश्यंभावित्वाद्वेत्त्यवसेयम्'

अर्थात्—गोशालक के द्वारा सुनक्षत्र और सर्वानुभूति का मरना अवश्य होनहार था इसलिये भगवान् ने उनकी रक्षा नहीं की। यदि रक्षा करने मे पाप होता तो टीकाकार यह स्पष्ट लिख देते कि 'जीवरक्षा में पाप होना जानकर भगवान् ने उनकी रक्षा नहीं की' किन्तु टीकाकार ने ऐसा नहीं कहकर सुनक्षत्र और सर्वानुभूति को नहीं बचाने का कारण 'अवश्य होनहार' बतलाया है ॥१०॥

विहार करायां तो थारे (पिण) लेखे,
दोष तो कोई लेश न लागे।
क्यों न विहार करायो स्वामी,
घात टणता दोनां री सागे ॥ अनु० ११ ॥

भावार्थ :—वे लोग मरते जीव की रक्षा करने मे पाप कहते हैं किन्तु किसी साधु को विहार कराने मे पाप नही मानते। इसलिये उनसे पूछा जाता है कि थोड़ी देर के लिये तुम्हारा कथन मान लिया जाय कि रक्षा करने मे पाप होता है—ऐसा जानकर भगवान् ने उन दोनो साधुओं की रक्षा नही की। किन्तु साधुओं को विहार कराने मे तो तुम भी पाप नही मानते, फिर भगवान् ने उन दोनो साधुओं को वहाँ से विहार क्यो नही करा दिया? क्योकि ज्ञानी होने के कारण उनको यह ज्ञान तो अवश्य था कि गोशालक की क्रोधाग्नि से इन दोनो की घात होने वाली है ॥११॥

जद कहे "निश्चय ज्ञान में देख्यो,
दोनां री घात यहाँ इज आई।

जां सूँ विहार राखो नाहीं,
भवितव्यता टाली नहीं जाई" ॥ अनु० १२ ॥

भावार्थ :—तब वे कहते हैं कि भगवान् केवलज्ञानी थे। उन्होने अपने ज्ञान से जान लिया था कि सुनक्षत्र और सर्वानुभूति की घात गोशालक द्वारा यही पर होने वाली है। जो होनहार (भवितव्यता) होती है वह टाली नही जा सकती ॥१२॥

सरल भ यों ही तुम शरधो,
अनुकम्पा में पाप न कांई।
ज्ञानी ज्ञान देखे ज्यों बरते,
तिण री खैंच करो मत भाई ॥ अनु० १३ ॥

भावार्थ :—इसलिये उन लोगो से कहना है कि सरलभाव से तुम यही बात समझो कि 'होनहार' को जानकर ही भगवान् ने उन दोनो साधुओ की रक्षा नहीं की थी किन्तु रक्षा करने मे पाप समझकर नही। केवलज्ञानी पुरुप जैसा अपने ज्ञान मे देखते है वैसा ही करते है इसलिए उनके विपय मे किसी को खींचातान (दुराग्रह) नहीं करना चाहिये ॥१३॥

अनुकम्पा सावज थापण ने,
सूत्रपाठ रा अरथ ने ठेले।
छः लेश्या छद्मस्थ वीर रे,
बोल मिथ्याती पाप को झेले ॥ अनु० १४ ॥

भावार्थ :—अनुकम्पा को सावद्य वतलाने के लिए वे लोग सूत्र के पाठो की उपेक्षा करके उनका विपरीत एवं अपना मनमाना

कर डालते हैं उन लोगों का कथन है कि छद्मस्थ अवस्था में भगवान् महावीरस्वामी मे छः लेश्याएँ थी । इस प्रकार छद्मस्थ वीर में छः लेश्याओं का कथन करके वे मिथ्यात्वी पाप का उपार्जन करते हैं ॥१४॥

नील गो लेश्या रा,
भाव में साधुपणो नहीं पावे ।
शत पहले उद्देशे,
वीर में षट्लेश्या किम थावे ॥ अनु० १५ ॥

अर्थः—संयमधारी साधुओं मे तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन भाव लेश्याएँ होती है, कृष्ण, नील और कापोत भाव लेश्याएँ नही होती यह भगवती प्रथम शतक प्रथम उद्देश मे कहा है । इसलिये वहाँ का पाठ टीका के साथ लिखा जाता है :—

लेस्सा जहा ओहिया ... एहलेसस्स नीललेसस्स लेसस्स जहा ओहिया जीवा णवरं पमत्ता अपमत्ता भणियव्वा । तेउलेसस्स पम्हलेसस्स सुक्कलेसस्स जहा ओहिया जीवा णवरं सिद्धा भणियव्वा ।

(भगवती शतक १ उद्दे० १)

इसकी टीका इस प्रकार है :—

"लेस्साणं भंते ! जीवा किं आयारंभे" इत्यादि तदेव सर्वं नवरं जीवस्थाने सलेश्या इति वाच्यं, इत्ययमेको दण्डकः । कृष्णादि लेश्या-भेदात् तदन्ये षट् तदेवमेते सप्त तत्र "किण्ह लेसस्स" इत्यादि कृष्णलेश्यस्य नीललेश्यस्य कापोतलेश्यस्य च

जीवराशेर्दण्डको यथौघिक जीवदण्डकस्तथाऽध्येतव्यः प्रमत्ता-प्रमत्तविशेषणवर्ज्यः "कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति" यच्चोच्यते "पुव्वं पडिवण्णाओ पुण अण्णयरिए उ लेस्साए' त्ति तद् द्रव्यलेश्यां प्रतीत्येति मंतव्यम्। ततस्तासु प्रमत्ताद्यभावः। तत्र सूत्रोच्चारणमेवं "किण्हलेस्साणं भंते! जीवा किं आयारंभा परारंभा तदुभयारंभा अणारंभा? गोयमा, आयारंभा वि जाव णो अणारभा। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा, अविरयं पडुच्च" एवं नीलकापोतलेश्यादण्डकावपीति तथा तेजोलेश्यादेर्जीवराशेर्दण्डका यथौघिक जीवास्तथा वाच्या नवरं, तेषु सिद्धा न वाच्याः सिद्धानामलेश्यत्वात्। तच्चैवं "तेउलेस्साणं भंते! जीवा किं आयारंभा परारंभा तदुभयारंभा अणारंभा? गोयमा, अत्थेगइया आयारंभावि जाव णो अणारंभा। अत्थेगइया नो आयारंभा जाव अणारंभा। से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ? गोयमा, दुविहा तेउलेस्सा पण्णत्ता संजयाए असंजयाए।"

इस टीका के अनुसार मूलपाठ का अर्थ यह है :—

जीव दो प्रकार का होता है—एक सलेश्य और दूसरा अलेश्य। सलेश्य जीवो का वर्णन सामान्य जीवो के वर्णन के समान जानना चाहिये। कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवों का वर्णन भी समुच्चय जीवो के वर्णन के समान ही जानना चाहिये परन्तु इनमे प्रमादी और अप्रमादी ये दो भेद नही होते क्योंकि कृष्ण, नील और कापोत भाव लेश्याओ मे संयतपना (साधुपना) नहीं होता। कहीं-कहीं साधुओ मे छः लेश्याओ का भी उल्लेख है, वह द्रव्यलेश्या की अपेक्षा समझना चाहिए, भाव-लेश्या की अपेक्षा नहीं। अतः कृष्ण, नील और कापोत इन तीन भावलेश्याओ मे प्रमत्त और अप्रमत्तरूप दो भेद नहीं कहने

चाहिए। ष्णादि लेश्याओ मे सूत्र का उ रण इस प्रकार करना चाहिए—"कण्हलेस्साणं भंते ! जीवा" इत्यादि।

अर्थात्—हे भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले जीव आत्मारंभी परारंभी और तदुभयारम्भी होते हैं या अनारम्भी होते हैं ?

उत्तर :—हे गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीव आत्मारम्भी परारम्भी और तदुभयारम्भी होते हैं, अनारम्भी नहीं होते।

प्रश्न :—हे भगवन् ! कृष्णलेश्या वाले जीव अनारम्भी नही होते किन्तु आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते हैं इसका क्या कारण है ?

उत्तर :—हे गौतम ! कृष्णलेश्या वाले जीव अव्रत की अपेक्षा से आत्मारम्भी, परारंभी और तदुभयारम्भी होते है, अनारम्भी नही होते। इसी तरह नील और कापोत लेश्या वाले जीवों को भी समझना चाहिए।

तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या वाले जीवो को समुच्चय जीवों के समान ही समझना चाहिये परन्तु इनमे सिद्ध जीवों को न कहना चाहिये क्योंकि सिद्ध जीवो मे कोई लेश्या नही होती।

प्रश्न :—हे भगवन् ! तेजोलेश्या वाले जीव आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते है या अनारम्भी होते हैं ?

उत्तर :—हे गौतम ! तेजोलेश्या वाले कोई-कोई जीव आत्मारंभी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते है, अनारम्भी नही होते और कोई-कोई अनारम्भी होते है। आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी नही होते।

प्रश्न :—हे भगवन् ! तेजोलेश्या वाले जीवो मे ये दो भेद क्यों होते है ?

उत्तर :—हे गौतम ! तेजोलेश्या वाले जीव दो तरह के होते है, एक संयत और दूसरे असंयत। संयत भी दो प्रकार के होते है—प्रमादी और अप्रमादी। अप्रमादी आत्मारंभी परारम्भी और तदुभयारम्भी नहीं होते, अनारम्भी होते है परन्तु प्रमादी, अशुभयोगी साधु अशुभ योग की अपेक्षा से आत्मारम्भी, परारम्भी और तदुभयारम्भी होते है, अनारम्भी नही होते।

यह भगवती सूत्र के उपरोक्त मूलपाठ और टीका का अर्थ है।

इस पाठ मे कहा है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्या वाले जीवो को ओधिक दण्डक के जीवो के समान ही समझना चाहिये परन्तु विशेष इतना है कि कृष्ण, नील और कापोत लेश्याओ मे प्रमादी और अप्रमादी ये दो भेद नही होते।

इस मूलपाठ की बात का अभिप्राय बतलाते हुए टीकाकार ने लिखा है कि :—

"कृष्णादिषु हि अप्रशस्तभावलेश्यासु संयतत्वं नास्ति"

अर्थात् :—कृष्ण, नील और कापोत इन भावलेश्याओ में साधुपन नही होता। इसलिये कृष्णादि तीन अप्रशस्त भावलेश्याओ मे प्रमादी और अप्रमादी ये दो भेद वर्जित किये गये हैं। अतः साधुओ मे तेजो, पद्म और शुक्ल ये तीन प्रशस्त भावलेश्याएँ ही होती है, कृष्णादि तीन अप्रशस्त भावलेश्याएँ नहीं होती है।

उत्तराध्ययनसूत्र के चौतीसवे अध्ययन मे लेश्याओं का विस्तृत वर्णन किया गया है। वहाँ पर इन लेश्याओं के धारक पुरुषों का वर्णन किया गया है। वे गाथाएँ ये हैं :—

पंचासवप्पमत्तो, तीहिं अगुत्तो छसु अविरओ य।
तिव्वारम्भपरिणओ, खुद्दो साहसिओ णरो ॥२१॥
निद्धंसपरिणामो, निस्संसो अजिइंदिओ।
एय जोग-समाउत्तो, किण्हलेसं तु परिणमे ॥२२॥

अर्थ :—मिथ्यात्व, अव्रत, प्रमाद, कषाय और अशुभ योग रूप पाँच आस्रवो का निरन्तर सेवन करने वाला मन, वचन, काया का असंयमी, छः काय की हिंसा मे आसक्त, तीव्र आरंभ करने वाला अर्थात् सदा आरम्भ मे मग्न रहने वाला एवं पाप के कार्यों मे प्रबल पराक्रमी, क्षुद्र आत्मा वाला, क्रूर, अजितेन्द्रिय, सबका अहित करने वाला और बुरी भावना वाला, इन लक्षणो से युक्त जीव को कृष्ण लेश्या वाला समझना चाहिये।

इस्सा मरि अतवो, अविज्जमाया अहीरिया।
गेही पओसे य सढे, पमत्ते रस लोलुए ॥२३॥
सायगवेसए य आरंभाओ विरओ, खुद्दो साहस्सिओ नरो।
एय जोग-समाउत्तो, नील-लेसं परिणमे ॥२४॥

र्थ :—ईर्ष्यालु, कदाग्रही, किसी भी प्रकार का तप न करने वाला, अज्ञानी, मायावी, निर्लज्ज, लंपट, द्वेषी, रसलोलुपी, शठ, प्रमादी, स्वार्थी, आरम्भी, क्षुद्र तथा पापकार्यों मे साहसी, इन लक्षणो से युक्त जीव को नील लेश्या वाला समझना चाहिये।

वंके वंक-समायारे, नियडिल्ले अणुज्जुए।
पलिउंचग ओवहिए, मिच्छादिट्ठी अणारिए ॥२५॥
उप्फालग दुट्ठवाई य, तेणे यावि य मच्छरी।
एय जोग-समाउत्तो, काउलेसं तु परिणमे ॥२६॥

अर्थ :—कुटिल वचन बोलने वाला एवं कुटिल ही आचरण करने वाला, कपटी, अभिमानी, अपने दोषो को छिपाने वाला, परिग्रही, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, चोर और मर्मभेदी वचन बोलने वाला, इन लक्षणो से युक्त जीव को कापोत लेश्या वाला समझना चाहिए।

श्रीभगवती सूत्र और उत्तराध्ययन सूत्र के उपरोक्त मूलपाठ मे यह स्पष्ट बतलाया गया है कि कृष्ण, नील और कापोत इन तीन अप्रशस्त भावलेश्याओ मे संयतपना (साधुपना) नहीं होता। जब इन तीन अप्रशस्त भाव लेश्याओ मे साधुपना ही नही होता तब तीर्थङ्कर भगवान् श्री महावीरस्वामी मे छः लेश्याएँ कैसे हो सकती हैं ? अर्थात् नही हो सकती। उनमे सिर्फ तीन प्रशस्तभाव लेश्याएँ ही थी। उनमे छः भाव लेश्याओ का कथन करना शास्त्र-विरुद्ध एवं मिथ्या है ॥१५॥

'षायकुशील' रो नाम लेईने,
अज्ञानी भोला ने भरमावे।
मूल उत्तर गुण दोष न सेवे,
भाव माठी लेश्या किम पावे ॥ अनु० १६॥
कषायकुशील भावलेश्या जो माठी,
होती तो अपडिसेवी क्यों कहता।

इण लेखे द्रव्य लेश्या छः जाणो,
भावलेश्या द्व भाव बदीता ॥ अनु० १७॥

भावार्थ :—वे लोग कहते हैं कि निर्ग्रन्थ के जो पाँच भेद बतलाये गये हैं उनमे कषायकुशील निर्ग्रन्थ मे छः लेश्याओं का कथन किया गया है। वीर भगवान् भी कपायकुशील निर्ग्रन्थ थे। इसलिये उनमे छः लेश्याएँ थीं। इस प्रकार कहकर वे अज्ञानी भोले जीवो को भ्रम मे डालते हैं क्योंकि जहाँ कषायकुशील निर्ग्रथ मे छः लेश्याओं का कथन किया गया है वहाँ द्रव्यरूप समुच्चय छः लेश्याएँ कही गई हैं, भाव छः लेश्याएँ नहीं। कषायकुशील निर्ग्रन्थ मूलगुण और उत्तरगुणो मे दोष का अप्रतिसेवी कहा गया है अर्थात् वह मूलगुणों में और उत्तरगुणों मे किसी प्रकार का दोष नही लगाता। फिर उसमे छः भावलेश्याएँ कैसे पाई जा सकती हैं? मूलगुण उत्तरगुण के प्रतिसेवी निर्ग्रन्थ में भी छः लेश्याएँ नहीं पाई जातीं तो अप्रतिसेवी कपायकुशील निर्ग्रन्थ में छः लेश्याएँ कैसे पाई जा सकती हैं? इसलिये यह समझना चाहिए कि शास्त्र मे जहाँ कपायकुशील निर्ग्रन्थ मे छः लेश्याओ का कथन किया गया है वह द्रव्य लेश्याओं की अपेक्षा से है। भावलेश्या की अपेक्षा तो उसमे तीन शुद्ध भाव लेश्याएँ ही पाई जाती हैं ॥१६-१७॥

'कषायकुशील' [illegible]दि चारित्रे,
[illegible]: लेश्या रो नाम जो आयो।
[illegible]थम शत[illegible] दूजे उद्देशे,
टीका में तिणरो भेद बतायो ॥ [illegible]० १८॥

किसन नील कापोत लेश्या में,
साधुपणो शुद्ध भावे न जाणो।
छः लेश्या तिण लेखे कहिये,
भावे तो तीनों ही शुद्ध पिछाणो ॥ अनु० १९ ॥

भावार्थ :—कषायकुशील और सामायिक चारित्र मे जो छः लेश्याओ का कथन किया गया है उसका स्पष्टीकरण श्रीभगवतीसूत्र के प्रथम शतक दूसरे उद्देशे की टीका मे किया गया है कि कृष्णलेश्या, नील लेश्या और कापोत लेश्या ये तीन अशुद्ध लेश्याएँ हैं। इनमे साधुपन नही होता, साधुपने मे तो तीन शुद्ध भाव लेश्याएँ ही होती हैं। इसलिये जहाँ छः लेश्याओ का कथन है वहाँ द्रव्य लेश्याओं की अपेक्षा से समझना चाहिये ॥१८-१९॥

तेथी छै लेश्या द्रव्य कहिये,
भावे तो तीनों ही शुद्ध पिछाणो।
कषायकुशील अरु संजम मांही,
भाव खोटी लेश्या मत ताणो ॥ अनु० २० ॥

छेदोपस्थापन अरु सामायिक,
संयम छै लेश्या द्रव्य जाणो।
यो ही न्याय मनःपर्यवज्ञाने,
भावे तो तीनों ही शुद्ध पिछाणो ॥ अनु० २१ ॥

इण न्याय द्रव्य छै लेश्या पावे,
ज्ञानी न्याय जुगत से बतावे।

ाझा होय विवे सूँ तोले,
खोटी ताण से समकित जावे ॥ अनु० २२ ॥

भावार्थ :—कषायकुशील, छेदोपस्थापनीय चारित्र और सामायिक चारित्र, मनःपर्यवज्ञान इन सब मे तीन शुद्ध भाव लेश्याएँ ही होती है किन्तु अशुद्ध भावलेश्याएं नहीं होती। इस तरह विवेकपूर्वक समझना चाहिये। मिथ्यापक्ष का आग्रह करने से समकित का नाश होता है ॥२०-२१-२२॥

पुलाक पडिसेवन कुशील ने,
मूल उत्तरगुण दोषी भाख्या।
ते (पिण) तीनूँ भाव शुद्ध लेश्या में,
मूल पाठे संतर में दाख्या ॥ नु० २३ ॥

बुकस पिण उत्तरगुण दोषी,
तीन भावलेश्या तिहाँ पावे।
यकुशील तो दोष न सेवे,
खोटी लेश्या रा भाव क्यों आवे ॥ अनु० २४ ॥

भावार्थ :—निर्ग्रन्थ के पाँच भेद कहे गये हैं। यथा :—पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक। कुशील के दो भेद हैं— कषायकुशील और प्रतिसेवनाकुशील।

पुलाक और प्रतिसेवनाकुशील को मूलगुण और उत्तरगुणों में दोष लगता है और बकुश को उत्तरगुणो मे दोष लगता है फिर भी इनमे तीन शुद्धभाव लेश्याएँ ही होती है, यह सूत्र के मूलपाठ

में कहा गया है। कषायकुशील को मूलगुणो में और उत्तरगुणों मे किसी मे दोप नहीं लगता, फिर उसमे अशुद्ध भाव लेश्याएँ कैसे पाई जा सकती है? इसलिये यह निष्कर्प निकला कि साधु-पने मे तीन शुद्ध भाव लेश्याएँ ही पाई जाती है। जहाँ छः लेश्याओ का कथन है वहाँ समुच्चय द्रव्य लेश्याओ की अपेक्षा समझना चाहिए ॥२३-२४॥

ल्पातीत अरु ागमविहारी,
छद्मस्थपणे प्रभु पाप न कीनो।
आचाराङ्ग नवमे ध्ययने,
केवलज्ञानी प्रकाश यूँ दीनो ॥ अनु० २५ ॥

अनुकम्पा कर गोशालो बचायो,
मन्दमती रे मन नहीं भायो।
अछती छै लेश्या प्रभु रे लगाई,
नुकम्पा द्वेषी आल चढ़ायो ॥ अनु० २६ ॥

भावार्थ:—कल्पातीत और आगमविहारी तीर्थङ्कर भगवान् महावीरस्वामी ने छद्मस्थ अवस्था मे किसी दोष का सेवन नही किया। यह बात आचाराङ्ग सूत्र के नौवे अध्ययन मे कही गई है। गोशालक पर अनुकम्पा करके भगवान् ने उसके प्राण बचाये थे। ये लोग कहते है कि भगवान् ने गोशालक को बचाया यहाँ वे 'चूक' गये अर्थात् यह उन्होंने गलती की। शास्त्र मे स्पष्ट कहा है कि छद्मस्थ अवस्था मे भगवान् ने किसी भी दोष का सेवन नही किया, फिर भी उन्हे 'चूका' कहना उन पर मिथ्या दोषारोपण

करना है। भगवान् पर मिथ्या दोषारोपण करने वाले लोगों को मिथ्यात्वी एवं अनुकम्पा-द्रोही समझना चाहिये। ऐसा करके वे अपना अनन्त संसार बढ़ाते हैं ॥२५-२६॥

५-जिनरक्ष का अधिकार

संक्षिप्त :—

चम्पा नगरी मे माकंदी नाम का एक सार्थवाह रहता था। उसके जिनपाल और जिनरक्ष नाम के दो पुत्र थे। उन दोनो भाइयो ने ग्यारह वक्त लवण समुद्र मे यात्रा कर व्यापार द्वारा बहुतसा द्रव्य उपार्जन किया था। माता-पिता के मना करने पर भी वे दोनों लवण समुद्र मे बारहवी यात्रा करने के लिये रवाना हुए। जब जहाज समुद्र के बीच मे पहुँचा तो बड़े जोर का तूफान आया जिससे वह नष्ट हो गया। जहाज का टूटा हुआ एक पाटिया उन दोनो भाइयो के हाथ लग गया, जिस पर बैठकर तैरते हुए वे दोनों रत्नद्वीप मे जा पहुँचे। उस द्वीप की स्वामिनी रयणादेवी ने उन्हे देखा। वह उनसे कहने लगी कि तुम दोनों मेरे साथ कामभोग भोगते हुए यहीं रहो, अन्यथा मै तुम्हे मार दूंगी। तब वे उस देवी के साथ कामभोग भोगते हुए वहीं रहने लगे।

एक समय लवण समुद्र के अधिष्ठायक सुस्थित देव की आज्ञा से वह देवी लवण समुद्र से तृण, पत्र, कचरा, अशुचि आदि साफ करने के लिये गई। पीछे अपनी इच्छानुसार घूमते हुए वे दोनों दक्षिण दिशा के वन खण्ड मे गये। वहाँ जाकर देखा कि सैकड़ों मनुष्यों की हड्डियो का ढेर लगा हुआ है और एक पुरुष

शूली पर लटक रहा है। यह हाल देखकर वे बहुत घबराये और शूली पर लटकते हुए पुरुष से उसका वृत्तान्त पूछा। उसने कहा कि मै भी तुम्हारी तरह जहाज के टूट जाने से यहाँ आ पहुँचा था। मैं काकन्दी नगरी मे रहने वाला घोड़ो का व्यापारी हूँ। पहले यह देवी मेरे साथ कामभोग भोगती रही। एक समय एक छोटे से अपराध के हो जाने पर इसने मुझे यह दण्ड दिया है। न मालूम यह देवी तुम्हे भी किस समय और किस ढङ्ग से मार देगी। पहले भी कई मनुष्यो को मार कर यह उनकी हड्डियो का ढेर कर रक्खा है।

यह सुनकर वे दोनो भाई बहुत भयभीत हुए और वहाँ से भाग निकलने का उपाय उससे पूछने लगे। उसने कहा कि पूर्व दिशा के वनखण्ड मे शैलक नाम का एक यक्ष रहता है। उसकी स्तुति व याचना करने से प्रसन्न होकर वह तुम्हे इस देवी के फंदे से छुड़ा देगा। तब वे दोनो भाई यक्ष के पास जाकर उसकी स्तुति करने लगे और उस देवी के फन्दे से छुड़ाने की प्रार्थना करने लगे। उन पर प्रसन्न होकर यक्ष कहने लगा कि मै तुम्हे तुम्हारे इच्छित स्थान पर पहुँचा दूंगा किन्तु मार्ग मे वह देवी आकर अनेक प्रकार के हावभाव कर तुम्हे मोहित करेगी। उसके हावभावों को देखकर यदि तुम उससे मोहित हो जाओगे तो मैं तुम्हे मार्ग मे ही अपनी पीठ पर से फैंक दूंगा। यक्ष की इस शर्त को उन दोनो भाइयो ने स्वीकार किया। यक्ष ने घोड़े का रूप बनाया और दोनो भाइयो को अपनी पीठ पर बैठाकर वह आकाशमार्ग से चला। इतने मे वह देवी आ पहुँची। उनको वहाँ न देखकर उसने अवधिज्ञान से देखा कि वे शैलक यक्ष की पीठ पर बैठकर जा रहे है। वह शीघ्र वहाँ आई और अनेक प्रकार के हावभाव करने लगी। जिनपाल ने उसकी तरफ कुछ

भी ध्यान नहीं दिया किन्तु जिनरक्ष उसमें आसक्त होकर उसके हावभाव, मधुर शब्द आदि पूर्व कामचेष्टाओं को स्मरण कर रागपूर्वक वह उसकी तरफ देखने लगा तब 'समुप्पएणकलुणभावं' अर्थात् प्रियावियोग से जिसको करुणारस पैदा हो गया है ऐसे जिनरक्ष को यक्ष ने अपनी पीठ पर से फेंक दिया। इसके प ात् मनुष्यों का घात करने वाली, द्वेष से पूर्ण हृदय वाली उस रयणा देवी ने यक्ष की पीठ से गिरते हुए प्रियावियोग के करुणारस से युक्त उस जिनरक्ष को समुद्र मे पहुँचने से पहले ही रयणा देवी ने अपनी भुजाओ से ऊपर आकाश मे फेक दिया। पश्चात् पने तीक्ष्ण शूल के ऊपर उसे रोप कर तीक्ष्ण तलवार से उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

जिनपाल रयणा देवी के वचनो में नही फँसा इसलिये यक्ष ने उसे ानन्दपूर्वक चम्पा नगरी मे पहुँचा दिया। वहाँ पहुँचकर जिनपाल अपने माता-पिता से मिला। कई वर्षों तक सांसारिक सुख भोगकर उसने दीक्षा धारण की। कई वर्षों तक संयम का पालन कर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ। वहाँ का आयुष्य पूरा कर महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।　　(ज्ञातासूत्र अध्ययन ६)

❀ ढाल ❀

(कहे) "जि ऋषि यह नुकम ीधी,
रेणादेवी सामो तिण जोयो।
शैलक यक्ष हेठो उतारयो,
देवी आय तिण खड्ग में पोयो ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥"

(अनु० ढाल १ गाथा १०)

भावार्थ :—तेरहपन्थियों की अनुकम्पा ढाल १ गाथा १० में लिखा है कि जिनरक्ष ने अनुकम्पा करके रयणादेवी की तरफ देखा जिससे शैलक यक्ष ने उसे अपनी पीठ पर से नीचे फेंक दिया। फिर देवी ने उसे तलवार मे पिरोकर मार डाला। यह अनुकम्पा सावद्य-पापकारी है।

उत्तर—सूत्र विरुद्ध यों बात उठा केई,
अनुकम्पा सावज बतलावे।
अनुकम्पा पाठ तिहाँ नहीं चाल्यो,
अज्ञानी झूठ रा गोला चलावे।
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥

'कलुणरसे' रयणा जद बोली,
जिनऋषियाँ रे कलुणरस आयो।
कलुणपाठ ज्ञातासूतर में,
तो पिण भोला भरम फैलायो ॥ अनु० २॥

भावार्थ :—अनुकम्पा को सावद्य बतलाने के लिये उन लोगों का उपरोक्त कथन सूत्रविरुद्ध है। भोले प्राणियों को भ्रम में डालने के लिये उन्होंने एकदम सरासर झूठा कथन किया है, क्योंकि जिनरक्ष का अधिकार ज्ञातासूत्र के नौवें अध्ययन में आया है। वहाँ 'अनुकम्पा' या करुणा शब्द नहीं है किन्तु 'कलुण' शब्द है। जैसा कि वहाँ पाठ है :—

"समुप्पण्णकलुणभावं"

अर्थात् जब रयणादेवी अपने प्रिय के वियोग से दुःखित होकर

करुण विलाप करने लगी तब जिनरक्ष के हृदय मे भी प्रिया के वियोग से 'कलुणरस' पैदा हो गया ॥१-२॥

लुणरस   नुयोग दुवारे,
    आठवो (रस) पाठ में वीर बतायो ।
प्रिय रो वियोग हुवां यो आवे,
    ऐसो   श्री गणधरजी   गायो ॥ नु० ३॥

भावार्थ :—अनुयोगद्वारसूत्र मे श्री वीर भगवान् ने जहाँ नौ रसों का वर्णन किया है वहाँ आठवाँ रस 'करुणरस' बताया है। प्रिय का वियोग होने से यह रस उत्पन्न होता है ॥३॥

ऊइज रस जिनऋषियाँ रे ायो,
    रेणादेवी रा वियोग थी पायो ।
दोनूँ सूतर रो पाठ सरीखो,
    लच्चण से भी तुल्य दिखायो ॥   ० ४॥

भावार्थ :—रयणादेवी के वियोग से यही कलुणरस जिन-रक्ष के हृदय मे उत्पन्न हुआ था। अनुयोगद्वार मे और ज्ञातासूत्र मे दोनो जगह 'करुणरस' यह समान पाठ है और दोनो जगह इसकी उत्पत्ति का कारणरूप लच्चण भी बराबर मिलता है। अनुयोगद्वार मे प्रिय के वियोग से करुणरस की उत्पत्ति बताकर प्रिय-के वियोग से अत्यन्त दुःखित स्त्री का उदाहरण दिया गया है। इसी प्रकार यहाँ पर भी रयणादेवी के वियोग से जिनरक्ष के हृदय मे करुणरस उत्पन्न हुआ था, अनुकम्पा उत्पन्न नही हुई थी। क्योंकि वहाँ अनुकम्पा उत्पन्न होने का कोई कारण ही नही

था बल्कि प्रिय के वियोग से उत्पन्न होने वाले 'करुणरस' की सामग्री वहाँ पूर्णरूप से मौजूद थी ॥४॥

मोह कलुणरस में अनुकम्पा,
भेष धारयाँ ए झूठी गाई।
शङ्का होवे तो सूतर देखो,
मत पड़ज्यो झूठा फंद मांई ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—वहाँ 'कलुण' पाठ है। उन भेषधारी मिथ्यावादियो ने उसे झूठमूठ ही 'अनुकम्पा' कहा है। यदि किसी को शङ्का हो तो वह ज्ञातासूत्र का पाठ देख सकता है। यो ही इनके झूठे फन्दे मे नही पड़ना चाहिए ॥५॥

ठाणाङ्ग दसवें ठाणा रे मांही,
नुकम्पा दान प्रथम बतायो।
कालुणी दान रो पाठ छै न्यारो,
अर्थ दोन्यां रो न्यारो दिखायो ॥ अनु० ६ ॥

भावार्थ :—ठाणाङ्गसूत्र के दसवे ठाणे मे दस दानो का वर्णन किया गया है। उनमे अनुकम्पादान प्रथम बतलाया गया है और 'कालुणि' अर्थात् कारुण्यदान चौथा बताया गया है। इस प्रकार अनुकम्पा और 'कालुणी' दान का अलग-अलग नाम है और इन दोनो का अर्थ भी अलग-अलग बताया गया है ॥६॥

'कलुण' (रस) 'नुकम्पा' एक नहीं है,
ज्ञातासूत्र रो भेद बतायो।

नुक० , दया, रक्षा हिये,
कालुण (रस) दुः वियोग में गायो ॥ ७ ॥

भावार्थ :—कलुणरस और अनुकम्पा एक नहीं है। ये दोनों अलग-अलग हैं। मरते प्राणी की प्राणरक्षा करना, दुःखी प्राणी पर दया करना अनुकम्पा कहलाती है। प्रिय का वियोग होने पर 'क णरस' उत्प होता है। इसलिये ज्ञातासूत्र मे आये हुए 'कलुण' रस को 'अनुकम्पा' कहना अज्ञानियों का कार्य है ॥७॥

रातदिवस ज्यों दोनों ही न्यारा,
तो पिण मन्द भोला रमावे।
कलुणर तो मोह मलिन है,
ज्ञानी अनुकम्पा में लावें ॥ नु० ८ ॥

भावार्थ :—जिस प्रकार रात और दिन दोनों लग-अलग है उसी प्रकार कलुणरस और अनुकम्पा दोनो ही अलग-अ हैं क्योंकि कलुणरस तो मोहमलिन है, अर्थात् प्रिय के वियोगरूप मोह से कलुणरस की उत्पत्ति होती है और दुःखी प्राणी के दुः को देखकर दुःख मिटाने के लिये दयायुक्त जो शुद्ध परिणाम हृदय मे उत्पन्न होते हैं वह अनुकम्पा कहलाती है। इसलिये करुणरस को अनुकम्पा कहना अज्ञानियो का कार्य है ॥८॥

द्वार तीजा रे मांही,
दीन आर रे कलुण बतायो।
दूजे अङ्ग थम श्रुतखंधे,
घणा ध्ययन में यो ीज गो ॥ ० ९ ॥

शोक आरत भावे कलुणरस है,
सूतर साख लेवो तुम धारी।
लुणरस, नुकम्पा करुणा,
एक रीखी न त्र उचारी ॥ अनु० १०॥

भावार्थ :—प्रश्नव्याकरणसूत्र के तीसरे आश्रव द्वार में बतलाया गया है कि प्रियवियोगादि के शोक से व्याकुल बने हुए प्राणी के हृदय में करुणरस उत्पन्न होता है। यही बात सूगगडाङ्ग सूत्र के प्रथम श्रुतस्कन्ध मे और बहुत से अध्ययनो मे कही गई है। इससे यह स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि प्रिय के वियोगादि से व्याकुल बने हुए प्राणी के हृदय मे कलुणरस उत्पन्न होता है और मरते प्राणी की प्राणरक्षा करना अनुकम्पा-करुणा कहलाती है। सूत्र मे कलुणरस और अनुकम्पा को अलग-अलग बतलाया गया है। इसलिये रयणादेवी पर उत्पन्न हुए जिनरक्ष के कलुणरस को अनुकम्पा कायम करके अनुकम्पा को सावद्य बताना अज्ञानियो का कार्य है ॥९-१०॥

९—हरिणगमेषीदेव का अधिकार

संक्षिप्त :—

भद्दिलपुर नाम का नगर था। वहाँ नाग नाम का एक गाथापति रहता था। उसकी ी का नाम सुलसा था। एक समय किसी एक ज्योतिषी से उसका भविष्यफल पूछने पर उसने बतलाया कि वह मृतवंध्या है अर्थात् उसके पुत्र तो होगे किन्तु वे

मरे हुए होंगे। ज्योतिषी से यह जानकर सुलसा को बड़ा दुः हुआ। उसने हरिणगमेशीदेव की आराधना की जिससे प्रस होकर वह देव कर उपस्थित हुआ। सुलसा ने उसके सामने अपनी इच्छा जाहिर की। तब देव ने कहा कि तुम्हारे मरे हुए पुत्रो को जीवित करना यह शक्ति तो मेरे मे नहीं है, हॉ अलबत्ता इतना वश्य कर सकता हूँ कि तुम्हारे मरे ए पुत्रों को दूसरी माता के पास र कर उसके अत्यन्त सुन्दर और रूपवान् बाल लाकर तुम्हारे पास रख सकता हूॅ। सुलसा ने देव की बात ी- कार कर ली।

भवितव्यता के प्रभाव से कुछ निमित्त योग ऐसा मिलता था कि जिस समय वसुदेव महाराज की रानी देवकी के पुत्र जन्म होता था उसी समय लसा के पुत्र जन्म होता था। तब वह हरिणगमेशीदेव सुलसा के मरे हुए पुत्र को लाकर देवकी के पास र देता था और देवकी के पुत्र को उठा कर सुलसा के पास र देता था। इस तरह उसने देवकी के छः पुत्र सुलसा के पास पहुँचा दिये और कंस के भय से उन बालको को मुक्त कर दिया। इस प्रकार हरिणगमेशीदेव ने अनुकम्पा करके उन छः बालकों के प्राण बचाये। वे छः ही बालक चरमशरीरी (उसी भव मे मोक्ष जाने वाले) जीव थे। अतः बाईसवे तीर्थ र भगवान् अरिष्टनेमि के पास दीक्षा लेकर मोक्ष गये।

❀ ढाल ❀

हरिणगमेशी अनुकम्पा करने,
देवकी बाल सुलसा ने दीधा।

चरमशरीरी छउ जीव बचिया,
संजम पालि ने हो गया सिद्धा ॥ अनु० १ ॥

भावार्थ :—हरिणगमेशीदेव ने अनुकम्पा करके देवकी के बालको को सुलसा के पास रख दिये। जिससे चरमशरीरी वे छहों जीव बच गये। पश्चात् दीक्षा लेकर वे छहों जीव मोक्ष में गये ॥१॥

मन्दमत्याँ रे मन नहीं भाया,
हरिणगमेशी ने पाप बतावे।
आवण जावण रो नाम लेई ने,
अनुकम्पा ने सावज गावे ॥ अनु० २ ॥

भावार्थ :—रक्षा से जिनको द्वेष है ऐसे मन्दबुद्धि लोगो को यह बात पसन्द नहीं आई। इसलिये अनुकम्पा करके छः जीवो के प्राण बचानेरूप कार्य से हरिणगमेशीदेव को पाप होना बतलाते है। उन बालको की रक्षा के लिये हरिणगमेशीदेव ने आने जाने की जो क्रिया की थी उस क्रिया का नाम लेकर उसकी नुकम्पा को सावद्य-पापकारी बतलाते हैं ॥२॥

ण जावण री गो [illegible] रिया न्यारी,
नुकम्पा परिणामां में आई।
जि वन्दन देव [illegible] ने [illegible],
वंदना [illegible] व [illegible] जिन [illegible] बताई ॥ अनु० ३ ॥

आवण जावण अनुकम्पा जो सावज,
वन्दना ने पिण सावज कहणी ।
आवण जावण वन्दना नहीं सावज,
अनुकम्पा पिण निरवद वरणी ॥ अनु० ४ ॥

भावार्थ :—आने जाने की क्रिया दूसरी है और अनुकम्पा का परिणाम दूसरा है । अतः आने जाने की क्रिया के कारण अनुकम्पा सावद्य नहीं हो सकती । जैसे तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना करने के लिये देव आते जाते हैं परन्तु आने जाने की क्रिया से तीर्थङ्कर भगवान् की वन्दना सावद्य नही होती क्योकि आने जाने की क्रिया अलग है और वन्दना अलग है उसी तरह आने जाने की क्रिया दूसरी है और अनुकम्पा दूसरी है । इसलिये आने जाने की क्रिया के सावद्य होने पर भी अनुकम्पा सावद्य नही हो सकती । यदि कोई आने जाने की क्रिया के सावद्य होने से अनुकम्पा को सावद्य माने तो उसे आने जाने के सावद्य होने से तीर्थङ्कर भगवान् की वन्दना को भी सावद्य कहना चाहिये । परन्तु जिस प्रकार आने जाने की क्रिया से तीर्थङ्कर भगवान् की वन्दना सावद्य नही होती उसी तरह आने जाने की क्रिया से अनुकम्पा भी सावद्य नही हो सकती ॥३-४॥

मन्दमती ऊँधी शरधा सूँ,
अनुकम्पा सावज बतलावे ।
वन्दना ने तो निरवद वे,
जाणे म्हारी पू । उ जावे ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—इन लोगों से पूछना चाहिये कि तुम्हारे भक्त लोग दूर-दूर से रेल, मोटर आदि में बैठकर तुम्हारे दर्शन करने के लिये आते हैं। बतलाइये, आपके दर्शन 'सावद्य' हैं या निरवद्य? तब तो झट से कह देते हैं कि हमारे 'दर्शन' तो निरवद्य हैं। भक्त लोगो के आने जाने की क्रिया अलग है और 'हमारे दर्शन' अलग हैं। इसलिये भक्त लोगो के आने जाने की क्रिया के सावद्य होने पर भी हमारे 'दर्शन' सावद्य नहीं होते।

यहाँ पर उनका एक स्वार्थ रहा हुआ है—वे जानते हैं कि यदि हम अपने 'दर्शनो' को सावद्य कह देंगे तो हमारे दर्शन करने कौन आयेगा? इस तरह से हमारी सारी पूजा-प्रतिष्ठा और मान-सन्मान सब उठ जावेंगे।

जिस प्रकार भक्त लोगो की आने जाने की क्रिया के सावद्य होने पर भी वे अपने 'दर्शन' को सावद्य नहीं मानते उसी तरह से आने जाने की क्रिया को सावद्य होने पर भी हरिणगमेशीदेव की अनुकम्पा सावद्य नहीं है, यह बात भी उन्हे सरल बुद्धि से माननी चाहिये ॥५॥

देव करी सुलसा री करुणा,
तेथी छेहूँ बाल बचाया।
कंस रा भय थी निरभय कीधा,
अभयदा फल देवता पाया॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥६॥

भावार्थ :—हरिणगमेशीदेव ने सुलसा पर अनुकम्पा करके उसके दुःख की निवृत्ति की और उन बालको पर अनुकम्पा करके

उनके प्राण बचाये थे। इस अनुकम्पा का यह फल हुआ कि वे छहों कंस के भय से बच गये और हरिणगमेशीदेव को अभयदान का फल मिला। अतः हरिणगमेशीदेव की अनुकम्पा को सावद्य कहना अज्ञानता है ॥६॥

७–हरिकेशी मुनि का अधिकार

संक्षिप्त था :—

हरिकेशी मुनि का जन्म चाण्डाल कुल मे हुआ था। वे त्यन्त कुरूप थे। रूप की कुरूपता के साथ-साथ उनकी वाणी मे बड़ी कटुता थी। इसलिये वे सबको अप्रिय लगते थे। यहाँ तक कि उनके कुटुम्बी लोग भी उनको अपने पास तक नही बिठाते थे। एक दिन उनके अपने जातीयभोज मे वे सब लोग एक साथ बैठकर भोजन कर रहे थे और हरिकेशी को अलग बिठाकर उन्हे वहीं भोजन परोस दिया था। उसी समय वहाँ एक सर्प निकल आया। उसको देखते ही चाण्डाल उस पर टूट पड़े और उसे जान से मार डाला। इसके थोड़ी देर बाद ही एक दूसरा सर्प (जिसे द्विमुखी यानी योगी कहते है) निकल आया। उसको दे ते ही उन सब चाण्डालो ने उसकी पूजा की। यह देखकर हरिकेशी के मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि इन दोनो का आकार एक सरी ा है फिर क्या कारण है कि एक को तो इन लोगो ने जान से मार डाला और दूसरे की पूजा की। इस पर गहरा विचार करते हुए वे इस नतीजे पर पहुँचे कि—पहले सर्प मे विष था इसलिये वह प्राणदण्ड को प्राप्त हुआ और दूसरा सर्प (द्विमुख–योगी) निर्विष है। इसलिये लोगो ने इसकी पूजा की। उन्होने इस घटना का समन्वय अपने जीवन के साथ किया कि इस सर्प के समान मेरी वाणी मे भी कटुतारूपी विष भरा आ

है। इसी से मैं सबको अप्रिय लगता हूँ और लोग मेरा अनादर करते हैं। इसमे उनका कुछ भी दोष नहीं है। मेरी आत्मा का ही दोष है। इस पर गहरा विचार करते-करते उन्हे जातिस्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया। तत्पश्चात् उन्होने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। दीक्षा लेकर हरिकेशी मुनि अत्यन्त कठोर तपस्या करने लगे। एक समय वे गोचरी के लिये ब्राह्मणो के पाड़े (मोहल्ले) मे जहाँ ब्राह्मण यज्ञ कर रहे थे वहाँ गये। वहाँ जाकर वे उन ब्राह्मणों से भिक्षा की याचना करने लगे। ब्राह्मणो ने मुनि का तिरस्कार किया और वे मुनि को वहाँ से हटाने की कोशिश करने लगे। तब :—

जक्खो तहिं तिंदुगरुक्खवासी,
णुकम्पओ तस्स महामुणिस्स।
पच्छायइत्ता नियगं सरीरं,
इमाइ वयणा दाहरित्था॥
(उत्तरा० अध्य० १२ गाथा ८)

भावार्थ :—तिंदुक वृक्ष पर निवास करने वाला, उस महामुनि का अनुकम्पक यानी उनमे भक्तिभाव रखने वाला यक्ष अपने शरीर को छिपाकर यानी अदृश्य रखता हुआ मुनि के शरीर मे प्रविष्ट होकर उन ब्राह्मणो को उपदेश देने के लिये इस प्रकार वचन कहने लगा :—

समणो अहं संजओ बंभयारी,
विरओ धणपयणपरिग्गहा गो।
परप्पवित्तस्स उ भिक्खकाले,
अन्नस्स अट्ठा इहमागओ मि॥९॥

वियरिज्जइ इ भुज्जइ य,
अन्नं पभूयं भवयाणमेयं।
जाणाहि मे जायणजीवणुत्ति,
सेसावसेसं लहओ तवस्सी ॥१०॥

(उत्तरा० अध्य० १२ गाथा ६–१०)

र्थात्—मैं श्रमण हूँ और संयत यानी सर्व सावद्य कार्यों से निवृत्त हुआ हूँ, मैं ब्रह्मचारी और धन, पचन-पाचन तथा परिग्रह से रहित हूँ। गृहस्थ लोग अपने भोजनार्थ जो अन्न बनाते हैं उसी अन्न की भिक्षा के लिये भिक्षा के समय मैं आपके यहाँ आया हूँ। आपके इस यज्ञस्थान मे प्रचुर अन्न अन्य लोगो को दिया जाता है और खाया जाता है तथा खिलाया जाता है। यह सब आप लोगों का ही है। मैं भिक्षाजीवी तपस्वी हूँ इसलिये आपके यहाँ जो वचाखुचा अन्न हो वह मुझे दीजिये।

इस तरह यक्ष ने मुनि को भिक्षा देने के लिये ब्राह्मणो को वहुत समझाया किन्तु उन्होने भिक्षा न दी। प्रत्युत उन ब्राह्मणों के लड़के वेत से, डंडे से और कोड़े से मुनि को मारने लगे। कौशल देश के राजा की पुत्री भद्रा, जो उस समय वहाँ उपस्थित थी और जिसे मुनि के उग्रतप और त्याग का परिचय था, उसने भी उन ब्राह्मणकुमारों को ऐसा करने से मना किया। फिर भी वे न माने तब उस यक्ष को क्रोध आ गया। जिससे मुनि को रने वाले उन ब्राह्मणकुमारो को वह भी मारने लगा जिससे वे ब्रा णकुमार मुख से रुधिर का वमन करते हुए औंधे मुँह धरती पर गिर पड़े। यह हाल दे कर वे ब्राह्मण बहुत घबराये। अपनी

गल्ती के लिये वे मुनि से क्षमायाचना करने लगे। तब यक्ष ने उन ब्राह्मणकुमारों को ठीक कर दिया।

मुनि ने उन ब्राह्मणों से कहा कि हे विप्रो! यह सारा कार्य यक्ष ने किया है। मुझे तो पहले भी तुम्हारे प्रति किञ्चिन्मात्र द्वेष नहीं था और न अब है।

उग्रतप का आचरण करते हुए मुनि विचरने लगे। बहुत समय तक संयम का पालन कर समस्त कर्मों का क्षय करके हरिकेशी मुनि मोक्ष में पधार गये।

❀ ढाल ❀

हरि शी मुनि गोचरी आया,
ज्याँ री निन्दा ाह्मण कीनी।
जक्षदेव अनुकम्पक रो,
शास्तरयुक्त समझ बहु दीनी ॥ अनु० १ ॥

भावार्थ :—हरिकेशी मुनि गोचरी के लिये आये तब ब्राह्मणों ने उनकी निन्दा एवं तिरस्कार किया। तब उन महामुनि के अनुकम्पक यानी उनमें भक्तिभाव रखने वाले यक्ष ने उन्हे शास्त्रानुकूल बहुत उपदेश दिया ॥१॥

नु म्पा थी धर्म बतायो,
मूलपाठ रा वचन है सीधा।

मन्द कहे अनुकम्पा रे कारण,
*रुधिरवमन्ता ब्राह्मण ी । ॥ नु० २॥

भावार्थ :—अनुकम्पा करके यक्ष ने उन ब्राह्मणो को धर्मोपदेश दिया था। यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के मूलपाठ मे कही गई है। ये मूलपाठ की गाथाएँ यहाँ कथा मे लिखी गई हैं। शा की ऐसी सरल और सीधी बात होते हुए भी वे मन्दबुद्धि कहते है कि :—'अनुकम्पा करके यक्ष ने ब्राह्मणो को रुधिरवमन्ता किया था अर्थात् उन्हे मारा पीटा था ॥२॥'

अनुकम्पा रा द्वेषी वेषी,
मिथ्या बोलता मूल लाजे।
ज्ञानी सूतर-पाठ दिखावे,
अज्ञ ी जब दूरा भाजे ॥ अनु० ३॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी उन लोगों को इस प्रकार सफेद झूठ बोलते हुए जरा भी शर्म नहीं आती। जब शा ज्ञ बुद्धिमान् पुरुष उन्हे शास्त्र का मूलपाठ दिखाते हैं तो वे मुँह छिपाकर दूर भागने लगते है ॥३॥

ँ । हेतु जक्ष सुणाया,
(जद)ब्रा ण बालक मारण या।

* जैसा कि वे कहते हैं :—

यक्ष रे पाड़े हरिकेशी आया, अशनादिक त्याँ ने नहीं दीधा।
यक्ष देवता अनुकम्पा कीधी, रुधिरवमन्ता ब्राह्मण कीधा ॥
(अनुकम्पा ढाल १ गाथा १३)

राजकुमारी भद्रा वारया,
तो पिण मूढ नहीं शरमाया ॥ अनु० ४ ॥

भावार्थ :—यक्ष ने शास्त्रानुकूल एवं युक्तियुक्त वचन कहकर उन ब्राह्मणों को बहुत समझाया। किन्तु वे न समझे बल्कि उन ब्राह्मणों के लड़के और अधिक उत्तेजित होकर मुनि को मारने के लिये दौड़े। उस समय राजकुमारी भद्रा ने भी उन्हे वैसा करने से मना किया फिर भी वे ब्राह्मणों के लड़के न माने और मुनि को मारने लगे ॥४॥

यक्ष देव ने कोप जो आयो,
कष्ट देई ब्राह्मण समझाया।
कूटणहार ने जक्षे कूट्या,
शास्तर मांहे प्रगट बताया ॥ अ० ५ ॥
अनुकम्पा थी तो वच उचारया,
पिण न दया थी ब्राह्मण मारया।
वजीवां ! तुमें साँची शरधो,
ज्ञानी ओटा वचन उचारया ॥
अनु० सावज मत जाणो ॥ ६ ॥

भावार्थ :—तब यक्ष को भी क्रोध आ गया जिससे उसने उन ब्राह्मणों को मारा-पीटा। यह मारनेरूप कार्य ब्राह्मणों पर क्रोध करके यक्ष ने किया था, मुनि पर अनुकम्पा करके नहीं। क्योंकि जहाँ मारने-पीटने की बात आई है वहाँ मूलपाठ मे यह नही कहा है कि यक्ष ने मुनि पर अनुकम्पा करके ब्रा णों को

मारा था। अतः यक्ष का यह कार्य क्रोध के कारण हुआ था, अनुकम्पा के कारण नहीं। अनुकम्पा करके उसने ब्राह्मणों को उपदेश दिया था, मारा नहीं था। इसलिये इस मारनेरूप कार्य के सावद्य होने पर भी इसके पहले जो यक्ष ने अनुकम्पा कर ब्राह्मणो को उपदेश दिया था वह अनुकम्पा का कार्य वद्य नहीं हो सकता। अतः उत्तराध्ययन सूत्र की गाथा का नाम लेकर हरिकेशी मुनि पर यक्ष की अनुकम्पा को सावद्य कहना एकान्त मिथ्या है। अतः अज्ञानियो के ऐसे मिथ्या भाषण पर भव्यजीवों-बुद्धिमानो को कदापि विश्वास न करना चाहिये ॥६॥

—धारिणी राणी की गर्भ अनुकम्पा-विषयक अधिकार

संक्षिप्त था :—

राजगृह नगर में राजा श्रेणिक राज्य करता था। उसकी बड़ी रानी का नाम नन्दादेवी थी। उसकी कुक्षि से उत हुआ भयकुमार नाम का पुत्र था। वह बड़ा बुद्धिमान् था।

श्रेणिक राजा की छोटी रानी का नाम धारिणी था। मेघकुमार का जीव उसके गर्भ आया तब उसे अकाल मेघ । दोहला (गर्भवती की इच्छा) उत्पन्न हुआ। ने ना दोहला राजा से कहा। राजा ने अभयकुमार से कहा। यकुमार ने तेले की तपस्या करके अपने पूर्वभव के मित्रदेव की आराधना की। जिससे वह देव अभयकुमार के सामने उपरि हुआ। उसने के सामने अपनी इच्छा प्रकट की। तब देव ने वर्षाऋतु

की विक्रिया की। आकाश मे सर्वत्र मेघ छा गये और छोटी-छोटी बूँदे गिरने लगी। हाथी पर बैठकर रानी धारिणी राजा के साथ वन मे गई। वैभार पर्वत के पास जलक्रीड़ा करती हुई अपने दोहले को पूर्ण करने लगी।

"तए णं सा धारणी देवी तंसि अकालदोहलंसि विणियंसि समाणियदोहला तस्स गब्भस्स अणुकंपणट्ठयाए जयं चिट्ठइ जयं आसइ जयं सुवइ आहारंपि य णं आहारेमाणी नाइतित्तं नाइकडुयं नाइकसायं नाइअंबिलं णाइमहुरं जं तस्स गब्भस्स हियं मियं पत्थं तं देसे य काले य आहारं आहारेमाणी नाइचिंतं नाइसोगं णाइदेरण्णं णाइमोहं णाइभयं णाइपरित्तासं ववगयचिंतासोगमोहभयपरित्तासा भोयणच्छायणगंधमल्लालंकारेहिं तं गब्भं हं सुहे वहइ।"

(ज्ञातासूत्र अध्य० १)

अर्थ :—इसके पश्चात् वह धारिणी राणी उस अकाल दोहले को पूर्ण करके गर्भ की अनुकम्पा के लिये यतना (जयणा) के साथ खड़ी होती थी, यतना के साथ बैठती थी, यतना के साथ सोती थी और जो आहार करती थी वह भी न अति तीखा, न अति कडुआ, न अति कषैला, न अति खट्टा, न अति मीठा किन्तु देशकाल के अनुसार उस गर्भ के हितकारक, परिमित तथा पथ्य आहार खाती थी और अति चिन्ता, अति शोक, अति-दीनता, अति मोह, अति भय तथा अति त्रास नही करती थी। चिन्ता, शोक, मोह, भय और परित्रास से रहित होकर आच्छादन, गन्धमाल्य और अलङ्कारो से युक्त होकर सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करती थी।

नौ मास पूर्ण होने पर रानी की कुक्षि से एक पुत्र का जन्म हुआ। गर्भावस्था मे रानी को मेघ का दोहला उत्पन्न हुआ था इसलिये उस बालक का नाम मेघकुमार रक्खा गया। युवावस्था को प्राप्त होने पर आठ राजकन्याओं के साथ उसका विवाह किया गया।

एक समय भगवान् महावीर स्वामी राजगृह नगर के बाहर गुणशील नामक उद्यान मे पधारे। मेघकुमार भगवान् को वन्दना करने के लिये गया। भगवान् ने धर्मोपदेश फरमाया। जिसे सुनकर उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। माता-पिता की आज्ञा लेकर उसने भगवान् के पास दीक्षा अङ्गीकार की। उसी दिन रात्रि के समय उनका बिछौना सबसे अन्त मे होने के कारण आने जाने वाले मुनियो के पादसंगठन से उन्हे नींद न आई। जिससे अतिखेदित होकर वे दीक्षा छोड़कर घर जाने का विचार करने लगे। दूसरे दिन प्रातःकाल वे भगवान् के पास आये। भगवान् ने उनके पूर्वभव का वर्णन किया और हाथी के भव में सहन किये गये उस महान् कष्ट का परिचय कराया। जिससे उन्हे जाति स्मरण ज्ञान उत्पन्न हो गया और वे संयम में अति दृढ़ हो गये। अनेक वर्षों तक संयम का पालन कर संलेखना संथारा सहित कालधर्म को प्राप्त होकर विजय नामक अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से महाविदेह क्षेत्र मे उत्पन्न होकर संयम लेकर मोक्ष जाएँगे।

❀ ढाल ❀

री अनुकम्पा करी राणी,
धारणी अजतना सहु टारी।

जयणा सूँ बैठे ने जयणा सूँ उठे,
खाटा मीठा भोजन तजे भारी ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥

आपने गमता भोजन छोड्या,
गर्भ हितकारी भोजन करती ।
चिन्ता भय अरु शोक मोहादि,
दुखदाई जाणी परहरती ॥ अनु० २ ॥

भावार्थ :—गर्भ की अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने सब असतत्त्वों का त्याग कर दिया था। वह यतना से बैठती और यतना से उठती थी। अपने मनगमते (मनपसन्द) खट्टे, मीठे आदि भोजन को उसने छोड़ दिया था किन्तु वह गर्भ के हितकारी भोजन करती थी और उसने चिन्ता, भय, शोक और मोहादि सबको छोड़ दिया था ॥१-२॥

ऊँधो अर्थ करी कहे मूरख,
"धारणीजी अनुकम्पा आणी ।
पने गमता भोजन खाया"
झूठ कुगुरु ख आणी ॥ अनु० ३ ॥

भावार्थ :—ज्ञातासूत्र का पाठ जो ऊपर दिया गया है उसका उल्टा अर्थ करके कितनेक मूर्ख यह कहते हैं कि 'गर्भ की

अनुकम्पा लाकर धारिणी राणी अपना मनगमता (मनपसन्द)
* भोजन रती थी।' इस तरह वे मूर्ख मिथ्या भाषण करते हैं ।।

नुकम्पा मोह त्याग्यो,
या तो पन्थी दीनी छुपाई।
भोजन पण मनमान्या खाया,
मनमान्या खावा री झूठी उठाई ।। नु० ४।।

भावार्थ :—गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने मोह का त्याग कर दिया था, इस बात को उन पन्थियों ने छिपा ही दिया और धारिणी रानी ने मनमाना भोजन किया था। यह झूठी बात उठा कर उन्होंने खड़ी कर दी।

दूसरी बात यह है कि गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने अयतना का त्याग किया था तथा चिन्ता, शोक, मोह और भय को छोड़ दिया था, ऐसा मूलपाठ मे लिखा है। अतः तेरहपन्थियों से पूछना चाहिये कि धारिणी रानी ने जो अयतना तथा चिन्ता, मोहादि का त्याग कर दिया था—यह अच्छा किया था या बुरा ? यदि अच्छा किया था तो धारिणी की गर्भ पर अनुकम्पा सावद्य कैसे हुई ? ।।४।।

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—

मेघकुमार गर्भ मां ही हूंता, सुख रे तई किया अनेक उपायो।
धारणी राणी अनुकम्पा आणी, मनगमता अशनादिक खायो।।
आ अनुकम्पा सावज जाणो ।।
(अनुकम्पा १ गाथा १४)

मोह त्याग्यो अनुकम्पा रे अर्थे,
तिण ने मोह अनुकम्पा बतावे ।
मत अन्धा होय झूठा बोले,
आंधा री लारे आंधा जावे ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—ऊपर बताये हुये शास्त्र के मूलपाठ से स्पष्ट लिखा है कि गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी ने मोह छोड़ दिया था। इस अनुकम्पा को ये तेरहपन्थी लोग मोह अनुकम्पा बतलाते है। परन्तु जरा विचारने की बात है कि जिस अनुकम्पा के होने से मोह छोड़ दिया जाता है वह अनुकम्पा खुद ही मोह-अनुकम्पा हो यह कैसे हो सकता है? किन्तु मतपक्ष में अन्धे होकर वे इस प्रकार झूठ बोलते है और उनके भक्तलोग भी मतान्ध बनकर अन्धानुकरण करते जा रहे है ॥५॥

श्रावक रा पहला व्रत मांई,
पञ्चम अतिचारे प्रभु केवे ।
अशन समय भात पाणी न देवे,
(तो) अतिचार लागे व्रत नहीं रेवे ॥ अनु० ६ ॥

भातपाणी छोडायाँ हिंसा,
(तो) गर्भ भूखे मारया किम धर्मी ।
अज्ञ ! इतनो नहीं सोचे,
गर्भ री दया उठाई अधर्मी ॥ अनु० ७ ॥

भावार्थ :—शास्त्र के पाठ में कहा है कि 'गर्भ पर अनुकम्पा करके धारिणी रानी गर्भ के हितकारी आहार खाती थी।' इस आहार खाने का नाम लेकर गर्भ की अनुकम्पा को सावद्य कहना भी अज्ञान है क्योंकि गर्भ का आहार गर्भवती के आहार के आधीन है। इसलिये यदि गर्भवती श्राविका भोजन न करे तो उसके पहले व्रत का 'भातपाणी विच्छेए' नामक पाँचवा अतिचार लगता है। अपने आश्रित प्राणी को यथा समय आहारादि न देने से हिंसा लगती है तो गर्भस्थ जीव को भूखो मारने से धर्म कैसे हो सकता है? गर्भ-अनुकम्पा को मोह-अनुकम्पा कहकर अधर्मी एव अज्ञानी लोग गर्भ-अनुकम्पा को उठा रहे हैं ॥६-७॥

जो बालक ने नाय चुँखावे,
(तो) पहलो व्रत श्राविका रो जावे।
(जो) गर्भ रे बाई भूखों मारे,
तो तप व्रत तिण रे किम थावे ॥ अनु० ८॥

भावार्थ :—जो श्राविका अपने बच्चे को नही चूँखाती है (स्तनपान नही कराती है) उसको पहले व्रत मे अतिचार लगता है। इसी तरह जो गर्भवती श्राविका भोजन नहीं करती बल्कि गर्भस्थ जीव को भूखो मारती है उसको भी पहले त मे अतिचार लगता है और उसके व्रत तप आदि कुछ नहीं होता ॥८॥

गर्भवती ने तपस्या करावे,
उपवासादि रो उपदेश देवे।
गर्भ मरे तिण री दया नाही,
प्रगट अधर्म ने धर्म वे केवे ॥ अनु० ९॥

रख दिये, जिससे उनका शिर खिचड़ी की तरह सीभने लगा। गजसुकुमाल मुनि ने इस तीव्र वेदना को समभावपूर्वक सहन की और परिणामो से किसी प्रकार की चञ्चलता एवं कलुषता न आने दी। परिणामो की विशुद्धता के कारण उनको तत्क्षण केवलज्ञान, केवलदर्शन उत्पन्न हो गये और वे मोक्ष मे पधार गये।

दूसरे दिन कृष्णवासुदेव भगवान को वन्दना करने के लिये जाने लगे। रास्ते मे उन्होने एक बुड्ढे आदमी को देखा, जिसका शरीर जरा से जीर्ण होने के कारण कॉप रहा था, वह एक एक ईट उठा कर अपने घर मे रख रहा था। उसे देखकर कृष्णजी के हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई और उन्होने अपने हाथो से एक ईंट उठाकर उसके घर रक्खी। कृष्ण का एक ईट उठाना था कि उनकी सेना ने वे सारी ईटे उस बुड्ढे के घर पहुँचा दी।

तत्पश्चात् उद्यान मे जाकर उन्होने भगवान् को तथा समस्त मुनियो को वन्दना की किन्तु नवदीक्षित मुनि गजसुकुमाल को वहाँ नही देखा। तब उन्होने भगवान् से पूछा। भगवान् ने फरमाया कि हे श्रीकृष्ण ! आते समय मार्ग मे उस बुड्ढे पुरुष पर अनुकम्पा कर जिस प्रकार तुमने उसे साज (सहायता) दिया जिससे उसका कार्य शीघ्र पूरा हो गया। उसी प्रकार एक व्यक्ति ने मुनि गजसुकुमाल को साज दिया जिससे शीघ्र ही कर्मो का क्षय कर वे मोक्ष चले गये।

इस बात को सुनकर कृष्णवासुदेव का मन खिन्न हो गया। वे वापिस द्वारका मे लौटने लगे। संयोगवश सोमिल ब्राह्मण उसी रास्ते से आ रहा था। सामने से कृष्ण वासुदेव को आते देखकर वह भय से आशङ्कित होकर धरती पर गिर पड़ा और तत्काल उसके प्राणपखेरू उड़ गये। इस घटना से कृष्णवासुदेव

ने समझ लिया कि मुनि गजसुकुमाल को उपसर्ग देने वाला यही है। इसलिये उसके शव की दुर्दशा करवाई।

तत्पश्चात् कालान्तर मे विगतशोक होकर कृष्णवासुदेव आनन्दपूर्वक राज्य करने लगे।

❀ ढाल ❀

श्रीकृष्ण नेम ने वन्दन चाल्या,
बुढा ने अति ही दुखियो जाणी।
जीर्ण जरा थी थरथर कम्पे,
देखि ने मन अनुकम्पा आणी॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो॥१॥

उण री ईंट श्रीकृष्ण उठाई,
बूढा रे घर निज हाथ पूगाई।
दुरगुणनाशक सद्गुणभासक,
अनुकम्पा री रीत दिखाई॥अनु० २॥

भावार्थ :—श्रीकृष्णजी भगवान् नेमिनाथ (अरिष्टनेमि) को वन्दना करने के लिये जा रहे थे। रास्ते मे जरा से जीर्ण, अति दुःखी और कॉपते हुए एक बुड्ढे को ईंटे उठाते हुए देखा। उसे देखकर कृष्णजी के हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई। उन्होने अपने हाथो से एक ईंट उठाकर बुड्ढे के घर रख दी। दुर्गुणो का नाश करने वाले और सद्गुणों को प्रकट करने वाले श्रीकृष्ण ने

यह कार्य करके समस्त लोगो के सामने यह आदर्श उपस्थित कर दिया कि 'अनुकम्पा' ऐसी होती है ॥१-२॥

मोह अनुकम्पा इणने बतावे,
अज्ञानी ऊँधा हेतु लगावे।
स्वार्थरहित अनुकम्पा धरम ने,
सावज कहि-कहि जन्म गमावे ॥ अनु० ३ ॥

ईट तोकण जिन आज्ञा न देवे,
तिणसूँ अनुकम्पा सावज केवे।
ऊँधी श्रद्धा थी ऊँधी सूझे,
तिण थी कुहेतु बहुला देवे ॥ ० ४ ॥

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानी कृष्णजी की इस स्वार्थरहित अनुकम्पा को मोह-अनुकम्पा कहते है और कुहेतु लगाकर निर्मल अनुकम्पाधर्म को सावद्य-पापकारी बताकर अपने दुर्लभ मानव-जन्म को नष्ट करते है। उन लोगो की श्रद्धा विपरीत होने के कारण वे यह कुहेतु देते है कि 'ईट उठाकर रखने की भगवान् एव साधु आज्ञा नहीं देते है' इसलिये कृष्णजीकी यह अनुकम्पा सावद्य है ॥३-४॥

अनुकम्पा परिणामां में आई,
ईट तोकण किरिया छै न्यारी।
नेमनन्दन री मनसा जाणी,
(तब) चतुरङ्गी सेना सिणगारी ॥ अनु० ५ ॥

सेना री जिन ाज्ञा न देवे,
वन्दनभाव तो निर्मल जाणे।
(तिम) ईंट तोकणरी आज्ञा देवे,
(पिण) अनुकम्पा जिन आछी बखाणे ॥ ६ ॥

भावार्थ :—इसका उत्तर यह है कि अनुकम्पा परिणामों मे आती है और ईंट उठाने की-क्रिया शरीर से होती है। ईंट उठाने की क्रिया भिन्न है और अनुकम्पा भिन्न है, एक नही है। इसलिये ईंट उठाने की क्रिया के सावद्य होने से अनुकम्पा सावद्य नहीं हो सकती। श्री नेमिनाथ भगवान् के दर्शन एवं वन्दन करने के लिये जब कृष्णजी की इच्छा उत्पन्न हुई तब उन्होने चतुरंगिनी सेना सजाई थी। उस सेना सजानेरूप कार्य की भगवान् एवं साधु आज्ञा नहीं देते परन्तु तीर्थङ्कर के वन्दन को अच्छा जानते हैं। सेना सजानेरूप कार्य के सावद्य होने पर भी जैसे तीर्थङ्कर का वन्दन सावद्य नही समझा जाता क्योकि सेना सजाना दूसरा कार्य है और वन्दन करना उससे भिन्न है वैसे ही ईंट उठाकर र ने की भगवान् एवं साधु आज्ञा नही देते परन्तु अनुकम्पा को अच्छी बताते है और अनुकम्पा करने की आज्ञा देते है। इसलिये ईंट उठाने की क्रिया का नाम लेकर अनुकम्पा को सावद्य बताना मिथ्या है ॥५-६॥

वन्दन जे सेना चलाई,
अनुकम्पा काजे ईंट उठाई।
सेना चले वन्दन नहीं सावज,
अनुकम्पा ईंट थी सावज नांही ॥ अनु० ७॥

भावार्थ :—भगवान् को वन्दना करने के लिये जैसे कृष्णजी ने सेना सजाई और चलाई वैसे अनुकम्पा के लिये उन्होंने ईंट उठाकर रक्खी। सेना के सजाने से तथा चलने से जैसे वन्दना सावद्य नहीं होती वैसे ही ईंट उठाने से अनुकम्पा सावद्य नहीं होती। यदि ईंट उठाने की क्रिया के कारण अनुकम्पा सावद्य हो तो फिर सेना सजाकर आने जाने की क्रिया के कारण भगवान् नेमिनाथ का वन्दन भी सावद्य होना चाहिये परन्तु जिस तरह सेना सजाकर आने जाने से वन्दन सावद्य नहीं होता उसी तरह ईंट उठाने से अनुकम्पा भी सावद्य नहीं होती ॥७॥

ऊँचगोत्र वन्दनफल भाख्यो,
उत्तराध्ययन गुणतीस रे माँही।
अनुकम्पा फल सातावेदनी,
भगवती सूत्रे जिन फुरमाई ॥ अनु० ८ ॥

भावार्थ :—उत्तराध्ययन सूत्र के उन्नीसवे अध्ययन से वन्दना का फल उच्च गोत्र बाँधना कहा है और भगवतीसूत्र से अनुकम्पा का फल साता वेदनीय कर्म का बन्ध बतलाया है। इसलिये ये दोनो ही कार्य अच्छे है। अनुकम्पा करना सावद्य नही है। अतः बुड्ढे पर की गई कृष्णजी की अनुकम्पा को सावद्य बताना अज्ञानियो का कार्य है ॥८॥

दोनों कारज आछा जाणो,
समदृष्टि रे आज्ञा माँई।
भवछेदन (संसारपडत) सकाम निर्जरा,
ज्ञातादिक सूतर में आई ॥ अनु० ९ ॥

भावार्थ :—वन्दना और अनुकम्पा ये दोनो कार्य अच्छे है और समदृष्टि के ये दोनो कार्य भगवान् की आज्ञा मे हैं। ज्ञाता-सूत्र मे मेघकुमार आदि का दृष्टान्त देकर यह बतलाया गया है कि इनसे संसार-परिमित होता है और सकाम निर्जरा होती है॥

पुण्यबंधे अज्ञानी जन रे,
अकाम निर्जरा ते पिण पावे।
आगे चढ़ताँ समकित पावे,
जद वो जिन आज्ञा में आवे॥ अनु० १०॥

भावार्थ :—इन दोनों कार्यों से अज्ञानी जीवो के पुण्यबन्ध और अकाम निर्जरा होती है और वे आगे बढ़ते हुए समकित को प्राप्त कर जिनाज्ञा मे आ जाते है॥१०॥

दुखिया दीन दरिद्री प्राणी,
पंचेन्द्रिय जीवों ने मारण धावे।
मांस अर्थी भूख दुःख रा पी ा,
वां अज्ञानी जीवों ने कोण चेतावे॥ अनु० ११॥

दयावन्त उपदेशे वारचा,
अचित्त वस्तु देई कारज सारचा।
पंचेन्द्रिय जीव रा प्राण बचाया,
हिंस हिंसादि पाप ज टारचा॥ अनु० १२॥

भावार्थ :—भूख के दुःख से पीड़ित दीन, दुःखी, दरिद्री, मांसार्थी प्राणी मांस के लिये पंचेन्द्रिय जीवो की घात करते है

उन्हें दयावान् ज्ञानी पुरुष उपदेश देकर या अचित्त वस्तु देकर उस हिंसा के कार्य से रोकते हैं जिससे उन पंचेन्द्रिय प्राणियों की प्राणरक्षा हो जाती है और हिंसक भी हिंसा के पाप से बच जाता है ॥११-१२॥

मूरख इण में पाप बतावे,
ज्ञानी पूछे जब जवाब न आवे ।
जो हिंसा उपदेशे छुड़ावे,
वाहिज साज देई ने छुड़ावे ॥ अनु० १३ ॥

हिंसा छुटी दोनों ही ठामे,
जिण में फर्क न दीसे काँई ।
साज सूँ हिंसा छुटी तिण माँही,
ए न्त पाप री मति ठेराई ॥ अनु० १४ ॥

भावार्थ :—कितनेक मूर्ख अज्ञानी ऐसा कहते हैं कि अचित्त वस्तु देकर प्राणियों की रक्षा करना पाप है । उनके हृदय में दया नहीं है अथवा उनके हृदय में पाप बसा हुआ है इसलिये उन्हें प्रत्येक कार्य में पाप ही पाप दिखाई देता है किन्तु ज्ञानी पुरुष जब शास्त्र एवं युक्ति से उनसे पूछते हैं तब उन्हें जवाब नहीं आता । उनसे पूछना चाहिये कि जो हिंसा उपदेश से छुड़ाई जाती है और जो हिंसा कोई अचित्त वस्तु देकर छुड़ाई जाती है । इन दोनों में किसी तरह का फर्क नजर नहीं आता क्योंकि इन दोनों कार्यों से हिंसा छुटती है फिर अचित्त वस्तु देकर हिंसा छुड़ाने में एकान्त पाप कैसे हो सकता है ?

साज सूँ हिंसा छूट्या ां ही पायो,
*तो घोड़ा दोड़ावण जुक्ति थी लायो।
चित्तश्राव परदेशी राय ने,
केशी समण जद धर्म ब ायो ॥ अनु० १५ ॥

घो दौड़ाई राजा ने ल्यायो,
इणमें तो धर्मदलाली बतावे।
(ो) साज देई ने हिंसा छु ावे,
(जामें) पाप बतावतां लाज न ावे ॥ १६ ॥

भावार्थ:—जो लोग किसी अचित्त वस्तु का साज देकर हिंसा छुड़ाने में पाप बताते हैं उनको समझाने के लिये यहाँ एक शा का उदाहरण दिया जाता है:—राजप्रश्नीयसूत्र में श्वेताम्बिका नगरी के राजा परदेशी का वर्णन है। वह राजा बड़ा अधर्मी और पापी था। उसके चित्त नाम का एक सारथि था,

---

*जैसा कि वे कहते हैं:—

आय राजा ने इम कहे, सांभलज्यो महारायजी।
घोड़ा देश कमोद ना, मै ताजा किया चरायजी॥
धर्मदलाली चित्त करे॥ १॥
किणविध ल्यावे राय ने, सांभलज्यो नरनारीजी।
चित्तसरीखा उपगारिया, विरला इण संसारीजी॥ २॥
आप मोने सूंप्या हूंता, ते देख लेज्यो चौड़ेजी।
अवसर वरते एहवो, घोड़ा किसड़ा क दौड़ेजी॥
धर्मदलाली चित्त करे॥ ३॥
(परदेशी राजा की संध ढाल १०)

वह बारह व्रतधारी श्रावक था। उसने केशीश्रमण से प्रार्थना की कि हे भगवन्! यदि आप राजा परदेशी को धर्म सुनावें तो स्वयं राजा परदेशी को तथा उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों को, बहुन से श्रमण, माहण, भिक्षुकों को और उसके सम्पूर्ण राष्ट्र को बहुत लाभ हो। चित्त सारथि की इस प्रार्थना को स्वीकार कर केशीश्रमण श्वेताम्बिका नगरी के बाहर उद्यान मे पधारे। तब चित्त सारथि ने राजा परदेशी से कहा कि राजन्! आपने जो घोड़े शिक्षित बनाने के लिये मुझे सौंपे थे वे अश्व-सम्बन्धी शिक्षा प्राप्त कर तैयार हो गये है। आप उन्हे दौड़ाकर देख लीजिये। जब राजा घोड़े दौड़ाने लगा तब घोड़ो को दौड़ाने के बहाने से चित्त सारथि राजा को उद्यान मे केशीश्रमण के पास ले आया। केशीश्रमण ने राजा को धर्मोपदेश दिया जिससे उसने हिंसा वाले पाप-कार्यो का त्याग करके श्रावक के बारह व्रत धारण कर लिये और धर्मध्यानपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

चित्त सारथि घोड़े दौड़ाने के बहाने से राजा को धर्मश्रवण के लिये मुनि के पास ले आया, यह उसने धर्मदलाली की। इसको वे लोग भी धर्मदलाली मानते है जैसा कि उन्होने अपनी दसवी ढाल मे लिखा है। इसी प्रकार सहायता देकर हिंसा छुड़ाने मे भी धर्मदलाली होती है ऐसा उन्हे मानना चाहिये किन्तु वे इसे पाप कार्य बताते है यह उनकी उल्टी समझ है ॥१५-१६॥

सुबुद्धि प्रधान थी जितशत्रु राजा,
पाणी परिचय थी समझाणो ।
या पिण धर्मदलाली जाणो,
आरम्भ हुवो ते अलग पिछाणो ॥ अनु० १७॥

भावार्थ :—ज्ञातासूत्र के बारहवें अध्ययन में बतलाया गया है कि सुबुद्धि प्रधान ने खाई मे से जल मगाकर अनेक क्रियाओ के द्वारा उसे शुद्ध किया और उससे जितशत्रु राजा को सच्चा स्वरूप समझाया। इसमे भी आरम्भ तो हुआ किन्तु राजा को सच्चा स्वरूप समझा कर श्रावक के बारह व्रत ग्रहण करवा कर जीवाजीव का ज्ञाता बनाने रूप धर्मदलाली भी हुई। यहाँ आरंभ के कारण धर्मदलाली को पापकार्य नही कहा जा सकता क्योकि धर्मदलाली भिन्न है और आरम्भ भिन्न है ॥१७॥

गाजर मूला रो नाम लेई ने,
मति भोलां ने भरमावे।
अचित्त देई मूलादि छु ावे,
जाँ री तो चर्चा मूल लावे॥ नु० १८॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक मूर्ख अनुकम्पा को बुरी बतलाने के लिये ऐसा दृष्टान्त देते हैं कि कोई भूखा आदमी है उस पर अनुकम्पा करके उसे गाजर, मूली खिला दी। यह अनुकम्पा सावद्य हुई या निरवद्य ? इस प्रकार कहने वालों को यह पूछना चाहिये कि कोई भूखा आदमी गाजर, मूली ा रहा है उसको किसी ने सिके हुए अचित्त चने (भूँगड़े) देकर गाजर, मूली छुड़वा दी। अब बतलाओ इस अनुकम्पा मे धर्म हुआ या पाप ? इस अनुकम्पा मे भी तुम पाप मानते हो फिर गाजर, मूली का नाम लेकर भोली जनता को भ्रम मे क्यो डालते हो ? दरअसल बात तो यह है कि तुम्हे तो अनुकम्पा से ही द्वेष है। इसीलिये गरीब, दीन, अनाथ, दुःखी प्राणियो पर की जाने वाली अनुकम्पा को तुम पाप बताते हो। इसीलिये कुहेतु लगाकर

दुनिया से अनुकम्पा को सर्वथा उठा देने के लिए तुमने कमर कस रक्खी है। किन्तु यह तुम्हारा अज्ञान है ॥१८॥

अचित्त सहाय अनुकम्पा जो होवे,
(तो) सचित्त समदृष्टि क्यां ने खवावे।
ऊँधा हेतु अणहूँता लगावे,
ज्ञानी रे सामे जवाब न आवे॥
नुकम्पा सावज मत जाणो ॥ १६ ॥

भावार्थ :—यदि अचित्त वस्तु देने से ही किसी प्राणी की अनुकम्पा हो जाती होगी तो वैसी हालत में समदृष्टि पुरुष उसे सचित्त वस्तु क्यो देगा ? वह अचित्त वस्तु देकर ही उसकी अनुकम्पा कर देगा। किन्तु अनुकम्पा के द्वेषी लोग अनुकम्पा को बुरी बताने के लिये ऊँधे एवं कुहेतु लगाकर भोली जनता को भ्रम मे डालने का प्रयत्न करते है परन्तु ज्ञानी पुरुष जब उनसे पूछते है तब उन लोगो को जवाब नही आता और वे चुप हो जाते हैं ॥१६॥

१०—अधिकार धूप में पड़े हुए जीवों के संबंध में

तड़के तड़फत जीवाँ ने देखी,
दया लाय कोई छाया में मेले।
ज्ञानी तिणमें पाप बतावे,
खोटा दाँव गुरु यों खेले॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥१॥

भावार्थ :—धूप मे तड़फते हुए जीवों को देखकर कोई दया-वान् पुरुष दया से प्रेरित होकर उन्हे छाया मे रख दे तो इस कार्य मे भी वे अज्ञानी पाप बताते है और यहाँ तक कहते हैं कि यदि यह कार्य साधु करे तो उसके *पाँचो ही महाव्रत टूट जाते है। इस तरह उन्होने अपनी ढालो मे जोड़ रक्खा है ॥१॥

भगवती पनरवें शत में,
वीरप्रभु गौतम ने भाखे।
तप तपे वैसायण तपसी,
बेले बेले पारणो राखे ॥ अनु० २॥

सूर्य आतापना लेताँ जूवाँ,
ताप लाग्याँ सूँ नीचे पड़ता।
प्राणी भूत जीव दया भाव थी,
त्याँने उठाई मस्तक धरता ॥ नु० ३॥

भावार्थ :—भगवती शतक पन्द्रहवे मे भगवान् महावीर स्वामी अपने शिष्य गौतमस्वामी से कहते हैं कि वैश्यायन नाम का बालतपस्वी निरन्तर बेले-बेले पारणा करता था और सूर्य के सन्मुख खड़ा होकर सूर्य की आतापना लेता था। उसके मस्तक पर बढ़ी हुई जटा मे रही हुई जूएँ ताप लगने से नीचे गिरती थीं।

---

* जैसा कि वे कहते है :—

उपाड़ी ने जो मेले छाया, असंजती री वियावच्च लागे।
या अनुकम्पा साधु करे तो, त्यांरा पाँचो ही महाव्रत भागे॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥१८॥

नीचे की जमीन तपी हुई गर्म थी इसलिये कहीं वे मर न जाएँ— इस प्रकार उन पर अनुकम्पा करके उनको वापिस अपने मस्तक पर रखता था ॥२-३॥

बालतपस्वी दया जूँवाँ पर,
तड़का सूँ लेकर मस्तक मेले।
जैन रो भेष ले पाप बतावे,
दया उठावण माया खेले ॥ अनु० ४ ॥

भावार्थ :—जब बालतपस्वी भी जीवों पर अनुकम्पा करता है तब जैनसाधुओं को तो यथाविधि जीवों पर अनुकम्पा करनी ही चाहिए किन्तु जो जैनसाधु का भेप पहन कर अनुकम्पा मे पाप बताते है और लोगो के दिल से अनुकम्पा को उठाने के लिए अनेक प्रकार के मायाजाल रचते है उन्हे अपनी इन करतूतों से शर्म आनी चाहिये। वास्तव मे उन्हे जैनसाधु नहीं किन्तु भेप-धारी समझना चाहिये। किन्तु दुःख इस बात का है कि वे दया-दानप्रधान जैनधर्म के साधुओं का भेप पहनते है अतएव लोगो को धोखे मे डालते है। वे जैनसाधु नहीं है किन्तु दयादान प्रधान जैनधर्म के लिये कलङ्करूप हैं, जैनधर्म के नाम लजाने वाले है ॥४

तप तो तिण रो निरवद केवे,
अनुकम्पा सावज कहि ठेले।
अनुकम्पा प्रभु निरवद भाखी,
ज्ञानी न्याय सूतर से मेले ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—बालतपस्वी के तप को तो वे लोग निरवद्य यानी पापरहित कहते हैं किन्तु उसकी अनुकम्पा को सावद्य-पाप सहित

कहते है। पता नही उन लोगो को अनुकम्पा से इतना द्वेष कैसे और क्यो हो गया है? भगवान् ने अनुकम्पा को कही पर भी सावद्य-पापसहित नहीं कहा है किन्तु अनुकम्पा को श्रेष्ठ बतलाया है। शास्त्रो मे अनुकम्पा के अनेको उदाहरण मिलते है ॥५॥

कीड़ा मकोड़ा ने छाया में मेले,
असंजती री व्यावच केवे।
भेषधारी कहे 'साधु मेले तो,
त्याँ रा पाँचों ही (महा) व्रत नहीं रेवे' ॥ ६ ॥

भावार्थ :—जैनसाधु के भेष को धारण करने वाले कितनेक अनुकम्पाद्वेषी कहते है कि 'धूप मे पड़े हुए कीड़े मकोड़े पर अनुकम्पा करके यदि साधु उसे उठाकर छाया मे रख देता है तो उसे असंयति की वैयावच्च लगती है और उसके पाँचो ही महाव्रत टूट जाते है।' यह उनका कहना कितना अज्ञानपूर्ण है। इससे उनके अनुकम्पा पर द्वेष की तीव्रता जाहिर होती है कि उनके हृदय मे अनुकम्पा के प्रति कितना तीव्र द्वेष भरा हुआ है ॥६॥

चतुर पूछे कोई भेषधारी ने,
जूँवाँ असंजती ने थे भी पोखो।
नीचे पड़ी ने पाछी उठावो,
महाव्रत रो थारे रयो लेखो ॥ अनु० ७॥

भावार्थ :—उन भेषधारी जैनसाधुओ से कोई ज्ञानी पुरुष यह प्रश्न कर सकता है कि तुम अपने मस्तक मे अथवा अपने आश्रित वस्त्र मे उत्पन्न हुई जूँवो का पोषण करते हो और नीचे

गिरने पर उन्हे वापिस उठाते हो तब फिर तुम्हारी मान्यता के अनुसार तुम्हारे महाव्रत कैसे रह सकते है ? ॥७॥

दशवैकालिक चौथे अध्ययने,
त्रसजीवाँ अनुकम्पा काजे ।
साधु ने प्रभुजी विधि बतावे,
मूलपाठ में इणविध राजे ॥ अनु० ८ ॥

उपासरा वली उपधि मांही,
त्रस जीव देख दया दिल लावे ।
रक्षा रे ठामे त्यांने मेले,
दुःख रे ठाम नहीं परठावे ॥ अनु० ६ ॥

भावार्थ :—दशवैकालिक सूत्र के चौथे अध्ययन मे मूलपाठ मे भगवान् ने त्रसजीवो पर अनुकम्पा करने की साधु को विधि बताई है कि अपने आश्रित उपाश्रय, वस्त्र, पात्र आदि उपधि मे यदि कोई त्रसजीव दिखाई दे तो साधु उस पर दया लाकर उसको रक्षा के स्थान पर रख दे, दुःख के स्थान पर न रक्खे ॥८-६॥

जीव बचायां जो महाव्रत भागे,
(तो) शास्त्र में आज्ञा प्रभु किम देवे ।
भारीकर्मा लोगों ने भ्रष्ट करण ने,
दया में पाप मिथ्यात्वी केवे ॥
अनु म्पा सावज मत जाणो ॥१०॥

भावार्थ :—यदि जीव बचाने से महाव्रत भंग हो जाता होता तो भगवान् शास्त्र मे जीव बचाने की आज्ञा कैसे देते ? अतः जो अज्ञानी जीव बचाने मे पाप बताते है वे भोले लोगों को सच्चे सिद्धान्त से भ्रष्ट करते हैं ॥१०॥

११—अधिकार अभयकुमार की अनुकम्पा का

अभय ँवर तप तेलो करने,
ब्रह्मचर्य सहित पोसो कर बैठो ।
पूरव संगति देव ने समर्यो,
मन एका ह राख्यो सेंठो ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥ १ ॥

भावार्थ :—मेघकुमार की कथा विस्तार के साथ पहले लिखी जा चुकी है । राजा श्रेणिक की रानी धारिणी के गर्भ मे जब मेघकुमार का जीव आया तब उसको यह दोहला उत्पन्न हुआ कि 'आकाश मे मेघ हो, पानी बरसे और जमीन पर हरियाली हो । जब मै हाथी पर बैठकर वैभार पर्वत की तलहटी मे आनन्दपूर्वक विचरण करूँ ।' इस अकाल मेघ के दोहले को मनुष्यशक्ति से बाहर का समझकर श्रेणिक राजा के बड़े पुत्र अभय मार ने देवता की आराधना के लिये ब्रह्मचर्य सहित तीन दिन तक पौषधोपवास किया और मन मे पूर्वभव के मित्रदेव का स्मरण करता हुआ वह दृढ़चित्त होकर बैठा रहा ॥१॥

जे दिन रे ट प्रभावे,
आसण चलताँ देवता देखे ।

तेला री अनुकम्पा आई,
गुणानुरागी हुवो तप रे लेखे ॥ अनु० २ ॥

भावार्थ :—तप के तीसरे दिन तेले के प्रभाव से देवता का आसन चलित हो गया। अपने आसन को चलित देखकर देवता ने उपयोग लगाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि मेरा पूर्वभव का मित्र अभयकुमार मुझे याद कर रहा है। अभयकुमार के तप-जनित कष्ट को देखकर उसके हृदय मे 'अनुकम्पा उत्पन्न हुई। जैसा कि मूलपाठ मे कहा है :—

"अभयकुमारमणुकंपमाणे देवे पुव्वभवजणिय नेहपीइ-बहुमाण जाय-सोगे।

टीका :—हा ! तस्य अष्टमोपवासरूपं कष्टं विद्यते इति विकल्पयन्।"

अर्थात्—मेरे मित्र को अष्टमोपवास (तेला) जनित कष्ट हो रहा है यह सोचते हुए उस देव के हृदय मे पूर्वजन्म का स्नेह, प्रीति बहुमान (गुणानुराग) के स्मरण होने से मित्रविरहरूप खेद उत्पन्न हुआ। इस प्रकार अभयकुमार के कष्ट को देखकर देव के हृदय मे अनुकम्पा उत्पन्न हुई। वह उनके तप का गुणानुरागी होकर तत्क्षण उनके पास आया और उनसे पूछकर उनकी इच्छानुसार कार्य करके :—

"अभयकुमारं एवं वयासी एवं खलु देवाणुप्पिया मए तवप्पियट्ठयाए सगज्जिया सफुसिया दिव्वा पाउससिरी विउव्विया।"

अर्थात्—देव अभयकुमार से इस प्रकार कहने लगा कि, हे देवानुप्रिय ! मैंने तुम्हारे प्रेम के लिए गर्जन, विद्युत् (बिजली) और जलबिन्दु के साथ दिव्य वर्षाऋतु की शोभा उत्पन्न की है ॥

"अनुकम्पा कर बरसायो पाणी"
मिथ्यामती एवी झूठी भाखे ।
नुकम्पा तो तप री आई,
इण रो तो नाम छिपाई ने राखे ॥ अनु० ३ ॥

भावार्थ :—वे मिथ्यामति अज्ञानी लोग ऐसा कहते है कि 'अभयकुमार की अनुकम्पा करके देव ने पानी बरसाया था ।' उनका यह कहना सरासर झूठ है क्योकि शास्त्र के मूलपाठ मे अभयकुमार की प्रीति के लिए पानी बरसाना कहा गया है, अनुकम्पा के लिए नहीं । अनुकम्पा तो अभयकुमार के तपजनित कष्ट को देखकर आई थी ॥३॥

जल बरसावण कारज न्यारो,
तिहाँ अनुकम्पा रो नाम न आयो ।
झूठा नाम सूतर रा लेई ने,
अनुकम्पा रो धर्म उठायो ॥ अनु० ४ ॥

भावार्थ :—पानी बरसाने का कार्य अलग है और वहाँ 'अनुकम्पा' शब्द भी नही आया है तथापि अनुकम्पा उठाने के लिए झूठमूठ ही सूत्र का नाम लेते है ॥४॥

(तप) संयमी री अनुकम्पा करे कोई,
समण माहण पर प्रेम ज लावे।
उत्तरवैक्रिय कर गुणरागी,
दर्श उमङ्गधरी देव आवे ॥ अनु० ५ ॥

दर्शन, अनुकम्पा, गुणराग तो,
निर्मल श्रीमुख जिन फ़ुरमावे।
वैक्रिय करण आवण जावण री,
क्रिया तो तिण थी न्यारी बतावे ॥ अनु० ६ ॥

क्रियायोगे गुणराग न सावज,
तिम अनुकम्पा सावज नांही।
साँचो न्याय सुणि मूढ़ भड़के,
खोटा पक्ष री ताण मचाई ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥ ७ ॥

भावार्थ :—जैसे गुणों में प्रेम रखने वाले देव तप संयम से युक्त मुनि पर अनुकम्पा करके उत्तरवैक्रिय शरीर बना कर उनके दर्शनार्थ हर्ष के साथ उमङ्गपूर्वक आते हैं। उन देवों के गुणानुराग और मुनि पर अनुकम्पा तथा साधुदर्शन को स्वयं तीर्थङ्कर भगवान् अपने श्रीमुख से उत्तम बतलाते हैं और उत्तरवैक्रिय करना तथा आने जाने की क्रिया को उससे भिन्न बताते है। जिस प्रकार उत्तरवैक्रिय शरीर बनाने और आने जाने की क्रिया से गुणानुराग और साधुदर्शन सावद्य नहीं है उसी तरह आने

जाने की क्रिया से अनुकम्पा सावद्य नहीं होती क्योंकि आने जाने की क्रिया भिन्न है और अनुकम्पा भिन्न है। अतः अभय-कुमार पर देवता की अनुकम्पा को सावद्य कहना अज्ञान का परिणाम है।

अभयकुमार पर अनुकम्पा कर पानी बरसाने की बात तो बिल्कुल मिथ्या और शास्त्र के मूलपाठ से विरुद्ध है फिर भी खोटे मतपक्ष के आग्रह मे पड़कर जो मूर्ख शास्त्र-विरुद्ध झूठी बात कहता है वह अनन्त संसार बढ़ाता है ॥१०॥

१२—अधिकार पशु बाँधने छोड़ने का

(कहे) " धु थी अनेरा त्रस जीवाँ ने,
अनुकम्पा थी बाँधे न छोड़े।*
चौमासी दण्ड साधु ने आवे,
गृहस्थ रे (पिण) पाप रो बन्ध चौड़े" ॥ १ ॥

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—

साधु बिना अनेरा सर्व जीवाँ री,
अनुकम्पा आणे साधु बाँधे बँधावे।
तिण ने निशीथ रे बारहवे उद्देशे,
साधु ने चौमासी प्रायश्चित्त आवे ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥
(अनु० ढाल १ गाथा २२)

अनुकम्पा सावज इण लेखे,
अज्ञानी यों बात उचारे।
निशीथ पाठ रो अर्थ ऊँधो कर,
भोला डूबाया मिथ्या मझधारे ॥ अनु० २॥

न्याय सुणो हिवे निशीथ पाठ रो,
'कोलुणवडिया' त्रस जो प्राणी।
डाभ मूँज चरमादि रे फाँसे,
बाँधे न छोड़े सूतर री वाणी ॥ अनु० ३॥

भावार्थ :—कई अज्ञानी कहते है कि साधु से भिन्न दूसरे त्रसजीवो को अनुकम्पा से बॉधे और छोड़े तो उस साधु को चौमासी प्रायश्चित्त आता है। इसी प्रकार यदि गृहस्थ भी त्रस-जीवो को बॉधे और छोड़े तो उसको भी पाप का बन्ध होता है। इसके लिये वे लोग निशीथ सूत्र के बारहवे उद्देशे का प्रमाण देकर इस अनुकम्पा को सावद्य बताते है किन्तु यह उनका अज्ञान है ॥१॥

निशीथ सूत्र का ऊँधा (विपरीत) अर्थ करके वे भोले लोगो को मिथ्यात्व मे डालते है। निशीथसूत्र के पाठ का न्यायसंगत अर्थ इस प्रकार है :—वहाॅ 'कोलुणवडिया' शब्द है, जिसका अर्थ है कि 'अनुकम्पा की प्रतिज्ञा होने से मुनि त्रसजीवो को डाभ, मूॅज और चमड़े आदि की रस्सी से न बॉधे और न छोड़े' ॥२-३॥

डाभ मूँज चरमादि रा फाँसा,
साधु रे पास में रेवे नाहीं।
(तो) साधु इण फाँसे किम बाँधे,
पण्डित न्याय तोलो मन माहीं ॥ अनु० ४॥

भावार्थ :—साधु के पास मे डाभ, मूँज, चर्मादि की रस्सी नहीं होती फिर साधु इन रस्सियो के द्वारा कैसे बॉध सकता है ? पण्डित पुरुष न्यायपूर्वक इस बात का विचार कर सकता है और शास्त्र के पाठ का अर्थ ठीक तरह से बिठा सकता है ॥४॥

चूरणी भाष्य में न्याय बतायो,
सेजातर रा घर री या बातो।
जिण री जागा में साधु उतरिया,
तहाँ ये जोग मिले साक्षातो ॥ नु० ५॥

ाधु चार सेजातर न जाणे,
जद वो साधु ने घर सँभलावे।
खेत खला रे ामे जाताँ,
बाँधण छोड़ण प रो बतावे ॥ अनु० ६॥

भावार्थ :—चूर्णी और भाष्य मे इस बात का खुलासा इस प्रकार किया गया है कि जिसके मकान मे साधु ठहरते है वह शय्यातर कहलाता है। वहाँ इन बातो का यानी पशुओ को बॉधने और छोड़ने का योग मिल सकता है। जो शय्यातर (उस मकान का मालिक) जैनसाधु के आचार-विचार को नही

जानता वह अपने कार्य के लिए खेत आदि जाते समय अपने मकान मे ठहरे हुए साधुओ से अपने घर की देखभाल रखने के लिये कहता है तथा पशुओ को बाँधने और छोड़ने का काम भी बताता है ॥५-६॥

साधु कहे हम बाँधाँ न छोड़ाँ,
गृहस्थ रा घर री चिन्ता न लावे।
तब तो मुनि ने प्रायश्चित्त नाहीं,
बाँधे छोड़े तो अनुकम्पा जावे ॥ अनु० ७ ॥

भावार्थ :—तब साधु उस शय्यातर को उत्तर देते है कि "हम जैनसाधु है, गृहस्थ के घर की चिन्ता करना तथा उसकी देखभाल करना हमारा आचार-विचार नही है। अतः हम पशुओ को बाँधने छोड़ने का कार्य नही करते क्योकि ऐसा करने से हमारी अनुकम्पा नही रहती।" ऐसा उत्तर देने पर साधु को कोई प्रायश्चित्त नहीं आता है ॥७॥

विशिष्ट ओगेणावन्त गवादिक,
त्रस जीवों रो अर्थ पिछाणो।
चूरणी भाष्य में अर्थ यो ीनो,
जूना केई टब्बा में जाणो ॥ अनु० ८ ॥
द्विन्द्रियादिक जीव तरस रो,
शुद्ध टब्बा में अर्थ बतायो।
यो र्थ मिलतो नहीं दीखे,
तिण से न्याय सुणो चित्त यो ॥ अनु० ९ ॥

भावार्थ :—निशीथसूत्र के इस पाठमे जो 'त्रस' शब्द आया है उसका अर्थ 'विशिष्ट' अवगाहना वाले त्रसजीव अर्थात् गाय, भैस आदि समझना चाहिए। यही अर्थ चूर्णी, भाष्य और कई पुराने टब्बों मे किया है किन्तु किसी-किसी टब्बे मे यहाँ 'त्रस' शब्द से बेइन्द्रियादि का ग्रहण भी कर लिया है किन्तु यह अर्थ युक्तिसंगत नहीं है। इसका कारण ध्यानपूर्वक सुनिये ॥८-९॥

लट, कीड़ी ने माखी, माछर,
द्वीन्द्रियादिक जीव [illegible]णो।
(जाँने) चाम, बेंत फाँसे बाँधण रो,
र्थ करे ते मन्दमति जा णो ॥ अनु० १० ॥

शुद्ध टब्बा री ताण करी ने,
नाहीं हृदय सूँ न्याय विचारे।
'टीका में हीं ो टब्बा में क्याँ थी',
पोते पिण एहवी वाणी उचारे ॥ नु० ११ ॥

यो ही न्याय यहाँ पिण जाणो,
टी विरुद्ध टब्बो म ताणो।
भाष्य चूरणी थी मिले ते तो साँचो,
विपरी तो विपरीत बखाणो ॥ अनु० १२ ॥

भावार्थ :—लट, मक्खी, मच्छर आदि द्वीन्द्रियादि प्राणी कहे जाते है। इनको चमड़े, बेत आदि की रस्सी एवं फाँसे से बाँधने की जरूरत नही होती और निशीथसूत्र के इस पाठ मे

त्रस प्राणियो को बाँधने के लिये चमड़े और बेत आदि की रस्सी और फाँसे बताये गये है। अतः यहाँ 'त्रस' शब्द से द्वीन्द्रियादिक प्राणियो का ग्रहण नही करना चाहिए किन्तु विशिष्ट अवगाहना वाले त्रस प्राणी अर्थात् गाय, भैस आदि का ही ग्रहण करना चाहिए। इसलिये यहाँ 'त्रस' शब्द से द्वीन्द्रियादिक का ग्रहण जिस टब्बे मे किया है उसे अशुद्ध समझना चाहिए। उस अशुद्ध टब्बे की ताण (आग्रह) करके कितने ही अज्ञानी लोग उपरोक्त न्याय को हृदय से नही विचारते किन्तु उन्हे इस बात पर विचार करना चाहिए कि उन्ही (तेरहपन्थियो) के आचार्य जीतमलजी भी यह बात कहते है कि :—

"टीका मे नही तो टब्बा मे क्यां थी आयो।"

अर्थात्—जो अर्थ टीका मे नही है वह टब्बे मे कहाँ से आ सकता है? यही न्याय उन लोगो को वहाँ पर भी समझना चाहिए और टीका से विरुद्ध टब्बे की ताण नही करनी चाहिए। जो अर्थ टीका, भाष्य और चूर्णी से मिलता हो उसे ठीक समझना चाहिए और जो इनसे विपरीत हो उसे ठीक नही समझना चाहिये ॥९-१२॥

'कोलुणवडिया' सूतर पाठ रो,
चूरणी भाष्य थी अर्थ विचारो।
बाँध्या छो ' नुकम्पा न रेवे,
दोष लागे कीनो निरधारो ॥ अनु० १३॥

भावार्थ :—निशीथसूत्र मे जो 'कोलुणवडिया' शब्द आया है उसका अर्थ चूर्णी और भाष्य मे इस प्रकार बतलाया गया

है—कोलुणवडिया अर्थात् अनुकम्पा की प्रतिज्ञा होने से साधु पशुओ को बाँधे छोड़े नहीं क्योकि पशुओ को बॉधने छोड़ने से साधु की अनुकम्पा नहीं रहती। पशुओं को बॉधने, छोड़ने से मुनि को दोष लगता है और अनर्थ की सम्भावना रहती है ॥१३॥

कुण कुण दोष बाँधण में लागे,
भाष्य, चूरणी, टब्बा में देखो।
पणी पर री घात ज होवे,
तिण रो बतायो इण विध लेखो ॥ ० १४ ॥

भावार्थ :—पशुओ को बॉधने मे तथा छोड़ने मे कौन-कौनसे दोष लगते हैं और अपनी तथा दूसरो की घात किस प्रकार होती है जिसका खुलासा भाष्य, चूर्णी और टब्बा मे इस प्रकार बतलाया गया है :—

बाँध्या थी पशु पीड़ा पावे,
आंटी खाय रखे मर जावे।
अन्तराय बाँध्या थी लागे,
तड़फड़तो ति ही दुः ॥ ० १५ ॥

पर री विराधना या बतलाई,
साधु घात री हिवे सुणो बातो।
सींग थी मारे ने खुर थी चाँपे,
ोध च गो करे री घातो ॥ नु० १६ ॥

भावार्थ :—पशुओं को बॉधने से प्रथम दोष तो यह है कि—कहीं ऑटी खाकर मर न जाय, (२) अन्तराय लगे और (३) तड़फड़ता हुआ अति कष्ट पावे। इस प्रकार यह परविराधना बतलाई गई है। आत्मविराधना का खुलासा इस तरह किया गया है कि पशु को बॉधते समय वह (१) मुनि को सींग से मार दे अथवा (२) खुर से कुचल दे और क्रोध में आकर मुनि की घात कर दे ॥१५-१६॥

लोकाँ में पिण लघुता लागे,
साधु होकर ढाँडा बाँधे।
इण कारण चौमासी प्राछित,
(पिण) ज्ञानी तो ऊँधी साँधे ॥ अनु० १७॥

भावार्थ :—उपरोक्त दोषो के अतिरिक्त यह एक दोष और भी बतलाया गया है कि गृहस्थ के पशुओ को बाँधने और छोड़ने से प्रवचन की लघुता होती है अर्थात् गृहस्थ के पशुओ को बॉधते और छोड़ते हुए साधु को देखकर लोग साधु की निन्दा करते हैं कि यह कैसा साधु है जो गृहस्थ की नौकरी करता है, गृहस्थ के घर के कामकाज करता है। इनका धर्म अच्छा नहीं है। इस प्रकार प्रवचन की निन्दा होती है।

इस प्रकार भाष्य और चूर्णी मे गाय आदि पशुओं को बॉधने से अनर्थ होना बतला कर प्रायश्चित्त कहा है किन्तु उन पर अनुकम्पा करने से प्रायश्चित्त होना नहीं कहा है। इसलिये निशीथसूत्र के इस पाठ का नाम लेकर गाय आदि प्राणियों पर अनुकम्पा करने से प्रायश्चित्त बताना अज्ञानियो का कार्य है॥१७॥

किण मुनि छोड़े नाँहीं,
तिण रो विवरो भाष्य में देखो।
छोड्याँ र परजीवाँ ने मारे,
कूवा में पड़वा रो लेखो ॥ ० १८ ॥

चोर हरे, अटवी में जावे,
सिंहादिक छूटा ने मारे।
इत्यादि हिंसा रा दोष या,
साधु तो चोखे चित्त धारे ॥ अनु० १९ ॥

छूटाँ सूँ प्राणी दुःखिया होसी,
तो दयावान छोड़ण नहीं चावे।
तो नुकम्पा रा सागर,
वे ड़ण मन में लावे ॥ ० २० ॥

भावार्थ :—बँधे हुए पशुओ को छोड़ने में कौनसे दोष लगते हैं जिसका खुलासा भी भाष्य और चूर्णी मे किया गया है कि (१) "पशु को बन्धन से छोड़ने पर वह किसी को मारे, (२) वह यं कुए, ई, गड्ढे आदि मे गिर पड़े, (३) उसे चोर चुरा ले जाय, (४) जङ्गल मे चला जावे, (५) जङ्गल मे चले जाने से सिंहादि उसे मार देवे" इत्यादि दोष बताये हैं। साधु तो करुणा के गर होते हैं। पशुओ को छोड़ने से वे दुःखित होगे, इस दृष्टि से वे पशुओं नहीं छोड़ते है ॥१८-२०॥

बाँधे छोड़े अनु म्पा न रेवे,
तिणथी चौमासी प्राछित आवे।
णा, दया, शान्ति ऋषि चावे,
तिण रो दंड नि नहीं पावे ॥ अनु० २१ ॥

भावार्थ :—भाष्य और चूर्णी में बतलाये गये उपरोक्त अनर्थों की सम्भावना से जहाँ पशुओं को बाँधने और छोड़ने से अनुकम्पा नहीं रहती है उस अपेक्षा से चौमासी प्रायश्चित्त यानि जहाँ बाँधने और छोड़ने से अनुकम्पा होती हो, बताया है और अनुकम्पा के स्थान वहाँ यदि साधु बाँधे और छोड़े तो उसका प्रायश्चित्त साधु को नहीं आता है क्योंकि साधु तो सदा करुणा, दया और शान्ति के इच्छुक रहते है ॥२१॥

अनुकम्पा लायाँ रो प्राछित केवे,
झूठा नाम सूतर रा लेवे।
भाष्य, सूतर, चूरणी टब्बा में,
कठे ही चाल्यो तो पिण केवे ॥ अनु० २२ ॥

नुकम्पा रा द्वेषी वेषी,
झूठ नाम लेता नहीं लाजे।
अज्ञान न्धेरे स्याल ज्यों कूके,
ज्ञान प्रकाशे र कर भाजे ॥ अनु० २३ ॥

भावार्थ :—जो लोग अनुकम्पा लाने से प्रायश्चित्त कहते हैं वे झूठमूठ ही शा का नाम लेते हैं क्योंकि सूत्र, भाष्य, चूर्णी

और टब्बा ादि मे कहीं पर भी अनुकम्पा लाने से प्रायश्चित्त नही बतलाया गया है तथापि अनुकम्पा के द्वेषी, जैन साधु के भेष को धारण करने वाले वे शास्त्र का झूठा नाम लेते जरा भी नही शरमाते। वे अज्ञान रूपी अन्धकार मे पड़कर गीदड़ की भाँति बकते हैं परन्तु जब ज्ञानरूपी प्रकाश का उदय होता है तब गीदड़ की भाँति दुम दबा कर भाग जाते हैं एवं निरुत्तर हो जाते हैं ॥२२-२३॥

ाड में पड़ताँ ने अग्नि में जलताँ,
सिंह थी ा साधु जाणे।
ाय दया ँधे छोड़े ो,
प्राछित नाँहीं र्थ प्रमाणे॥ ० २४॥

चीन भाष्य अरु चूरणी में,
करुणानु ा करणी बताई।
रताँ जाण ँधे छोड़े,
इ विधि में ाछित ाँहीं॥ अनु० २५॥

भावार्थ:—जहाँ पशु ख े मे गिर कर, आग में जल कर या सिंह ादि जङ्गली जानवरो से मारा जाने की आशङ्का हो वहाँ साधु उन्हे बाँधते और छोड़ते भी हैं। इस प्रकार जहाँ बाँधे और छोड़े बिना गाय आदि प्राणियों की रक्षा नही हो सकती हो वैसे वसर उन्हें बाँधने और छोड़ने का विधान इसी जगह निशीथ सूत्र के भाष्य और चूर्णी मे किया गया है। वह भाष्य और चूर्णी इस प्रकार है:—

'कारणे पुण बँधमुयणं करेज्जा'
विनियपदमणपज्झे, बँधे अविकोवितेव अप्पज्झे।
विसमगउअ गणिआउ, वणप्फगादीसु जाणमवी॥

(भाष्य)

"अणपज्झो बँधइ अविकोविओ वा सेहो, अहवा विकोविओ वा सेहो। हवा विकोविओ अप्पज्झो इमेहिं ारणेहिं बंधंति विसमा अगडि अगणिउसु मरिज्जिहि। इइ दुगादि सणफएण वा मा ज्जिहित्ति एवं जाणाणा वि बंधइ मुयइ।"

अर्थात्—जहाँ पशु आग मे जलकर, गड्ढे में गिर कर या जंगली जानवरों से मारा जाकर मर जाने की आशङ्का हो वहाँ साधु उन्हे बाँधते और छोड़ते भी है परन्तु बन्धन गाढ न होना चाहिये।

यह ऊपर लिखे हुए भाष्य और चूर्णी का अर्थ है। उपर्युक्त अवसर पर दया लाकर बाँधने, छोड़ने और उसकी रक्षा करने से प्रायश्चि नही कहा है॥२४-२५॥

त्रस अर्थ बेइन्द्रियादिक करने,
दया थी बाँध्याँ दोष बतावे।
(पोते) पाणी में माखी ठर रझाई,
कपड़ा में बाँधे ने मूरछा मिटावे॥ अनु० २६॥

मूरछा मिट्याँ सूँ छोड़ उ ावै,
तिण में तो ते पिण धर्म बतावै ।
(गो) अनु म्पा थी बाँध्याँ छोड्याँ में,
प परूप के भेष लजावै ॥ अनु० २७॥

भावार्थ :—जो अज्ञानी द्वीन्द्रियादिक त्रस प्राणियों को बाँधने मे दोष बताते हैं वे ही स्वयं अपने जल के पात्र मे पड़कर शीत से मूर्च्छित हुई मक्खी को कपड़े मे बाँध कर उसकी मूर्च्छा मिटाते हैं और मूर्च्छा मिट जाने पर उसे छोड़ कर उड़ा देते है। इसको तो वे धर्म बताते हैं परन्तु अनुकम्पा से गाय आदि त्रस प्राणियो को बाँधने और छोड़ने मे पाप बतला कर अपने साधु भेष को लजाते हैं ॥२६–२७॥

साधु पिण त्रस जीव कहीजे,
ारण करुणा थी बाँधे ने छोड़े ।
भेष ारयां रे र्थ प्रमाणे,
पाप हूँसो वाँरी शरधा रे जोड़े ॥ अनु० २८॥

'साधु ने करुणा थी बाँध्याँ छोड्याँ में,
धर्म हुवे' यूँ ते पिण बोले ।
अर्थ कहो यह क्याँ थी लाया ?
सूतर पाठ में तो नहीं खोले ॥ नु० २६॥

तब तो हे म्हें जुगती से केवाँ,
पण्डित त्याँने उत्तर देवे ।

भाष्य, चूरणी, टब्बा री युक्ति,
क्यों नहीं मानो सुगुरु यों केवे ॥ अनु० ३० ॥

भावार्थ :—पागल हो जाने की अवस्था मे साधु को अनुकम्पा लाकर वे लोग भी बाँधते और छोड़ते हैं। जब वे त्रस प्राणियो को बाँधने और छोड़ने मे पाप बताते हैं तो उनकी मान्यता के अनुसार पागल साधु को बाँधने और छोड़ने मे भी पाप होना चाहिए क्योकि साधु भी त्रस प्राणी हैं। परन्तु वे पागल साधु को अनुकम्पा से बाँधने और छोड़ने से धर्म बताते हैं तब उनसे पूछना चाहिए कि 'पागल साधु को बाँधने से धर्म होता है ?' यह अर्थ तुम कहाँ से करते हो क्योकि निशीथ सूत्र के मूलपाठ मे तो ऐसा नहीं बतलाया है। वे इसका यह उत्तर देते है कि हम युक्ति से यह बात कहते है तब पण्डित पुरुष उनसे कहते है कि जब तुम युक्ति से यह बात कहते हो तब भाष्य, चूर्णी और टब्बा की युक्ति को तुम क्यो नही मानते ? निशीथ सूत्र की चूर्णी और भाष्य मे जो बात कही है उसका आप लोग भी मक्खी तथा साधुओ आदि पर व्यवहार करते है परन्तु गाय आदि के विषय मे इसे पाप कहने लगते हैं, यह आप लोगो का अज्ञान और मताग्रह के सिवाय और कुछ नही है ॥२८-३०॥

मन रे मते मतहीणा बोले,
शुद्ध परम्परा सूत्र ने ठेले।
माखी ने तो बाँधे अरु छोड़े,
दूजा जीवाँरी युक्ति क्यों मेले ॥ अनु० ३१ ॥

भावार्थ :—वे अज्ञानी शुद्ध परम्परा और सूत्र के पाठ को छोड़कर अपनी इच्छानुसार यत्किञ्चित् प्रलाप करते है क्योकि

मक्खी को तो वे बाँधते और छोड़ते हैं तो गाय आदि त्रस प्राणियों को बाँधने और छोड़ने मे वे कुयुक्तियाँ क्यो देते है ? ॥३१॥

सूत्र निशीथ उद्देशे द्वादश,
इण रे ना थी द्वन्द्व चायो।
तिण रण यो मैं ि यो खुलासो,
सूत्र रो साँचो र्थ बतायो ॥ अनु० ३२ ॥

जिण ंध्या नुकम्पा न रेवे,
तिण रो यश्चित्त निश्चय जाणो।
बांध्या ो ॉ जीं बचे तो,
दण्ड नहीं तजो ैंच णो ॥
अनुकम्पा स। णो ॥ ३३ ॥

भावार्थ :—निशीथसूत्र के बारहवे उद्देशे का नाम लेकर उसके मूलपाठ का जो लोग गल्त अर्थ करते है उनको उपर्युक्त कथन द्वारा सच्चा अर्थ बतलाया है कि जहाँ बाँधने और छोड़ने मे अनुकम्पा नही रहती हो वहाँ साधु को प्रायश्चित्त आता है और जहाँ बाँधने और छोड़ने मे त्रस प्राणी की रक्षा होती हो वहाँ बाँधने और छोड़ने से साधु को कोई प्रायश्चित्त नही आता। इसलिए खींचातान को छोड़कर इस सत्य अर्थ को मानना चाहिए ॥३२-३३॥

१३-अधिकार व्याधि मिटावण विषयक

व्याधि बहुत कोढादिक सुण ने,
वैद्य अनुकम्पा तिण री लावे।
प्रासुक औषध दुःख मिटावे,
निर्लोभी ने पिण पाप बतावे ॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो ॥ १ ॥

भावार्थ :—कोई निर्लोभी वैद्य किसी को कोढादि व्याधि से पीड़ित जान कर उस पर अनुकम्पा करके प्रासुक औषधि से उसकी व्याधि को दूर करता है। परन्तु अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक अज्ञानी इससे वैद्य को पाप होना बतलाते हैं ॥१॥

दुःख न देणो तो पुण्य में बोले,
दुःख मिटावा में पाप बतावे।
दुःख मिटायो तिण दुःख न दीधो,
मन्दमति क्यों पाप लगावे ॥ अनु० २ ॥

भावार्थ :—'किसी को दुःख न देना' इसमे तो वे लोग भी पुण्य मानते हैं किन्तु किसी के दुःख को दूर करने मे वे पाप बतलाते है। यह कैसी उल्टी समझ है क्योकि दुःख मिटाना भी दुःख न देना ही है। फिर वे अज्ञानी लोग इसमे पाप क्यो बतलाते हैं? ॥२॥

जैन रा देखो अङ्ग उपाङ्गों,
वेद पुराण रान में देखो।
दुः देणो अरु दुः मिटाणो,
दोनाँ रो शुद्ध बतायो ले गो ॥ अनु० ३ ॥

भावार्थ :—जैन के ग्यारह अङ्ग और बारह उपाङ्ग सूत्रों मे तथा वेद, पुराण और कुरान आदि सब धर्मशास्त्रों में 'किसी जीव को दुःख न देना और किसी दुः ी जीव के दुःख को दूर कर देना' इन दोनो कार्यों को शुद्ध एवं उत्तम बतलाया है ॥३॥

दुः मिटावा में घणे रो,
मन्दमति बिं दूजो न बोले।
घोर धारो हिरदा में यो,
भोलाँ ने ँ दिया कभोले ॥ ० ४ ॥

भावार्थ :—अज्ञान रूपी अन्धकार से जिसका हृदय आच्छादित हो गया है ऐसे मन्दबुद्धि के सिवाय दूसरा कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि 'किसी के दुःख को दूर करने मे बहुत पाप लगता है' इस प्रकार करने वाला स्वयं अ ान रूपी अन्धकार मे पड़ा हुआ है और दूसरे भोले प्राणियों को भी अ ानान्धकार मे डालता है ॥४॥

दुः देई कोई दुः मि टावे,
तिण रो तो । लावे।

दुः दिया बिना दुःख मिटावे,
इण रो तो नाम मन्द छिपावे ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—'एक को दुःख देकर दूसरे के दुःख को दूर करना' इस बात को तो वे अज्ञानी मुख पर लाते है परन्तु 'किसी को दुः दिये बिना ही किसी के दुःख को मिटा देना' इस बात को वे छिपाते है अर्थात् इस बात का वे जिक्र तक नहीं करते ॥५॥

धुथी दूजा ने साता जो देवे,
पाप लगे अज्ञानी केवे।
ारिभोग दृष्टान्त देई ने,
दुर्गुणी केई मिथ्या मत सेवे ॥ ० ६ ॥

भावार्थ :—वे अज्ञानी कहते है कि साधु के सिवाय किसी को साता उपजाने मे पाप होता है। इसके लिए वे ीभोग का दृष्टान्त देकर अपने मिथ्या मत का पोषण करते है अर्थात् वे ऐसा ोटा दृष्टान्त देते हैं कि—'यदि दूसरे प्राणियों के दुःख को दूर करने मे पुण्य होता है तो एक मनुष्य स्त्रीभोग के बिना दुःखी हो रहा है उसको ीभोग देकर उस दुःख को दूर करने मे भी पुण्य होना चाहिए' इस प्रकार अयुक्त दृष्टान्त देते हैं। इसका उत्तर निम्न प्रकार है :—

ारीभोगे पंचेन्द्रिय हिंसा,
मोह उदीरणा दोनों रे होवे।
ो द ान्त दया (कम्पा) रे जोड़े,
जो देवे वो भव-भव रोवे ॥ अनु० ॥

भावार्थ :— नी पुरुष कहते हैं कि 'नारीभोग' में पंचेन्द्रिय प्राणियों की हिंसा होती है तथा ी और पुरुष दोनों के मोह कर्म का उदय होता है। इसलिए 'नारीभोग' के दृष्टान्त की दया के साथ मे तुलना नहीं हो सकती। जो लोग अनुकम्पा को उठाने के लिए ऐसे खोटे दृष्टान्त देते हैं वे अनन्तकाल तक संसार मे गोते खाते रहते है ॥७॥

रोग छुड़ावण तिरिया सेवण,
दोनों ने कोई सरी केवे।
त्याँ दुर्गुण रो भेद जाण्यो,
खोटा हेतु कुपन्थी देवे ॥ अनु० ८ ॥

भावार्थ :—जो कुपन्थी कुहेतु देकर नारीभोग को और किसी को रोगमुक्त करने को समान बतलाते हैं उन्होने दुर्गुण के भेद को ही नहीं समझा है ॥८॥

रो तो वेदनी उदय में,
नारीभोग मोह में जाणो।
रोग मिटा ाँ दुः मिट जावे,
ारीभोग मोह ँध ा रो ठाणो ॥ अनु० ९ ॥

भावार्थ :—वेदनीय कर्म के उदय से रोग पैदा होता है और मोहनीय कर्म के उदय से भोग की इच्छा पैदा होती है। किसी का रोग मिटाने से तो उस प्राणी का दुः मिट जाता है किन्तु नारीभोग से दुः मिटता नहीं, प्रत्युत दुः बढ़ता है क्योंकि नारीभोग से मोहकर्म का बन्ध होता है और मोहबन्ध दुःखों का

कारण है। इस प्रकार नारीभोग से दुःखों की परम्परा बढ़ती है किन्तु दुःख घटते नहीं। इसलिए रोग मिटाने में पाप बतलाने के लिए नारीभोग का दृष्टान्त देना महामूर्खों का काम है ॥६॥

रोग मिटावा में पाप घणेरो,
नारीभोग समान बतावे।
माता रो भोग अरु रोग मिटावण,
तिण री श्रद्धा में सरीखो थावे ॥ अनु० १० ॥

भावार्थ :—जो अज्ञानी यह कहते हैं कि रोग को दूर करने में और नारीभोग करने में समान पाप होता है तो उनकी इस श्रद्धा-मान्यता के अनुसार तो अपनी माता के रोग को दूर करना और उसके साथ भोग करना समान ही होगा ॥१०॥

कोई माता बेन रो रोग मिटावे,
कोई तिण थी भोग कुकर्मी चावे।
दोनों पाप कर्म रा कर्त्ता,
तुल्य कहे ते धर्म लजावे ॥ अनु० ११ ॥

भावार्थ :—कोई अपनी माता और बहिन के रोग को दूर करे और कुकर्मी नीच उनसे भोग की इच्छा करे इन दोनों को जो समान पापकर्त्ता कहता है वह अपने धर्म को लजाता है और अपने आपको भी उसी की श्रेणी में ले जाता है ॥११॥

लब्धिधारी री लब्धि प्रभावे,
रोग मिटे सूतर में बतायो।

(पिण) लब्धिधारी नि रे प्रतापे,
पाप बँधे यो कठेहि यो ॥ अनु० १२॥

भावार्थ :—शास्त्र मे भगवान् ने फरमाया है कि लब्धिधारी मुनि की लब्धि के प्रभाव से रोगी का रोग दूर हो जाता है परन्तु यह कहीं पर नहीं बतलाया गया है कि लब्धिधारी मुनि को उस लब्धि के कारण पाप का बन्ध होता है ॥१२॥

दुःख छूटे मुि रे परतापे,
या तो बात सभी जग जाणे।
परस्त्री पाप मुनि परतापे,
ऐसी तो कोई मूरख माने ॥ नु० १३॥

भावार्थ :—लब्धिधारी मुनि के प्रताप से रोग मिटता है, दुः दूर होता है यह तो सभी जानते है किन्तु लब्धिधारी मुनि के प्रताप से परस्त्री का पाप होता है ऐसा तो कोई मूर्ख ही मानता है ॥१३॥

दुः मिट्यो दुर्गुण में थे केवो,
तो साधु परतापे दुर्गु मा ो।
साधु थी दुर्गुण बधतो न समझो,
ो रोग मिट्यो दुर्गुण में न जानो ॥ नु० १४॥

भावार्थ :—जो लोग दुःख मिटाने को दुर्गुण कहते हैं अर्थात् पाप मानते है उनकी मान्यतानुसार लब्धिधारी मुनि के प्रताप से दूर होने वाले दुः को भी उन्हे दुर्गुण—पाप मानना चाहिए

परन्तु वे ऐसा नहीं मानते। जिस प्रकार लब्धिधारी मुनि के प्रताप से दुःख दूर होने मे वे पाप नही मानते उसी प्रकार किसी ने प्रासुक औषधि द्वारा किसी के रोग को मिटा दिया तो इसमे भी उन्हें पाप न समझना चाहिए ॥१४॥

जिण जिण देश तीर्थङ्कर जावे,
सौ-सौ कोसाँ रो दुःख मिट जावे।
धान (रो) उपद्रव मूल न होवे,
'ईति' मिटण अतिशय यो थावे ॥ अनु० १५ ॥

भावार्थ ;—समवायॉग सूत्र के चौतीसवे समवाय मे तीर्थङ्कर भगवान् के चौतीस अतिशयो का वर्णन आया है। वहाँ बतलाया गया है कि जिस-जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विचरते है वहाँ उनके अतिशय से सौ-सौ कोस तक दु.ख नही रहता। अर्थात् ईति, भीति आदि कोई उपद्रव नही होता। टीड्डी, चूहे आदि से धान की फसल एवं धान का नष्ट होना 'ईति' कहलाता है। तीर्थङ्कर भगवान् के सत्ताईसवे अतिशय के प्रभाव से सौ-सौ कोस तक यह उपद्रव नही होता ॥१५॥

मिरगी रे रो बहु मरता,
जिनजी गया मिरगी हीं रेवे।
लाखों मनुष्य मरण थी बचिया,
मिथ्याती इण ने दुर्गुण केवे ॥ अनु० १६ ॥

भावार्थ :—जहाँ मिरगी (प्लेग) के कारण बहुत से मनुष्य मरते हो वहाँ तीर्थङ्कर भगवान् के पधारने पर मिरगी नही रहती।

मिरगी मिटकर सर्वत्र शान्ति हो जाती है और ा ों मनुष्यों
प्राण बच जाते हैं। इसको दुर्गुण—पाप मिथ्यात्वी पुरुष ही
बतला सकता है ॥१६॥

देश री सेन्या देश ने मारे,
स्वचक्री नृप रो भय थावे।
ए गुण ीस तिशय प्रभावे,
ीति (भय) मिटे ान्ति पावे ॥ ु० १७॥

भावार्थ :—देश की सेना अपने ही देश पर चढ़ आती है वह
स्वचक्री राजा का भय कहलाता है। वहाँ तीर्थङ्कर भगवान् के
पधारने पर वह भय मिटकर शान्ति हो जाती है। यह तीर्थङ्कर
भगवान् के उनतीसवे अतिशय का प्रभाव है॥१७॥

पर रा ा री सेना ाई,
देश लूटे वो दुः ि देवे।
प्रभु प्रतापे भय मिट जावे,
ीस तिशय सूतर केवे ॥ अनु० १८॥

भावार्थ :—एक देश के राजा की सेना दूसरे देश पर चढ़ाई
करके आती है और उस देश की प्रजा को लूटती है और अनेक
प्रकार से कष्ट देती है। यह परचक्री भय कहलाता है। वहाँ तीर्थ-
ङ्कर भगवान् के पधारने पर यह भय ि कर प्रजा मे शान्ति
हो जाती है। यह तीर्थ र भगवान् के तीसवे अतिशय का
प्रभाव है ॥१८॥

अतिवर्षा बहु जन दुःख पावे,
नदी री बाढे जन घबराये।
जिण देशे श्री जिनजी विराजे,
तिण देशे अतिवृष्टि न थावे ॥ अनु० १६॥

भावार्थ :—अति वृष्टि अर्थात् अधिक वर्षा होने से नदियों मे बाढे आ जाती है, जिससे लोग घबराते है और अनेक प्रकार का कष्ट पाते है किन्तु जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विराजते हैं उस देश मे 'अति वृष्टि' नही होती ॥१६॥

बिन वृष्टि दुःख जग में मोटो,
दुष्काले होवे धर्म रो टोटो।
अतिशय द्वातिश में प्रभु केरे,
सुभिक्षे शान्ति सु मोटो ॥ अनु० २०॥

भावार्थ :—वर्षा न होने से संसार मे बड़ा दुःख होता है, दुष्काल पड़ जाता है। दुष्काल मे धर्म की भी हानि होती है किन्तु जिस देश मे तीर्थङ्कर भगवान् विराजते है वहाँ यह 'अनावृष्टि' रूप उपद्रव नही होता प्रत्युत सुभिक्ष होता है जिससे प्रजा मे शान्ति छाई रहती है। यह तीर्थङ्कर भगवान् के बत्तीसवे अतिशय का प्रभाव है ॥२०॥

अनरथसूचक रक्त री वृष्टि,
बहु उत्पात हुआ जिण देशे।
चिन्तातुर दुखिया अति भारी,
कहो हिवे शान्ति होवे कैसे ॥ अनु० २१॥

तिण ले श्री जिनजी धारया,
वि रत तित देशों रा टलिया।
गुण जिनजी रे जोगे,
य जय बोले न सहु मिलिया ॥ ० २२॥

भावार्थ :—जिस देश में अनर्थसूचक रक्त की वृष्टि होती है जिससे मनुष्य चिन्तातुर होकर बहुत दुः ी होते है उस य उस देश मे तीर्थंकर भगवान् के पधारने पर सब विघ्न तुरन्त दूर हो जाते हैं। तीर्थंकर भगवान् के प्रताप से यह प्रत्यक्ष गुण होता है। विघ्नों के शान्त हो जाने से प्रसन्न होकर सब लोग तीर्थंकर भगवान् की जय बोलते हैं ॥२१-२२॥

ँ, स्वाँस, ज्वर, कोढ़, भगन्दर,
विवि व्याधि जिण देश में ई।
प्रभु पग धरताँ व्याधि रेवे,
तत्क ान्ति देश में छाई ॥ अनु० २३॥

भावार्थ :—जिस देश मे खाँसी, श्वास, ज्वर, कोढ़, भगन्दर आदि अनेक व्याधियों का प्रकोप हो रहा है। उस देश मे तीर्थंकर भगवान् के पधारने पर सब व्याधियाँ दूर होकर तत्क्षण सारे देश मे शान्ति छा जाती है ॥२३॥

वायाँग चौतीस में दे ो,
यो वृत्तान्त तो पाठ में गायो।
सौ सौ कोसाँ उपद्रव टलतो,
केवलज्ञानी आप ायो ॥ अनु० २४॥

भावार्थ :—समवायाँग सूत्र के चौतीसवें समवाय में केवल-ज्ञानी भगवान् ने उपरोक्त सारा वृत्तान्त बतलाया है। तीर्थंकर भगवान् जहाँ विराजते हैं वहाँ सौ-सौ कोसो मे किसी प्रकार का उपद्रव नही होता ॥२४॥

टाँ यो उपद्रव दुर्गुण जाणो,
तो प्रभुजी रा जोग सूँ दुर्गुण मानो।
प्रभु जोगे दुर्गुण नहीं होवे,
तो मिट्यो उपद्रव गुण में बखानो ॥ अनु० २५ ॥

भावार्थ :—जो लोग उपद्रव टल कर जीवों मे शान्ति होने को दुर्गुण कहते हैं। उनकी मान्यतानुसार तीर्थंकर भगवान् के प्रताप से जो उपद्रव मिट जाते हैं उन्हे दुर्गुण मे मानना चाहिये। यदि वे ऐसा कहे कि तीर्थंकर भगवान् के योग से दुर्गुण नही होते तो फिर उपद्रव मिटने को उन्हे गुण मानना चाहिये ॥२५॥

आरत द्र जीवों रा टले अरु,
प्रभु पर शुद्ध भाव ज आवे।
परतख लाभ यो दुः मिट्याँ ँ,
तिशय गणधर फरमावे ॥ अनु० २६ ॥

भावार्थ :—उपद्रव मिटने से जीवो के आर्त्तध्यान और रौद्र-ध्यान दूर हो जाते हैं और प्रभु पर शुद्ध भाव उत्पन्न होते है। दुःख मिटने का यह प्रत्यक्ष लाभ है। यह तीर्थङ्कर भगवान् का अतिशय है ऐसा गणधर फरमाते है ॥२६॥

'रायपसेणी' सूतर में देखो,
चित्त केशी निजी ने बोले ।
परदेशी ने धर्म सुणायाँ,
किण ने गुण होसी विवरो खोले ॥ अनु० २७ ॥

दोपद चौपद जीवों ने बहु गुण,
समण माहण भिखारी रे जाणो ।
देश ने प्रभुजी बहुगुण होसी,
तिण र प्रभु धर्म बखाणो ॥ अनु० २८ ॥

भावार्थ :—रायप्रश्नीय सूत्र मे श्रावक चित्त सारथि केशी स्वामी से अर्ज करता है कि 'हे भगवन् ! आप राजा परदेशी को धर्म सुनाओ । राजा परदेशी को धर्म सुनाने से किन-किन को गुण होगा जिसका विवरण मैं अर्ज करता हूँ । द्विपद, चतुष्पद जीवो को बहुत लाभ होगा उसी प्रकार श्रमण ब्राह्मण भि री यावत् सारे देश को बहुत लाभ होगा अर्थात् राजा द्वारा जो अन्याय किया जा रहा है उससे सारा देश सन्तप्त हो रहा है । राजा को धर्म सुनाने से सारे देश का सन्ताप दूर होकर शान्ति छा जायगी। अतः हे भगवन् ! आप राज परदेशी को धर्म सुनाओ ॥२७–२८॥

जीव देश अरु मण भिखारी,
राजा थी याँरो दुःख मिट जा ी ।
मिटसी गुण में ाख्यो,
जाण्यो िव घणा ी ॥ ० २९ ॥

भावार्थ :—'राजा की तरफ से जीवों को, श्रमण, माहण, भिखारी को यावत् सारे देश को जो दुःख दिया जा रहा है वह दूर हो जायगा, सब जीव सुखी हो जाएँगे और उनका आर्त्त-रौद्र ध्यान मिट जायगा' इस प्रकार बहुत लाभ देख कर केशीस्वामी वहाँ पधारे और राजा परदेशी को धर्म सुनाया ॥२६॥

तिम रोग आरत मिटियो तिण गुण में,
भवि जीवाँ ! शङ्का मत आणो ।
विन स्वारथ थी वैद्य मिटावे,
तो तिण ने गुण निश्चय जाणो ॥ अनु० ३० ॥

भावार्थ :—इसी तरह रोगी का रोग मिट जाने से उसका आर्त्तध्यान मिट जाता है यह गुण होता है। इसमें हे भव्यजीवो ! शङ्का मत करो। जो वैद्य बिना स्वार्थ किसी को रोगमुक्त करता है उसको निश्चय ही गुण होता है ॥३०॥

वैद्य स्वारथबुद्धि आरम्भ ने,
गुण रो नि जन नाय बखाणे ।
पर उपकारी दुः मिटावे,
तिण में एकान्त पाप न जाणे ॥ अनु० ३१ ॥

भावार्थ :—जो वैद्य स्वार्थबुद्धि से या आरम्भादि करके किसी को रोगमुक्त करता है तो उसकी स्वार्थबुद्धि और आरम्भ को साधु गुण नहीं बताते है किन्तु पर-उपकार की बुद्धि से जो वह रोग मिटाता है उसको एकान्त पाप नहीं बतलाते है ॥३१॥

आरम्भ कोई (नि) न्दन जावे,
थवा स्वारथ बुद्धि णे।
आरम्भ स्वारथ गुण में नाँही,
वन्दन भाव तो गुण में जाणे ॥ नु० ३२॥

द्ध भाव और बिन आरम्भ थी,
मुनि वन्द्या अधिको फल पावे।
तिम कोई रोगी रो रोग मिटावे,
वैद्यादिक गुण रो फल पावे ॥
अनुकम्पा साव मत जाणो ॥ ३३ ॥

भावार्थ :—जैसे कोई पुरुष आरम्भ करके अथवा स्वार्थ-बुद्धि से मुनिवन्दन के लिए जावे तो उसका आरम्भ और स्वार्थ-बुद्धि गुण मे नहीं है किन्तु उसका वन्दनभाव तो गुण मे है और जो पुरुष बिना आरम्भ और शुद्ध भाव से मुनिवन्दन को जाता है उसको उससे भी अधिक फल होता है। इसी प्रकार कोई वैद्य स्वार्थबुद्धि से अथवा आरम्भ करके रोगी का रोग दूर कर उसका आर्त्तध्यान मिटाता है तो उसकी स्वार्थबुद्धि और आरम्भ तो गुण में नही है किन रोगी का रोग दूर कर आर्त्तध्यान मिटाना गुण मे है और जो वैद्य बिना स्वार्थ केवल परोपकार बुद्धि से प्रासुक औषधि द्वारा किसी का रोग मिटाता है उसको उससे भी अधिक फल होता है ॥३३॥

१४—अधिकार साधु की लब्धि से साधु की प्राणरक्षा का

लब्धिधारी रा खेलादिक सूँ,
सोले रोग शरीर सूँ जावे।
साधु ने रोग सूँ मरता बचावे,
*ज्याँ पुरुषाँ ने भी पाप बतावे॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो॥ १॥

भावार्थ :—लब्धिधारी मुनि के खेलादिक से अर्थात् थूक, खंखार आदि का रोगी के शरीर के साथ स्पर्श हो जाने पर श्वास, खाँसी आदि सोलह ही रोग दूर हो जाते हैं किन्तु कितनेक अज्ञानी कहते हैं कि "यदि इन रोगों से कोई साधु मर रहा हो तो उसे नहीं बचाना चाहिए। यदि लब्धिधारी मुनि के खेलादिक के स्पर्श से रोगी साधु की प्राणरक्षा हो जाय तो इससे लब्धिधारी नि को पाप लगता है" ॥१॥

---

* जैसा कि वे कहते है :—

ब्धिधारी रा खेलादिक सूँ,
सोलह ही रोग शरीर सूँ जावे।
वले जाणे इण रोगाँ सूँ साधु मरसी,
अ कम्पा आणी नहीं रोग गँवावे॥
। अनुकम्पा सावज जाणो॥

(अनु० ढाल १ गाथा २५)

ठारह पाप प्रभुजी भाख्या,
अनुकम्पा पाप कठेहि ाल्यो।
धेटा धर्म ने ने,
तो पिण घोचो कुगुराँ घाल्यो ॥ अनु० २॥

भावार्थ:—भगवान् ने ठारह पाप फरमाये हैं उनमें ' -कम्पा' नाम का कोई पाप नहीं बताया गया है फिर भी कितनेक धृष्ट अज्ञानी 'अनुकम्पा' को पाप ा कर सच्चे धर्म को -कित करते हैं। उन धृष्ट लोगों को जरा भी शर्म नहीं ाती ॥२॥

लब्धिधारी रा खेल रे फरसे,
साधु रा रोग मिट्याँ पापो।
धु बचिया रो बतावो,
तो पीणा में क्यों थापो ॥ अनु० ३॥

भावार्थ:—उन लोगों पूछना चाहिए कि लब्धिधारी मुनि के खेलादिक का स्पर्श होने से यदि साधु का रोग मि कर उ की प्राणरक्षा हो गई तो इसमें कौनसा पाप हुआ? यदि साधु की प्राणरक्षा को भी पाप बताते हो तो फिर तुम (साधु) लोग अपने खाने पीने को धर्म कैसे बताते हो? म्हारी इस मान्यतानुसार तो तुम साधु लोगों ाना-पीना भी पाप (अधर्म) ठहरेगा ॥३॥

लब्धिधारी रा शरीर रे फरसे,
रोग मरतो साधु च्चियो।
लब्धि ारी ने पाप ,
खोटो रचियो ॥ अनु० ॥

भावार्थ :—लब्धिधारी मुनि के शरीर के स्पर्श से रोगी साधु का रोग दूर होकर वह मरने से बच जाता है जिससे लब्धिधारी मुनि को पाप होता है ऐसा कहने वाले अज्ञानी लोगो ने संसार मे पाखण्ड फैला रक्खा है ॥४॥

गुरु रा चरण शिष्य नित फरसे,
 वश्यक अध्ययन तीजा देखो।
देह फरसियाँ धर्म बतायो,
 आनन्द चरण फरसियाँ रो लेखो ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—आवश्यक सूत्र के तीसरे अध्ययन मे बताया गया है कि शिष्य हमेशा "संफासं खमणिज्जो भे" ऐसा कह कर गुरु का चरण स्पर्श करता है और चरण स्पर्श करने को धर्म बताया गया है। शास्त्रो मे आनन्द आदि के उदाहरण दिये गये है ॥५॥

लब्धिधारी री या फरसे,
 धर्म तो प्रभुजी प्रगट बतायो।
फरसण वाला ने धर्म हुवो तो,
 लब्धिधारी ने पाप क्यों आयो ॥ अनु० ६ ॥

भावार्थ :—लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श करने से धर्म होता है यह भगवान् ने स्पष्ट बताया है। जब चरणस्पर्श करने वाले को धर्म होता है तो फिर जिसके चरणस्पर्श किये गये हैं उस लब्धिधारी मुनि को पाप कैसे हो सकता है ? ॥६॥

उत्तराध्ययन ग्यारवें माँही,
रोगी ने शिक्षा अजो बतायो।
लब्धिधारी रा चरण फर ने,
रो मि ँ शिक्षा गुण पायो ॥ अनु० ७ ॥

भावार्थ :—उत्तराध्ययन सूत्र के ग्यारहवे अध्ययन की तीसरी गाथा मे बतलाया गया है कि अभिमानी, क्रोधी, प्रमादी, रोगी और आलसी यह पॉच पुरुष शिक्षा के अयोग्य होते हैं। इसमे रोगी भी शिक्षा के अयोग्य बताया गया है। रोगी साधु लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श करके रोगमुक्त होकर शिक्षा के योग्य बन जाता है और शिक्षागुण को प्राप्त करता है। लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श का यह प्रत्यक्ष गुण है ॥७॥

रोग मिट्याँ गुण चरणफरस गुण,
किणविध अवगुण गुरु ब ावे।
गुण में अवगुण री थाप री ने,
मिथ्याती पो में ढोल बजावे ॥
अनु म्या सावज मत जाणो ॥ ८ ॥

भावार्थ :—लब्धिधारी मुनि के चरणस्पर्श करने वाले रोगी मुनि को रोग मिटने रूप गुण और चरणस्पर्श रूप गुण इस प्रकार दो गुणो की प्राप्ति होती है। इस प्रकार गुणप्राप्ति मे भी अवगुण की स्थापना करके मिथ्यात्वी लोग पोल मे ढोल बजाते है और शा विरुद्ध थोथी और निर्मूल बात की कल्पना करके अपने अमूल्य जीवन को व्यर्थ बर्बाद करते हैं ॥८॥

१५–अधिकार मार्ग भूले को साधु किस कारण रास्ता नहीं बतावे
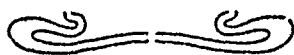
अटवी रे माँही गृहस्थी भूल्यो,
साधु ने मारग पूछण लागे।
किण कारण नि नाय बतावे,
र्थ भाष्य में देखो सागे॥
अनुकम्पा सावज मत जाणो॥ १॥

भावार्थ :—किसी जङ्गल मे कोई गृहस्थ रास्ता भूल गया। संयोगवश उधर से जाते हुए मुनि को वह रास्ता पूछता है किन्तु किन कारणों से मुनि उसको रास्ता नही बताते है इसका खुलासा निशीथ सूत्र के भाष्य मे किया गया है। वह इस प्रकार है :—

मुनि रे बताये मार्ग जाताँ,
चोर कदाचित् उण ने लूटे।
सिंहादि श्वापद दुः देवे,
तिण उपसर्ग थी प्राण भी छूटे॥ अनु० २॥

वा, तिण रस्ते गृहस्थी जाताँ,
मृग ादिक जीवों ने मारे।
तिण ारण दयावन्त मुनीश्वर,
मार्ग बतावा रो परिचय टारे॥ अनु० ३॥

भावार्थ :—मुनि के बताये हुए मार्ग से जाते ए उस गृहस्थ को शायद कोई चोर लूट ले, सिंह, चीते आदि जंगली जानवर उसे तकलीफ देवे या उसे मार भी दे अथवा मुनि के बताये हुए रास्ते से जाता हुआ वह गृहस्थ स्वयं मृगादि जीवों को मारे। इत्यादि अनर्थ की सम्भावना से दयावान् मुनि गृहस्थ को रास्ता नहीं बताते हैं ॥२-३॥

इसड़ा सूत्र रा र र्थ ने,
अ ानी तो उलटा मोड़े।
क र मार्ग बतायाँ,
चार मा *चारित्तर तोड़े ॥ नु० ४ ॥

भावार्थ :—इस प्रकार सूत्र का सीधा और सरल अर्थ है किन्तु अज्ञानी इसका उल्टा अर्थ करके कहते है कि 'यदि साधु अनुकम्पा करके गृहस्थ को मार्ग बता दे तो उसे चौमासी प्राय-ि त्त आता है अर्थात् उसका चार महीने का संयम चला जाता है ॥४॥

---

* जैसा कि वे कहते हैं :—

गृहस्थ भूलो ऊजड़ वन मे,
अटवी ने वले ऊजड़ जावे।
अनुकम्पा आणी साधु मार्ग बतावे,
तो चार महीनाँ रो चारित्र जावे ॥
आ अनुकम्पा सावज जाणो ॥

(अनु० १ । २७)

भाष्य चूरणी अरु मूल में दे तो,
अनुकम्पा रो नाम ही नाँही।
तो पिण अनुकम्पा रा द्वेषी रे,
झूठ बोलण री लाज न काँही ॥ अनु० ५ ॥

भावार्थ :—मार्ग बताने सम्बन्धी अधिकार जहाँ आया है वहाँ निशीथ सूत्र के मूलपाठ मे तथा उस पाठ के भाष्य और चूर्णी मे कही पर भी 'अनुकम्पा' शब्द का नाम तक नहीं आया है फिर भी अनुकम्पा के द्वेपी उन लोगो ने यहाँ झूठमूठ ही अपनी तरफ से 'अनुकम्पा' शब्द लगा दिया है। इस प्रकार झूठ बोलते हुए उन्हे जरा भी शर्म नही आती ॥५॥

हित री नि सर्व जीवाँ रा,
अनुकम्पा रो प्राछित नाँही।
सदृष्टि तो सूतर माने,
कुगुरु री बात देवे छिटकाई ॥
अनुकम्पा वज मत जाणो ॥ ६ ॥

भावार्थ :—मुनिराज तो समस्त जीवो के हितकारी होते हैं। जीवो पर अनुकम्पा करने का उनको प्रायश्चित्त नही आता। इस प्रकार सम्यग्दृष्टि पुरुष तो सूत्र की बात को मान कर उन कुगुरुओ की बात को छोड़ देता है ॥६॥

॥ इति प्रथम ढाल समा ॥

❀ दोहा ❀

समकित रो लच्छ कह्यो, अनुकम्पा भु आ ।
पापबन्ध ति थी कहे, खोटी थापे थाप ॥१॥

ावार्थ :—भगवान ने अनुकम्पा को समकित का लक्षण बताया है। जो लोग अनुकम्पा से पापबन्ध होना कहते हैं वे ोटी स्थापना करते है ॥१॥

अनुकम्पा धु करे, गृहस्थ करे मन लाय ।
सुकृत लाभ सहु ने हुवे, तिण में शङ्का नाय ॥२॥

भावार्थ :—साधु या श्रावक कोई भी हृदय से अनुकम्पा करता है उन सबको पुण्य का फल होता है। इसमे किसी प्रकार की शङ्का नहीं है ॥२॥

अनुकम्पा अभयदान ने, सर्वश्रेष्ठ ो दा ।
'सूयगडांग' में देख लो, तज दो खींच ाण ॥३॥

भावार्थ :—सूयगडॉग सूत्र मे अनुकम्पा रूप भयदान को दान बतलाया है। यथा :—

'दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं'

र्थात्—सब दानो में अभयदान श्रेष्ठ है। हृदय में अनुकम्पा होने से ही अभयदान दिया ा ा है, नुकम्पा के वि

नहीं दिया जा सकता है। याचकमुख्य श्री उमास्वाति ने अनुकम्पा दान का लक्षण इस प्रकार बतलाया है :—

कृपणेऽनाथ दरिद्रे, व्यसनप्राप्ते च रोगशोकहते।
यद्दीयते कृपार्थात् अनुकम्पा तद्भवेदानम् ॥

अर्थात्—कृपण (दीन), अनाथ, दरिद्र, दुःखी, रोगी, शोकग्रस्त आदि प्राणियो पर अनुकम्पा करके जो दान दिया जाता है वह अनुकम्पा दान है।

जो लोग 'अनुकम्पा' को सावद्य बताते है उन्हे अपनी यह झूठी खींचातान छोड़ देनी चाहिए ॥३॥

साधु वन्दे साधु ने, गृहस्थ वन्दे चित्त लाय।
उच्चगोत्र रो फल लहे, नीचो गोत्र खपाय ॥४॥

भावार्थ :—शुद्ध हृदयपूर्वक साधु को वन्दन नमस्कार करने वाला साधु अथवा श्रावक नीचगोत्र का क्षय करके उच्च गोत्र का बन्ध करता है। यह बात उत्तराध्ययन सूत्र के उनतीसवे अध्ययन मे बतलाई गई है ॥४॥

गाड़ी घोड़ा साज सूँ, गेही वन्दन जाय।
साधु तिम जावे नहीं, पण्डित समझो न्याय ॥५॥

अनुकम्पा वन्दन जिसी, दोनों ने सुखदाय।
र न्यारा जाणजो, धु गृहस्थ रे माँय ॥६॥

भावार्थ :—वन्दना का फल साधु और श्रावक दोनों के लिए समान बताया गया है किन्तु पण्डित पुरुष इस वात को अच्छी तरह जानते है कि श्रावक तो रेलगाड़ी, घोड़ागाड़ी आदि साधनों से साधु को वन्दन करने के लिए जा सकता है किन्तु साधु इस तरह से नही जा सकता। इसी प्रकार वन्दना के समान अनुकम्पा भी साधु और श्रावक दोनो के लिये शुभ फल-दायक है किन्तु वन्दना के साधनो के समान अनुकम्पा के साधन भी साधु और श्रावक के भिन्न-भिन्न हैं ॥५-६॥

ज रण सेव ने, गेही वन्दन जाय।
धु वन्दन कारणे, कल्प बिगाड़े नाय ॥७॥

तिम अनुकम्पा रणे, कल्प तोड़े ध।
णे अनुकम्‍ भली, वन्दन स र्रा ॥८॥

भावार्थ :—जिस प्रकार श्रावक गाड़ी, घोड़ा आदि सावद्य साधनो के द्वारा वन्दन के लिए जा सकता है उस प्रकार सावद्य साधनों के द्वारा साधु नही जा सकता। वह तो अपने कल्प की मर्यादा के अनुसार ही वन्दन को जाता है किन्तु वन्दन के लिए अपने कल्प को नहीं तोड़ता। इसी प्रकार अनुकम्पा के लिए भी अपने कल्प को नहीं तोड़ता। वन्दन के समान अनुकम्पा को वह अच्छी जानता है और अपने कल्प की मर्यादा के अनुसार अनु-कम्पा भी करता है ॥७-८॥

अनुकम्पा कारण कोई, वज रे जो म।
रण नहीं, पा रवद म ॥९॥

भावार्थ :—यदि कोई अनुकम्पा करने के लिए सावद्य साधनो का उपयोग करे तो वे साधन अनुकम्पा नहीं कहलाते किन्तु साधन भिन्न चीज है और अनुकम्पा उनसे भिन्न चीज है। हृदय के शुद्ध परिणामो का नाम अनुकम्पा है। वे परिणाम निरवद्य होते है, सावद्य नहीं। इसलिए अनुकम्पा भी निरवद्य ही होती है, सावद्य नही ॥९॥

सावज कारण सेवताँ, वन्दन सावज नाय।
अनुकम्पा तिम जाणज्यो, निरमल ध्यान लगाय ॥१०॥

भावार्थ :—जिस प्रकार श्रावक गाड़ी, घोड़ा आदि सावद्य साधनो से वन्दन के लिए जाता है किन्तु उन साधनों के सावद्य होने पर भी वन्दन सावद्य नहीं होता क्योकि साधन भिन्न है और वन्दन उनसे भिन्न है। इसी प्रकार अनुकम्पा के लिए भी समझना चाहिए। साधनो के सावद्य होने पर भी अनुकम्पा सावद्य नही होती क्योकि साधन भिन्न है और अनुकम्पा उनसे भिन्न है। अतः वन्दन के समान अनुकम्पा को निरवद्य ही समझना चाहिए ॥१०॥

भाषा सुमति थी रे, वन्दन नो उपदेश।
तिम अनुकम्पा नो रे, नि रे राग न द्वेष ॥११॥

भावार्थ :—मुनि भाषासमतिपूर्वक वन्दन का उपदेश देते हैं उसी प्रकार अनुकम्पा का भी वे उपदेश देते हैं। मुनि को तो न किसी पर राग है और न किसी पर द्वेष ॥११॥

गेही पिण समझू हुवे, विवे मन में लाय।
वन्दन अनु म्पा रे, वैसो ही फल य॥१२॥

भावार्थ :—श्रावक भी समझदार होता है वह विवेकपूर्वक वन्दन और अनुकम्पा करता है और उसको उसी के अनुसार फल मिलता है ॥१२॥

कुगुरु कूड़ी खेंच सूँ, नुकम्पा उत्थाप।
वन्द रा तो लोलुपी, जोर सूँ माँडे थ ॥१३॥

भावार्थ :—वन्दन और अनुकम्पा दोनो शुभ फलदायक हैं किन्तु अनुकम्पा के द्वेषी पन्थियो के कुगुरु अनुकम्पा को संसार से उठा देने का प्रयत्न करते हैं और वन्दन के लोलुपी बन कर वन्दन का जोरदार उपदेश करते हैं और वन्दन करने के लिए जाने का श्रावको को आग्रहपूर्वक नियम तक करवाते हैं ॥१३॥

रण ारज भेद ते, गुरु खोले नाय।
ारण ने आगे करि, अनुकम्पा दीवी ाय ॥१४॥

भावार्थ :—अनुकम्पा का कार्य और उसके कारणो को वे अज्ञानी कुगुरु भिन्न-भिन्न नही बतलाते किन्तु केवल कारणो को सामने रखते हैं और इस तरह से उन्होने अपने अन्धभक्तों के हृदय से अनुकम्पा को निकाल दिया है जिससे उनको आज दुनिया निर्दयी तक कहती है ॥१४॥

वन्दन ारण गट में, बहुविध आरम्भ थाय।
कुगुरु देखे तोहि पिण, वन्दन वर्जे नाय ॥१५॥

भावार्थ :—वन्दन करने के लिए जाने मे उनके अन्धभक्त श्रावक अनेक प्रकार का आरम्भ करते है और वे साधुभेषधारी

कुगुरु इन सब आरम्भ को प्रत्यक्ष देख रहे हैं फिर भी चन्दन का वे निषेध नहीं करते ॥१५॥

रस्ता री सेवातणो, अतिशय लाभ बताय ।
गृहस्थी राखे साथ में, भोजन खाता जाय ॥१६॥

भावार्थ :—वे साधुभेषधारी कुगुरु श्रावकों को मार्ग की सेवा का बड़ा भारी लाभ बताकर उनको मार्ग में अपने साथ रखते है और उनके द्वारा उनके लिए बनाये हुए मिष्टान्नादि भोजनों को खाते हुए मौज उड़ाते है ॥१६॥

इणविध सेवा ना कही, सूतर में जिनराज ।
प्राछित पिण भाख्यो प्रभु, संजम राखण काज ॥१७॥

भावार्थ :—इस प्रकार मार्ग की सेवा का शास्त्र मे भगवान् ने कहीं भी विधान नहीं किया है प्रत्युत इस प्रकार श्रावकों को साथ रखकर आधाकर्म, मिश्र एवं उद्दिष्ट भोजन खाने वाले साधुओं को प्रायश्चित्त कहा है। यथा :—

जे भिक्खू अन्नउत्थिएणं वा गारत्थिएणं वा ।
गामाणुगामं दुइज्जइ दुइज्जंतं वा साइज्जइ ॥

(निशीथ सूत्र उद्देशा २)

अर्थात्—जो साधु अन्यतीर्थिक (संन्यासी आदि) और गृहस्थ (श्रावकादि) के साथ एक ग्राम से दूसरे ग्राम को जाता है तो उसे मासिक प्रायश्चित्त आता है। आचाराङ्ग सूत्र मे भी यही बात कही गई है ॥१७॥

गोटी सेवा थापने, लोपी जिनवर ार।
कम्पा उत्थापने, ूबा ाली धार ॥१८॥

भावार्थ :—इस प्रकार मार्ग की सेवा की ोटी स्थापना करके उन्होंने तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का उल्लंघन किया है और अनुकम्पा को उठाकर तो वे कालीधार डूब गये हैं अर्थात् ऐसे पाप के गहरे गड्ढे मे गिरे हैं जिससे निकलना अत्यन्त कठिन है। ऐसे पाप का फल नरकनिगोदादि मे भ्रमण करते रहने के सिवाय दूसरा कुछ नही हो सकता ॥१८॥

सावज रण साधु ने, रज्या सूतर माँय।
ल्प बतायो साध रो, रुणा सावज नाँय ॥१६॥

भावार्थ :—शा मे बतलाया गया है कि साधु को सावद्य साधनो का उपयोग नही करना चाहिए। यह साधु का कल्प है किन्तु अनुकम्पा करने का कही पर निषेध नही किया है। अनुकम्पा सावद्य नही है ॥१६॥

ाधु कल्प रा नाम सूँ, भोलाँ ने भड़काय।
कम्पा सावज हे, ोटा चोज लगाय ॥२०॥

भावार्थ :—साधु सावद्य साधनो का उपयोग नहीं करता, यह उसका कल्प है। इसको सामने करके वे गुरु भोले प्राणियो को भ्रम मे डालते है और कुहेतु, कुयुक्तियाँ एव ोटे न्त देकर अनुकम्पा को सावद्य कहते है। अनुकम्पा को सावद्य कह कर वे अपना दुर्लभ मनुष्यजन्म तो व्यर्थ गँवाते हैं किन्तु साथ में भोले प्राणियो के जन्म को भी बर्बाद करते हुए—

"दोनो डूबे बापड़ा, बैठ पत्थर की नाव"
वाली कहावत चरितार्थ करते हैं ॥२०॥

।धु ने वरजी नहीं, अनुकम्पा जिनराज।
निज निज कल्प सँभालने, करने सारे काज ॥२१॥

भावार्थ :—शास्त्रो मे साधु को अनुकम्पा करने का कही पर भी तीर्थंकर भगवान् ने निषेध नही किया है किन्तु अपने कल्प के अनुसार सभी कार्य करने के लिए तीर्थंकर भगवान् ने साधु को आज्ञा दी है॥२१॥

अनुकम्पा करणी साधने, भाखूँ सूतर साख।
भवि जीवाँ ! तुम साँभलो, वीर गया छै भाख ॥२२॥

भावार्थ :—हे भव्य जीवो ! श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने शास्त्रो मे साधु को अनुकम्पा करने का फरमाया है। शास्त्रानुसार उस अनुकम्पा का वर्णन किया जाता है सो तुम ध्यानपूर्वक सुनो ॥२२॥

: दूसरी ढाल :

—:*:—

१–अधिकार जीवों की दया के खातिर दयावान् मुनि द्वारा उन्हें बाँधने छोड़ने का
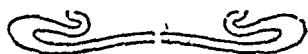
[तर्ज —हीवे साँभलज्यो, नरनार]

ङादिक रे फाँसे,
गाय भैंसादि बंध्या वि से।
ो छोडूँ रखे दुःख पासे,
टवी में दौड़ी ने से ॥१॥

रखे सिंहादि याने वे,
म्हारी अनुकम्पा उठ जावे।
अनुकम्‍ घणी घट माँही,
तेथी मुनिश्वर छोड़े नाँही ॥२॥

भावार्थ :—जो गाय, भैस आदि पशु डाभ, मूँज आदि के फाँसे से बन्धे हुए हैं उन्हे देखकर मुनि विचार करता है कि यदि मैं इन पशुओ को छोड़ दूंगा तो ये दौड़ कर कही जङ्गल मे न चले जाएँ और वहाँ सिहादि हिंसक प्राणी इन्हे मार कर न खा जाय। इन अनर्थों की सम्भावना से दयावान मुनि बन्धे हुए पशुओ को

छोड़ते नहीं है। वे अनुकम्पा के सागर है। इसलिए जहाँ अनुकम्पा का नाश हो वैसा कार्य वे नही करते ॥१-२॥

छोड्याँ अनुकम्पा उठ जावे,
मुनिजी ने प्राछित आवे।
इम बाँध्याँ सूँ तड़फे प्राणी,
रखे मर जावे इसड़ी जाणी ॥३॥

इण रण बांधे नांही,
नुकम्पा घणी घट मांही।
मरता जाणे तो बांधे ने गोले,
(जामें) दोष नांही र्थ यों बोले ॥४॥

भावार्थ :—बन्धे हुए पशुओ को छोड़ देने से उपरोक्त अनर्थों की सम्भावना रहती है। इसलिए बन्धे हुए पशुओ को छोड़ देने से मुनि की अनुकम्पा का विनाश होता है इसलिए मुनि को प्रायश्चित्त आता है।

इसी प्रकार पशुओ को बाँधने से वे तड़फड़ावे, दुः पावे और यहाँ तक कि आँटी खाकर मर भी जावे। इन कारणो से दयावान् मुनि उन्हे बाँधते नहीं है। उनके हृदय मे अनुकम्पा बहुत है। जहाँ बाँधे और छोड़े बिना उन पशुओ की रक्षा नहीं हो सकती हो वैसे अवसर अनुकम्पा करके यदि मुनि उन्हें बाँधे अथवा छोड़े तो इसमे कोई दोष नहीं है और मुनि को कोई प्रायश्चित्त नही आता ऐसा निशीथ सूत्र के भाष्य और चूर्णी मे स्पष्ट अर्थ किया गया है ॥३-४॥

धु रा मांही,
चिड़ियो उन्दर ड़ियो ाई।
भेषधारी पिण ाढणो केवे,
विन काढ्यां (ारी) दया हीं रेवे ॥५॥

अनुक थी छो ' पापो,
एहवी ोटी रो ि म थापो।
अनुकम्पा निरवद जाणो,
तिण रा धु रे हीं पच ाणो ॥६॥

भावार्थ :—साधुओ के जल के पातरे मे यदि कोई चिड़िया का बच्चा अथवा चूहा गिर पड़े तो वे तेरहपन्थी साधु भी उसको बाहर निकाल कर छोड़ देते है और कहते हैं कि यदि हम उसे न निकाले तो हमारी दया नहीं रहती।

जब वे स्वयं चिड़िया, चूहा आदि त्रस प्राणियो को जल के पातरे से निकाल कर छोड़ते हैं तब अनुकम्पा लाकर गाय आदि त्रस प्राणियों को छोड़ने मे वे पाप क्यो बताते हैं? उन्हे सरल बुद्धि से यह बात समझनी चाहिए कि अनुकम्पा निरवद्य है और मुनि को अनुकम्पा का त्याग नहीं होता ॥५-६॥

धु पातराँ सूँ जीव काढे,
ामें धर्म कहे चौड़े धाड़े।
गृहस्थी यदि जीव छुड़ावे,
प लागा रो हल्लो उड़ावे ॥७॥

भावार्थ :—साधु अपने जल के पातरे में से जीवों को निकाल कर छोड़ देते है और इसमे वे पन्थी साधु भी धर्म बताते है परन्तु गृहस्थ अनुकम्पा लाकर यदि गाय आदि त्रस प्राणियो को छोड़ देता है तो वे उसमे पाप बताते हैं यह उनका अज्ञान है ॥७॥

गृहस्थी रे मूँज रा फाँसा,
पशु बँध्या पावे त्रासा ।
जो उणने वो नहीं खोले,
पाप लागे सूतर यों बोले ॥८॥

भावार्थ :—गृहस्थ के डाभ, मूँज आदि के फाँसो मे बँधे हुए गाय, भैसादि पशु यदि त्रास पा रहे हो वैसी अवस्था मे यदि वह उन्हे न खोले तो उसे पाप लगता है। ऐसा शास्त्र मे बतलाया गया है ॥८॥

जो खोले तो पाप सूँ बचियो,
हुओ अनुकम्पा रो रसियो ।
भेषधारी उलटी सिखावे,
गृहस्थी रे छोड्याँ पाप बतावे ॥९॥

भावार्थ :—उपरोक्त डाभ मुँजादिक के फाँसों मे त्रास पाते हुए पशुओ को अनुकम्पा लाकर यदि गृहस्थ उन्हे खोल देता है तो वह पाप से बच जाता है और अनुकम्पा का शुभ फल प्राप्त करता है किन्तु तेरहपन्थी साधु इससे उल्टी शिक्षा देते है कि यदि गृहस्थ उन पशुओ को खोल देता है तो उसे पाप लगता है

क्योकि ये पशु असंयती हैं और असंयती की रक्षा करना पाप है ॥९॥

उत्तम नर कोई ाणी,
भेषधारयाँ ने बोल्यो वाणी।
" रे पातरिके रे माँही,
जीव तड़फ रयो दुः पाई ॥१०॥

तिण ने जीवतो ाढो के नाँहीं,
के मरवा देवो असंजती ताहीं।
कहे ीवतो काढाँ म्हें प्राणी,
नहीं काढ्याँ पाप लेवो जाणी ॥११॥

भावार्थ :—तब कोई चतुर पुरुष अनुकम्पा के उत्थापक उन साधुओ से पूछे कि आपके जल के पातरे मे कोई चिड़िया का ा या चूहा आकर गिर पड़ा और तड़फड़ाता हुआ दुःख पा रहा है। अब बतलाइये कि आप उसे जीवित बाहर निकालेंगे या वह असंयति है ऐसा जानकर आप उसे पातरे मे ही मरने देंगे ? तब तो वे चटपट उत्तर देते है कि हम उसे जीवित बाहर निकालेंगे। यदि जीवित बाहर न निकाले और पातरे मे मरने दें तो हमे पाप लगता है ॥१०-११॥

धु हीं काढे तो पापी,
या गो ठी तुमें पिण थापी।
(जो) जीव छोड्याँ में पाप नहीं लागे,
दया धर्म रो सागे ॥१२॥

तो गृहस्थी ने पाप म केवो,
छोड़ मिथ्यामत तुम देवो।
साधु उपधि सूँ जीव मर जावे,
तिण रो पाप साधु ने थावे ॥१३॥

गेही उपधि सूँ जीव मर जावे,
तिण रो पाप गृहस्थ पिण पावे।
धु छोड़े तो साधु ने धर्मो,
गेही ने किम कहो पापकर्मो ॥१४॥

भावार्थ :—तब वह चतुर पुरुष कहता है कि आपने यह ठीक बात कही कि यदि साधु अपने पातरे मे से उस प्राणी को जीवित निकाल कर न छोड़े तो उसे पाप लगता है। जब आप यह बात स्वीकार करते है कि दुःख पाते हुए जीव को छोड़ने से पाप नही लगता बल्कि यह तो धर्म का कार्य है तब फिर आप ऐसा क्यो कहते हैं कि दुःख पाते हुए गाय, भैसादि पशुओ को छोड़ने से गृहस्थ को पाप लगता है? अतः आपका यह कहना मिथ्या है इस मिथ्यामत को आप छोड़ दे।

तब वे भेषधारी साधु कहते है कि पातरे आदि साधु के पास रहते है। वे साधु की 'उपधि' या 'उपकरण' कहे जाते हैं इसलिए साधु की उपधि से यदि कोई जीव मर जाता है तो उसका पाप साधु को लगता है।

तब वह चतुर पुरुष उन साधुओ को कहता है कि डाभ, मूँज आदि के फाँसे गृहस्थ के पास रहते है इसलिए वे गृहस्थ की

'उपधि' या 'उप रण' हैं। जिस तरह साधु की उपधि से जीव मर जाने से साधु को पाप लगता है उसी प्रकार गृहस्थ की उपधि से जीव मर जाने से गृहस्थ को पाप लगता है। साधु की उपधि से मरते हुए जीव को छोड़ देने से साधु को धर्म होता है तो फिर गृहस्थ की उपधि से मरते हुए जीव को छोड़ने से गृहस्थ को पाप होना कैसे कहते हो?

उप रण दोनों रा सागे,
नहीं छोड्याँ पिण पा लागे।
साधु ने तो बतावे धर्म,
गृहस्थी ने कहे प ॥१५॥

भावार्थ :—यह इन लोगो का बड़ा विचित्र न्याय है कि साधु की उपधि से मरते हुए जीव को साधु छोड़ दे तो उसे धर्म होना कहते हैं और गृहस्थ की उपधि से मरते हुए जीव को गृहस्थ छोड़ दे तो उसे पाप होना कहते हैं ॥१५॥

अनुकम्पा एक बतावे,*
धु श्रावक री एक सिखावे।

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—

जो अनुकम्पा साधु करे, तो नवा न बन्धे कर्म।
तिण माँहिली श्रावक करे, तो तिण ने पिण होसी धर्म ॥२॥

साधु श्रावक दोनों तणी, एक अ कम्पा जाण।
अमृत सहु ने सार गों, तिणरी म करो ताण ॥३॥

(अनुकम्पा ढाल २ गाथा २—३)

अमृ री उपमा देवे,
दोनाँ सेव्याँ समफल केवे ॥१६॥

भावार्थ :—वे लोग अनुकम्पा को अमृत की उपमा देते हैं और कहते है कि जैसे अमृत सब के लिए एक सरीखा है और उसका सेवन करने वालो को समान लाभ होता है। उसी प्रकार साधु और श्रावक दोनो के लिए अनुकम्पा एक सरीखी है और उसका सेवन करने से दोनो को समान शुभ फल की प्राप्ति होती है ॥१६॥

जो बात खरी छै थारी,
तो यहाँ भेद करो क्यों भारी।
साधु ने धर्म बतावो,
गृहस्थी ने क्यों पाप लगावो ॥१७॥

भावार्थ :—चतुर पुरुष उनसे कहता है कि साधु और श्रावक दोनो के लिए अमृत के समान अनुकम्पा एक सरीखी है यह तो आपकी बात बिल्कुल ठीक है फिर यहाँ पर अर्थात् दुःख पाते हुए त्रस जीव को छोड़ने की अनुकम्पा के विषय मे इतना भारी भेद क्यों करते हो ? साधु की उपधि से मरते हुए प्राणी को छोड़ देने से साधु को धर्म होना कहते हो, तब फिर गृहस्थ की उपधि से मरते हुए प्राणी को छोड़ देने से गृहस्थ को पाप होना क्यों बताते हो ?

निज बोली री बन्ध न काँई,
मोह मिथ्यात री । रे माँही।

ज्ञान केरो अंजन आँजो,
　　　　　　व मिथ्या बोलता लाजो ॥१८॥

भावार्थ :—चतुर पुरुष उनसे कहता है कि आपके वचन का कोई ठिकाना नही है। जिस प्रकार मदिरा के नशे से बेभान बना हुआ मनुष्य कभी कुछ बकता है और कभी कुछ बकता है इसी तरह मोहमिथ्यात्व से बेभान बने हुए आप कभी कुछ कहते हैं और कभी कुछ कहते है। अपने वचन पर पाबन्द नहीं रहते। अब अपने नेत्रो मे ज्ञानरूपी अ न आँजो और झूठ बोलते हुए जरा शर्माओ ॥१८॥

२—अधिकार लाय से बचाने का

(कहे) 'गृहस्थी रे लागी लायो,
　　　　　　घर बारे निसरचो जायो।
बलताँ जीव बिलबिल बोले,
　　　　　　साधु जाय किवा ोले' ॥१॥

भावार्थ :—तेरहपन्थी साधु कहते हैं कि यदि कभी किसी गृहस्थ के घर मे लाय (आग) लग जाय और उसमे रहे हुए मनुष्यो से बाहर न निकला जाय तथा उस आग मे जलते हुए बच्चे, औरते और मनुष्य आदि करुणाक्रन्दन कर रहे हो तो भी साधु उस घर के दरवाजे को नही खोले ॥१॥

खोले तिण ने पाप बतावे,
धर्म शरध्याँ मिथ्यात लगावे।
नर बचिया पाप हे मोटो,
जाँरो हिरदो हुवो घणो खोटो ॥२॥

भावार्थ :—यदि कोई दयावान् गृहस्थ उस घर का दरवाजा खोल दे तो उसको भी वे लोग पाप होना कहते है। इस कार्य मे जो लोग धर्म बताते है उन्हे वे तेरहपन्थी मिथ्यात्वी कहते है। जिनका हृदय वज्र सरीखा कठोर हो गया हो और जो निर्दयता की पराकाष्ठा को पहुँच चुके हो वे ही लोग मनुष्यो को आग से बचाने मे पाप होना कह सकते है ॥२॥

थीवरकल्पी नि पिण खोले,
ठाणायंग चौभंगी रे ओले।
द्वार खोल बाहर निकलणो,
थीवरकल्पी रा कल्प रो निरणो ॥३॥

पर री अनुकम्पा मुनि लावे,
द्वार खोल्याँ प्राछित नहीं आवे।
अगनी संघट्टा ने मुनि टारे,
मनुजों ने तो साधु उबारे ॥४॥

भावार्थ :—ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे अनुकम्पा के विषय मे एक चौभङ्गी बताई गई है। उसमे आत्मानुकम्पक, परानुकम्पक, उभयानुकम्पक और उभयाननुकम्पक इस तरह चार

पुरुष बताये गये है। उसमें स्थविरकल्पी मुनि को 'उभयानुकम्पक' बतलाया है अर्थात् वह अपनी आत्मा की अनुकम्पा करता है और दूसरे जीवों की भी अनुकम्पा करता है। इस चौभङ्गी के अनुसार स्थविरकल्पी मुनि उस आग वाले मकान का दरवाजा खोल सकता है। जिस मकान मे साधु ठहरे हो, यदि उस मकान मे आग लग जाय तो स्थविरकल्पी मुनि उस मकान का दरवाजा खोलकर बाहर निकल जाते है यह उनकी 'स्व' अनुकम्पा हुई। इसी तरह किसी मकान मे आग लग जाय और उसमे मनुष्य आदि हो तो उन पर अनुकम्पा करके अग्नि का संघट्टा न करते हुए मुनि उस मकान का दरवाजा खोलकर उन मनुष्यों की रक्षा करते हैं। यह 'पर' की अनुकम्पा हुई। इस तरह 'स्व' और 'पर' दोनों की अनुकम्पा करने के कारण 'उभयानुकम्पक' कहलाते हैं इसलिए आग से जलते हुए मकान का दरवाजा खोलकर उसमें रहे हुए मनुष्यादि की रक्षा करने मे मुनि को किसी तरह का प्रायश्चित्त नही आता है ॥४॥

पोते तो निकल झट जावे,
दूजाँ मरताँ री दया लावे।
उण ने तो निरदयी जाणो,
ठाणायंग रो है परमाणो ॥५॥

भावार्थ :—मकान मे आग लगने पर आप स्वयं तो निकल कर भाग जाय किन्तु आग मे जलकर मरते हुए दूसरे प्राणियो की जो रक्षा न करे उसे ठाणाङ्ग सूत्र की उपरोक्त चौभङ्गी के अनुसार निर्दयी समझना चाहिए ॥५॥

नोट—ठाणाङ्ग सूत्र की इस चौभङ्गी का विस्तृत वर्णन 'धर्मरुचि अनगार की कीड़ियों पर अनुकम्पा' के अधिकार मे किया गया है।

अनुकम्पा रो दण्ड न आवे,
ज्ञानीज परमारथ पावे।
नुकम्पा रो दण्ड बतावे, *
अणहूँता ही रथ लगावे ॥६॥

भावार्थ :—अनुकम्पा का मुनि को दण्ड नही आता। शास्त्र मे यह बात कही पर भी नही कही गई है कि अनुकम्पा करने से मुनि को दण्ड प्रायश्चित्त आता है। फिर भी अनुकम्पा के द्वेषी अनुकम्पा का दण्ड बतलाते है। वे अज्ञानी मूढ़ शास्त्रो का मन-गढ़न्त उल्टा अर्थ करते हैं ॥६॥

भोलां ने बहु भरमाया,
कूड़ा कूड़ा अरथ बताया।
अनुकम्पा में पाप ने गायो,
हलाहल कलियुग चलि आयो ॥७॥

भावार्थ :—उन तेरहपन्थी साधुओ ने शास्त्रो के मनगढ़न्त झूठे-झूठे अर्थ करके बहुतसे भोले प्राणियो को भ्रम मे डाल दिया है। अनुकम्पा सरीखे परमधर्म को भी उन्होने पाप बताया है तो समझना चाहिए कि उनके हृदय मे हलाहल कलियुग छाया हुआ है। भगवान् ऐसे प्राणियो को सद्‌बुद्धि दे यही अभ्यर्थना है ॥७॥

जैसा कि वे कहते है :—

अनुकम्पा कियाँ दण्ड पावे, परमारथ विरला पावे।
निशीथ रो बारमो उद्देशो, जिन भाख्यो दया रो रेसो ॥

(अनु० ढाल २ गान)

३–अधिकार अपराधी को निरपराधी कहने का
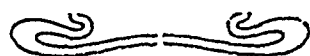
कोई चोर अने परदारी,
हत्या कीनी मनुज री भारी।
पराधी राजा ठहरायो,
मारण योग्य जग दरसायो ॥१॥

धव योग्य ते 'वध्या' हावे,
'वज्झा पाणा' प में वे।
मुनि ध्यस्थ भावना भावे,
मभाव पापी पर लावे ॥२॥

भावार्थ :—तेरहपन्थियो के चौथे आचार्य जीतमलजी ने भ्रमविध्वंसन में सूयगडाँग सूत्र की गाथा की समालोचना करते हुए कहा है कि 'हिसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की प्राण-रक्षा के लिए 'मत मार' कहना मरते जीव पर राग लाना है। किसी जीव पर राग करना साधु को उचित नहीं है। अतः मरते जीव की प्राणरक्षा करने के लिए 'मत मार' ऐसा साधु उपदेश न देवे' यह उनका कथन अज्ञानतापूर्ण है क्योंकि वे उस गाथा का ठीक-ठीक अर्थ ही नहीं समझ सके हैं। वह गाथा और उसका अर्थ इस प्रकार है :—

"वज्झा पाणा वज्झेत्ति, इति यं नीसरे।"

सूयगडांग सूत्र

अर्थात्—कोई चोर या पारदारिक (व्यभिचारी-लम्पट) पुरुष ने किसी मनुष्य की हत्या कर दी अथवा ऐसा कोई भारी अपराध किया जिससे राजा ने उसे वध योग्य अपराधी ठहराया और सब लोगो मे उद्‌घोषपूर्वक यह बात जाहिर करवा दी ऐसे पुरुष को साधु निरपराधी न कहे किन्तु ऐसे पापी जीवो पर मुनि समभावपूर्वक मध्यस्थ भावना रक्खे। चार भावनाओ का वर्णन करते हुए वाचक मुख्य श्री उमास्वाति ने तत्त्वार्थसूत्र मे कहा है–

'मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थ्यानि सत्त्वगुणाधिक-क्लिश्यमानाविनेयेषु'

(तत्त्वार्थ० अध्य० ७ सूत्र ६)

अर्थात्—सब जीवो के साथ मैत्रीभाव, अधिक गुणवानों मे प्रमोद, क्लेश पाते हुए जीवो पर करुणा और अविनेय अर्थात् जीवो की हिंसा करने मे तत्पर रहने वाले प्राणियो पर मध्यस्थता रक्खे ॥१-२॥

वधवा योग्य मुनि नहीं केवे,
दुष्ट कर्म पे मन नहीं देवे।
अनवध्य अपराधी प्राणी,
ऐसी नि हे नहीं वाणी ॥३॥

भावार्थ :—सूयगडाङ्ग सूत्र की उपरोक्त गाथा मे भाषा-समिति का वर्णन किया गया है कि 'यह पुरुष वध्य अर्थात् मार देने योग्य है ऐसा साधु न कहे और उसके दुष्ट कर्म की अनुमोदना करता हुआ अपराधी को निरपराधी भी न कहे ॥३॥

पराधी होवे जो णी,
निर अपराधी कहे किम जाणी।
दोषी ने निर्दोषी थापे,
राजनीति धर्म उत्थापे ॥४॥

भावार्थ :—साधु अपराधी को निरपराधी कैसे कह सकता है क्योकि दोषी को निर्दोषी अर्थात् अपराधी को निरपराधी स्थापित करने से राजनीति-धर्म का उल्लघन होता है ॥४॥

दोषी ने निरदोषी बतावे,
दोष री अनु ोदना पावे।
तिण हेते ि मौन राखे,
सूयगडांग सूतर ाखे ॥५॥

भावार्थ :—सूयगडाँग सूत्र की उपरोक्त गाथा मे भाषासमिति का वर्णन करते हुए शास्त्रकार फरमाते है कि दोषी को निर्दोषी बताने से साधु को उसके दुष्टकर्म की अनुमोदना लगती है इसलिए ऐसे अवसर पर मुनि मध्यस्थभावपूर्वक मौन रक्खे ॥५॥

मन्दमती तो ऊँधा बोले,
सूत्रपाठ हिये नहीं तोले।
(कहे) 'मत मार हे उण रो रागी,
तीजे करणे हिंसा लागी' ॥६॥

भावार्थ :—मन्दमति वे लोग सूयगडाङ्ग सूत्र की इस गाथा का वास्तविक अर्थ ही नही समझ सके है। मनगढ़न्त अर्थ करके

वे उल्टी बात कहते हैं कि 'हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की प्राणरक्षा के लिए 'मत मार' कहना, मरते जीव पर राग लाना है और राग करना साधु को उचित नहीं है। अतः मरते जीव की प्राणरक्षा करने के लिये 'मत मार' ऐसा उपदेश साधु न देवे। क्योंकि 'मत मार' ऐसा उपदेश देने से यदि वह जीव बच जायगा तो फिर जीवित रहकर वह खान-पान आदि जो क्रिया करेगा उसकी अनुमोदना का पाप साधु को लगेगा। इस प्रकार अनुमोदना रूप तीसरे करण मे साधु उस जीवित रहने वाले जीव की क्रिया से होने वाली हिंसा का भागी होगा' ॥६॥

इम ऊँधा र्थ गावे,
जाँ ने ज्ञानी न्याय बतावे।
'मत मार' मुनि नित केवे,
तेथी 'माहण' पद प्रभु देवे ॥७॥

'मत मार' कह्याँ पाप नाहीं,
भव्य! समझो हिरदा रे माँही।
' मार' में पाप जो केवे,
मिथ्य रो पद वो लेवे ॥८॥

भावार्थ :—अज्ञानी लोग उपरोक्त ऊँधा अर्थ करते है तब ज्ञानी पुरुष उन्हे युक्तिपूर्वक यथार्थ अर्थ बतलाते है कि 'मत मार' ऐसा तो मुनि नित्य उपदेश देते है इसीलिए तीर्थंकर भगवान् ने साधु को 'माहण' का पद दिया है जिसका अर्थ होता है—'मा-, हणो-मारो' अर्थात् जो 'मा हणो, मा हणो, मत मारो-मत

मारो' का उपदेश दे वह 'माहण' कहलाता है। चूर्णीकार ने 'माहण' शब्द का अर्थ इस प्रकार दिया है :—

"माहणत्ति उक्कसगभावा धम्म पिया जं च किंचिवि हणंतं पिच्छंति तं निवारंति माह भो माहण" इति चूर्णिः॥

अर्थ :—देश हिंसा या सर्व हिंसा का त्याग करने वाला, प्रियधर्मी और दूसरे को जीवहिंसा करते हुए दे कर जो 'मत मार' कहे तथा उसे हिंसा से रोके और मरते हुए प्राणी की रक्षा करने का उपदेश दे वह 'माहण' कहलाता है।

अतः हे भव्यजीवो ! इस बात को तुम अपने हृदय में धारण करो कि 'मत मार' कहने में पाप नहीं है। जो 'मत मार' कहने में पाप बतलाता है वह मिथ्यात्वी–अज्ञानी है ॥७–८॥

धु थी नेरा जो णी,
थापे हिंसक खेंचाताणी।
ँ ने मत रण नहीं केणो,
ये कुगुरु तणा छै वेणो ॥९॥

भावार्थ :—सूयगडाँग सूत्र की उपरोक्त गाथा की टीका करते हुए टीकाकार श्री शीलांकाचार्य ने लि ा है कि :—

"सिंह-व्याघ्र-मार्जारादीन् परसत्त्वव्यापादनपरायणान् दृष्ट्वा साधुर्माध्यस्थ्यमवलंबेत"

अर्थात्—जीवो की हिंसा करने मे तत्पर रहने वाले सिंह, व्याघ्र, मार्जार आदि प्राणियों को दे कर साधु मध्यस्थ होकर रहे।

इस टीका मे जो 'आदि' शब्द आया है उससे ऐसे पंचेन्द्रिय घातक महारम्भी प्राणियो का ग्रहण होता है, जो समझाने से नही समझते। किन्तु साधु के सिवाय सभी जीवो का ग्रहण नहीं होता है इसलिए सिह, व्याघ्र और पंचेन्द्रिय जीवो की घात करने वाले प्राणियो के विषय मे ही मौन रहना, मध्यस्थ भाव रखना शास्त्रसम्मत है। किन्तु क्लेश पाते हुए दीन-हीन जीवो के विषय मे नही, उन पर करुणा करना साधुओ का कर्त्तव्य है। जो लोग इस टीका मे आये हुए 'आदि' शब्द से साधु के सिवाय सभी जीवो का ग्रहण होना मान कर साधु के सिवाय सभी जीवो को 'हिसक' की कोटि मे गिनते है और सभी के विषय मे मध्यस्थ-भाव रखने का उपदेश देते है वे बिल्कुल मूर्ख है। उन बिचारे अज्ञानियो को शास्त्रीय रहस्य का कुछ भी ज्ञान नही है। इसलिए जो मरते प्राणी पर दया नही करता और दया करके उनकी रक्षा का उपदेश नही देता वह निर्दयी मिथ्यादृष्टि है ॥६॥

जगजीव राखण रे काजे,
सत शा कह्या जिनराजे।
प्रश्नव्याकरण सूतर देखो,
संवर द्वारे ह्यो जिन लेखो ॥१०॥

भावार्थ :—प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवरद्वार मे लिखा है कि :—

"सव्व-जग-जीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं"

अर्थात्—जगत् के सम्पूर्ण जीवो की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है। इस मूलपाठ मे जीवरक्षा रूप धर्म के लिए जैनागम की रचना होना बतलाया गया है। अतः जीव-रक्षारूप धर्म जैनधर्म का प्रधान अङ्ग है। उस जीवरक्षा को जो धर्म मानता है और विधिवत् उसका पालन करता है वही तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का आराधक पुरुष है। इसके विपरीत जो जीवरक्षा को धर्म नहीं मानता किन्तु इसको पाप और अधर्म बतलाता है वह धर्म का द्रोही और तीर्थंकर भगवान् की आज्ञा का तिरस्कार करने वाला है ॥१०॥

चार भावना नि नित भावे,
तेथी संवरगुण बढ़ ावे।
मैत्री प्रमोद करुणा जाणो,
ध्यस्था चौथी बखा ाो ॥११॥

भावार्थ :—मैत्री, प्रमोद, करुणा और माध्यस्थ्य ये चार भावनाएँ बतलाई गई है। मुनि इन चार भावनाओ को नित्य भाता है जिससे उसके संवरगुण (संयम) मे वृद्धि होती है ॥११॥

ैत्रीभाव सभी पे लावे,
गुणिजन से हर्ष बढ़ावे।
करुणा दुखिया जीवों री लावे,
यथायोग्य मिटावण चावे ॥१२॥

भावार्थ :—उपरोक्त चार भावनाओ को मुनि किस तरह भावे, जिसका वर्णन किया जाता है :—

संसार के समस्त प्राणियो के साथ मुनि मैत्रीभाव रक्खे, गुणीजनो को देखकर चित्त मे हर्ष-प्रमोद लावे और दीन-हीन, दुःखी जीवो को देखकर उन पर करुणा लावे और यथाशक्ति उनके दुःख को दूर करने का प्रयत्न करे ॥१२॥

यह तीन भावनाओ का वर्णन हुआ। अब चौथी माध्यस्थ भावना का वर्णन किया जाता है :—

खोटा कर्म करे कोई जाणी,
चोरी जारी हत्या मन आणी।
हिंसक क्रूर कर्म रो कारी,
देवे दुःख जगत् ने भारी ॥१३॥

एवा दुष्ट देखे नि प्राणी,
मध्यस्थ भाव लावे गुण णी।
मारण योग्य ऐसो नहीं बोले,
'अवज्झा' वचन नहीं खोले ॥१४॥

वधवा योग्य कहे किम ज्ञानी,
समभाव है महासुखदानी।
ततायी 'अवज्झा' किम केवे,
लोक विरुद्ध कार्य म सेवे ॥१५॥

या मध्यस्थ भावना जाणो,
इणरो सूयगडाङ्ग बखाणो।

दुष्ट जीवाँ रो य ाँ अ ि रो,
अध्ययन पाँचवें ज्ञा ी विचारो ॥१६॥

भावार्थ :—कोई चोर, पारदारिक पुरुष चोरी, जारी करता करता है, मनुष्यो की हत्या करता है इस प्रकार प्राणियो को भारी दुः देता है ऐसे हिंसक, क्रूर कर्म करने वाले दुष्ट प्राणियों को दे कर मुनि माध्यस्थ भावना भावे। ये दुष्ट प्राणी 'वध्य' अर्थात् मार देने योग्य है अथवा 'अवध्य' हैं ऐसे वचन न बोले क्योंकि आततायी दुष्ट पुरुष को 'अवध्य' कहना लोकविरुद्ध कार्य है। अतः ऐसे आततायी, दुष्ट प्राणियो को देखकर मुनि मध्यस्थ-भाव रक्खे, समभाव रक्खे।

इन चार भावनाओ का वर्णन सूयगडाङ्ग सूत्र के पाँचवे अध्ययन मे किया गया है। इन चार भावनाओ का वर्णन करते हुए श्री अमितगति आचार्य ने 'प्रार्थना प विंशति' मे कहा है-

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु ोदं,
क्लिष्टेषु जीवेषु कृपापरत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीतवृत्तौ,
सदा ममात्मा विदधातु देव ! ॥१॥

अर्थात्—हे भगवन्! मेरी आत्मा संसार के समस्त प्राणियों पर मैत्रीभाव, गुणीजनो मे प्रमोद, दीन-हीन, दुःखी जीवों पर कृपा-करुणाभाव और विपरीतवृत्ति अर्थात् दुष्ट जीवो पर माध्य-स्थभाव सदा रक्खे।

इस प्रकार चार भावनाओ का वर्णन किया गया है। वहाँ बतलाया गया है कि दुष्ट जीवो पर माध्यस्थभाव रक्खे ॥१३-१६॥

ऊँधा अरथ करी भ्रम पाड़े,
नाँखे मिथ्यामत रे खाड़े।
'कहे साधु थी अनेरा प्राणी,
जाँने हिंसक लेवो जाणी' ॥१७॥

'मत मार' कहे उण रो रागी,
तीजे रणे हिंसा लागी।
'मत मार' जीव नहीं केणो,
ऐसा कुमति काढे वेणो ॥१८॥

भावार्थ :—सूयगडॉग सूत्र की उपरोक्त गाथा की टीका मे आये हुए 'आदि' शब्द का ऊँधा अर्थ करके भोले जीवो को भ्रम मे डालकर मिथ्यात्व के गड्ढे मे गिराते हैं। वे कहते है कि साधु के सिवाय सभी जीव हिसक उन्हे यदि कोई मार रहा हो तो 'मत मार' ऐसा नही कहना चाहिए क्योकि 'मत मार' कहने से उस प्राणी पर राग आता है। 'मत मार' कहने वाला तीसरे करण मे हिसा का भागी होता है अर्थात् 'मत मार' कहने से यदि वह जीव बच गया तो फिर जीवित रहकर वह जो सांसारिक क्रिया करेगा उसकी अनुमोदना उस 'मत मार' कहने वाले पुरुष को लगेगी।' वे मूढ़ अज्ञानी इस प्रकार कहते है ॥१७-१८॥

हिवे सूत्र प्रमाण पिछाणो,
भी जीव दुष्ट जाणो।
जुद्र [illegible]णी रो चाल्यो ले [illegible]गो,
[illegible]णायङ्ग सूत्र में देखो ॥१६॥

भावार्थ :—साधु के सिवाय सभी जीवों को हिंसक एवं दुष्ट नही समझना चाहिए। ठाणाङ्ग सूत्र के छठे ठाणे के सूत्र नंबर ५१३ में 'क्षुद्र' प्राणियो का कथन किया गया है। वह इस प्रकार है :—

क्षुद्रिक अधम । प्राणी,
षट्भेद ह्या ज्याँ रा णी।
सन्नी तिर्य पंचेन्द्री,
तेउ वाउ वली विकलेन्द्री ॥२०॥

दूसरी वाचना रे माँही,
सिंह बाघ बरगड़ा दुखदाई।
दीवड़ा रीछ तिरच्छ लहिये,
षट् र णी इम कहिये ॥२१॥

भावार्थ :—क्षुद्र अर्थात् अधम प्राणियो के छः भेद कहे गये हैं। यथा—(१) असंज्ञी तिर्यञ्च पचेन्द्रिय, (२) तेउ काय, (३) वायुकाय, (४) द्वीन्द्रिय, (५) त्रीन्द्रिय और (६) च रिन्द्रिय।

ठाणाङ्ग सूत्र की किन्हीं-किन्ही प्रतियो मे इन छः के स्थान में दूसरे छः क्रूर प्राणी बतलाये गये हैं। यथा—(१) सिंह, (२) व्याघ्र, (३) बरगड़ा (भेड़िया), (४) दीवड़ा (द्वीपी-गेडा), (५) रीछ और (६) तिरच्छ। इस प्रकार छः क्रूर प्राणी गिनाये गये है।

सब जीव क्रूर मत जाणो,
ाणायङ्ग सूतर परमा ो।

साधु थी अनेरा जो प्राणी,
तेने क्षुद्र कहे ते अनाणी ॥२२॥

भावार्थ :—ठाणाङ्ग सूत्र से उपरोक्त छः प्राणी ही क्रूर बतलाये गये है। इसलिए सब प्राणियो को क्रूर नहीं समझना चाहिए। जो लोग साधु के सिवाय दूसरे सभी प्राणियो को क्षुद्र एवं क्रूर कहते है वे अज्ञानी है ॥२२॥

तिम दुष्ट सर्व मत जाणो,
कोई कर्मी ने पिछाणो।
जिम उत्तराध्ययन रे माँही,
भद्र प्राणी कह्या जिनराई ॥२३॥

जम्बु आदिक कुत्सित कहिये,
हिरणादिक भद्रक लहिये।
निरअपराधी भद्रक भाखे,
सूत्र अरथ टीका री साखे ॥२४॥

भावार्थ :—जिस प्रकार सब प्राणी क्रूर नही कहे जा सकते हैं उसी प्रकार सब प्राणी दुष्ट भी नही कहे जा सकते। किन्तु कोई कुकर्मी ही दुष्ट कहा जाता है। उत्तराध्ययन सूत्र के बाईसवे अध्ययन में भगवान् अरिष्टनेमि का वर्णन है। जब भगवान् की बारात तोरण के नजदीक पहुँची तब वहाँ बाड़ो और पिंजरो मे बन्द पशु-पक्षियो को देखकर भगवान् ने सारथि से कहा है कि—

'एए भद्दा उ पाणिणो'

अर्थात्—'ये भद्र पाणी।'

यहाँ सूत्र के मूलपाठ मे उन प्राणियों के लिए भद्र शब्द का प्रयोग किया गया है। हिरण आदि प्राणी जो दूसरों को नहीं सताते वे 'भद्र' कहे जाते है। इस गाथा की टीका मे भी इनको 'भद्र' कहा है और शृगालादि कुत्सित कहे जाते है।

जो हे साधु थी न्य क्रूर प्राणी,
तो भद्रिक अर्थ री होवे हाणी।
तिम हिंसक सर्व नहीं प्राणी,
अति दुष्ट हिंसक लेवो जाणी ॥२५॥

भावार्थ :—जो लोग साधु के सिवाय दूसरे सभी प्राणियो को 'क्रूर' कहते हैं उनसे पूछना चाहिए कि फिर 'भद्र' प्राणी कौन कहे जाएँगे? यदि साधु के सिवाय सभी प्राणियो को क्रूर कहा जायगा तो फिर 'भद्र' शब्द के वाच्य कोई प्राणी ही नही रहेगे। इसी प्रकार साधु के सिवाय दूसरे सभी प्राणियों को 'हिंसक' भी नही समझना चाहिए किन्तु अति दुष्ट सिह, व्याघ्रादि प्राणी ही हिंसक कहे जाते है ॥२५॥

ध्या ने ध्या वे,
निरदोषी ह्याँ दोष वे।
या ध्यस्थ भा ना भाई,
दुरगुण री उपेक्षा बताई ॥२६॥

भावार्थ :—'वध्य' प्राणी को दे कर साधु उसे 'वध्य' न कहे और उसे निर्दोषी-निरपराधी भी न कहे क्योकि दोषी को

निर्दोषी कहने से उसके दोष की अनुमोदना होती है। अतः ऐसे हिंसक, दुष्ट एवं वध्य प्राणियों के विषय में साधु मौन रख कर मध्यस्थ भावना रक्खे। इस प्रकार दुष्ट, दुर्गुणी के प्रति साधु के लिए उपेक्षाभाव बतलाया गया है ॥२६॥

करुणा री बात यहाँ नाँई,
सूयगडाँग टीका रे माई।
इण रो ऊँधो अरथ केई ताणे,
'मत मार' में पाप बखाणे ॥२७॥

नाम सूयगडाँग रो लेवे,
खोटी जुगत्याँ मन सूँ देवे।
तिण हेत कियो विस्तारो,
शुद्ध श्रद्धा थी है निस्तारो ॥२८॥

भावार्थ :—'वज्झा पाणा न वज्झेति इति वायं न नीसरे' इस गाथा की टीका मे यह साफ बतलाया गया है कि इस गाथा मे करुणा की बात नही है किन्तु मुनि के लिए भाषासमिति का वर्णन किया गया है। इस गाथा का वास्तविक अर्थ न समझ कर कितनेक अज्ञानी इसका ऊँधा अर्थ करते हुए कहते है कि, 'मत मार' ऐसा कहने पर साधु को पाप लगता है। इसमे वे मूढ़ सूयगडॉग सूत्र की उपरोक्त गाथा का प्रमाण देते है और अपनी मनगढ़न्त कुयुक्तियाँ देते है। इसलिए इस गाथा का विस्तार-पूर्वक अर्थ करके वास्तविक खुलासा किया गया है। इसलिए बुद्धिमान् विवेकी पुरुषो को चाहिए कि खोटी श्रद्धा को छोड़ कर

शुद्ध श्रद्धा ग्रहण करें। शुद्ध श्रद्धा से ही आत्मा का कल्याण है ॥२७-२८॥

४-अधिकार जीना मरना चाहने का

संक्षिप्त कथा :—

तेरहपन्थियो के आचार्य जीतमलजी ने भ्रमविध्वंसन पृ १३८ मे लिखा है कि 'साधु अपना जीना और मरना न चाहे। जब साधु स्वयं का जीना भी न चाहे तो दूसरे प्राणियों का जीना क्यों चाहेगा ?' इस प्रकार लिख कर हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की प्राणरक्षा करने का निषेध करते है और प्राणरक्षा करने मे एकान्त पाप बतलाते हैं। किन्तु यह जीतमलजी का अज्ञान है। उनसे पूछना चाहिए कि यदि साधु अपनी प्राणरक्षा नही चाहता तो फिर वह आहार क्यो करता है ? उत्तराध्ययन सूत्र के छब्बीसवे अध्ययन मे अपनी प्राणरक्षा के लिए साधु को आहार करने का विधान किया गया है। वह गाथा यह है :—

वेयण वेयावच्चे, इरियट्ठाए य संजमट्ठाए।
तह पाणवत्तियाए, छट्ठं पुण धम्मचिंताए ॥३२॥

अर्थात्—(१) भूख प्यास से उत्पन्न हुई वेदना की निवृत्ति के लिए, (२) गुरु की वेयावच्च-सेवा करने के लिए, (३) ईर्या-समिति का पालन करने के लिए, (४) संयम की रक्षा के लिए,

(५) अपने प्राणों की रक्षा के लिये और (६) शास्त्र का पठन-पाठन आदि धर्म के चिन्तन के लिए साधु को आहार-पानी का अन्वेषण करना चाहिए ॥३२॥

इस गाथा मे तथा इसकी टीका से बतलाया गया है कि अपने जीवन की रक्षा के लिए साधु को आहार-पानी का अन्वेषण करना चाहिए क्योकि शास्त्रीय विधि से विपरीत अपने प्राणो को छोड़ना हिंसा एवं आत्महत्या है। जब साधु अपने प्राणो की रक्षा करता है तब वह दूसरे प्राणी की प्राणरक्षा का उपदेश देवे तो इसमे पाप कैसे हो सकता है ? यह बुद्धिमानो को स्वयं विचार लेना चाहिए।

जीवणो आपणो मन में आणी,
भोजन-पान करे शुद्ध ज्ञानी।
उत्तराध्ययन छब्बीस रे माँई,
छे कारण में बात या आई ॥१॥

जो बिन वसर अन्न त्यागे,
तो आत्महत्या नि ने लागे।
जीवन हेते आहार रो करणो,
सूतर में कीनो थो निरणो ॥२॥

भावार्थ :—उत्तराध्ययन अध्ययन छब्बीस की ऊपर बताई हुई बत्तीसवीं गाथा मे साधु को आहार करने के छः कारण बतलाये गये है उनमे पाँचवाँ कारण यह है कि 'साधु अपनी प्राणरक्षा के लिए शुद्ध आहार-पानी की गवेषणा करे, क्योकि

यदि साधु बिना अवसर आहार-पानी छोड़ दे तो उसे आत्म-हत्या का दोष लगता है। इस प्रकार अपनी प्राणरक्षा के लिए साधु को आहार-पानी करने का विधान शा मे किया गया है ॥१-२॥

अवसर जा मरण रे काजे,
तजे ाहार ध शुद्ध साजे।
यों जीवणो मरणो चावे,
पाप न ागे सू र बतावे ॥३॥

भावार्थ :—अवसर देखकर मारणान्तिक संले नापूर्व संथारा करके धर्म की शुद्ध आराधना के लिए साधु आहार-पानी छोड़ दे। इस प्रकार शास्त्रीय-विधि अनुसार साधु अपना जीवन-मरण चाहता है। इसमे उसे किसी तरह का पाप नहीं लगता प्रत्युत धर्म की शुद्ध आराधना होती है ॥३॥

राजमती रहनेमी ने भाखे,
धिक्कार ँ जीवन राखे।
मरणो ने श्रेयकारी,
धर्म लाभ हुवे तु ारी ॥४॥

भावार्थ :—कामभोगो की प्रार्थना करने वाले रथनेमि को सती राजमती जोशपूर्वक कहती है कि :—

धिरत्थु तेऽजसो ामी, जो तं जीवियकारणा।
इच्छसि ावेउं, सेयं ते मर भवे ॥
(उत्तरा० अध्य० २२ गाथा ४२)

अर्थात्—हे अपयश के कामिन् रथनेमि ! तुझे धिक्कार है जो तू असंयमपूर्ण जीवन की इच्छा करता है, इससे तो तेरे लिए मर जाना श्रेष्ठ है।

इस गाथा मे जीना चाहने की बात कही गई है ॥४॥

अज्ञानी नुकम्पा थी भागा,
ऊँधा रथ करण यूँ लागा।
'आपणो जीवणो साधु बंछे,
तो *पापकर्म रो होवे संचे' ॥५॥

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानियो को अनुकम्पा से द्वेष है इसलिए वे शास्त्र के पाठो का उटपटाङ्ग अर्थ करके अनुकम्पा को उठाने की निन्दित चेष्टा करते है। सलेखना के पाँच अतिचार बताये गये है उनमे तीसरा अतिचार है :—'जीवियासंसपओगे' और चौथा अतिचार है—'मरणासंसपओगे'। इन दोनो अतिचारो का वास्तविक अर्थ न समझकर उन लोगो ने इनका उटपटाँग एवं ऊँधा अर्थ किया है कि—'साधु अपना जीवन चाहे तो उसे पाप लगता है' ॥५॥

करुणा थी पर जीव बचावे,
तिण ने पाप संताप लगावे।

---

*जैसा कि वे कहते है :—

आपणो वंछे तो ही पापो, परनो कुण वाले संतापो।
मरणो जीवणो वंछे अज्ञानी, समभाव राखे ते सुज्ञानी॥

(अनु० ढाल २ गाथा ४१)

इण में संथारा री देवे,
ऊँधा रथ सूँ दुरगति लेवे ॥६॥

भावार्थ :—उन अज्ञानियो का कहना है कि साधु अपना जीना भी न चाहे और दूसरे प्राणियो की रक्षा भी न करे। यदि कोई अनुकम्पा करके हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए प्राणी की रक्षा करता है तो उसे एकान्त पाप लगता है। इसके लिए वे लोग संथारा के अतिचारो मे आये हुए 'जीवियासंसपओगे' नामक अतिचार का प्रमाण देते हैं। इस प्रकार शा ो के पाठ का ऊँधा अर्थ करने वाले नरक निगोदादि दुर्गतियो मे जाते है ॥६॥

'जीवियासंसपओगे' और 'मरणासंसपओगे' का वास्तवि अर्थ इस प्रकार है :—

पूजा श्लाघा संथारा में देखी,
जीवणो चावे कोई विशे ी।
तिचार संथारा रो भाख्यो,
पिण नहीं अनु पा रो दाख्यो ॥७॥

हि । पूजा नहीं पावे,
था शरीर में आवे।
तब मरण ाशंसा लावे,
संथारा में दोष यों आवे ॥८॥

भावार्थ :—जैसे किसी मुनि ने अपना अवसर जानकर संथारा कर लिया। तब लोगो मे उसकी कीर्ति बहुत फैली और उसकी महिमा पूजा होने लगी। उस समय यदि वह मुनि अपनी महिमा श्लाघा को देखकर यह चाहे कि मै अधिक समय तक जीवित रहूँ तो अच्छा है तो उस मुनि को 'जीवियासंसपओगे—'जीविताशंसा प्रयोग' नामक अतिचार लगता है। इसी तरह किसी मुनि ने संथारा किया। उसकी महिमा श्लाघा तो नहीं फैली किन्तु शरीर मे वेदना अधिक बढ़ गई उससे घबराकर वह मुनि यह इच्छा करे कि अब शीघ्र मरण हो जाय तो अच्छा है। तो उस मुनि को 'जीवियासंसपओगे—जीविताशंसप्रयोग' नामक अतिचार लगता है।

यहाँ पर सथारे के अतिचारो का वर्णन किया गया है। अनुकम्पा का यहाँ कुछ भी अधिकार नही है ॥७-८॥

जीवन मरण तो नाम तो लेवे,
' ।संसापओग' नहीं केवे।
नुकम्पा उठावा रा ामी,
झूठा अर्थ रे दुःखगामी ॥९॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी अतएव दुर्गति के अधिकारी वे अज्ञानी लोग अनुकम्पा को उठाने के लिये शास्त्रो के पाठ का ऊँधा अर्थ करते है। वे सिर्फ जीवन और मरण का नाम लेते हैं किन्तु उनके साथ मे लगे हुए 'आसंसापओग' शब्द का प्रयोग नहीं करते अर्थात् संथारे के अतिचारो मे केवल 'जीवन और मरण' ये ही शब्द नही है किन्तु वहाँ पूरा शब्द यह है—

'जीवियासंपओगे-जीविताशंसप्रयोग' और 'मरणासंसपओगे—मरणाशंसप्रयोग।'

संथारे के इन अतिचारो के साथ मे 'आशंसाप्रयोग' शब्द लगा हुआ है जिसका अर्थ अभिधानराजेन्द्रकोष मे इस प्रकार किया गया है :—

'अप्रा प्रापणमाशंसा'

अर्थात्—नही प्राप्त हुई चीज को प्राप्त करने की इच्छा आशंसा कहलाती है। इस प्रकार जो जीवन प्राप्त नही है उसके पाने की इच्छा करना अर्थात् महिमा-श्लाघा को देखकर चिर-काल तक जीने की इच्छा करना 'जीविताशंसप्रयोग' कहलाता है। यही साधु के लिए वर्जित किया गया है किन्तु प्राप्त जीवन की इच्छा वर्जित नही की है। अतः साधु अपने और दूसरे का जीवन नही चाहता—यह कहना अज्ञान तथा एकान्त मिथ्या है ॥६॥

५—अधिकार शीत-तापादि न चाहने सम्बन्धी
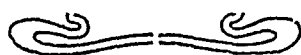
वायु वर्षा शीत ने तापो,
राजविग्रह रो हीं संतापो।
सुभिक्ष उपद्रव नाशो,
बोलों रो यो समासो ॥१॥

दुःख-सुखदायी ये जाणी,
हो, मत हो कहणी नहीं वाणी ।
निज सुख दुःख सम नि जाणे,
तेथी एवो वचन मुख नाणे ॥२॥

भावार्थ :—दशवैकालिक अध्ययन ७ गाथा ५१ मे साधु को अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिए सात बातो की प्रार्थना करना वर्जित किया गया है क्योंकि आर्त्तध्यान करना साधु को उचित नहीं है और यह आर्त्तध्यान है। परन्तु असंयति जीव की प्राण-रक्षा होने के भय से सात बातो का निषेध यहाँ नही किया गया है। दशवैकालिक सूत्र की वह गाथा यह है :—

वाओ वुट्ठं च सीउण्हं, खेमं धायं सिवं ति वा ।
कया णु हु एयाणि, मा वा होउ त्ति नो वए ॥५१॥

अर्थात्—वायु, वर्षा, शीत, उष्ण, राजरोग दूर होना, सुभिक्ष होना, उपसर्गरहित होना। गर्मी आदि से घबराया हुआ साधु इस प्रकार न कहे कि ये बाते कब होगी, अथवा ये न हो। इस प्रकार इन सात बातो की प्रार्थना साधु को न करनी चाहिए। यद्यपि साधु के कहने से वायु आदि चलती नहीं है तथापि साधु को आर्त्तध्यान करना उचित नही है। साधु अपने सुख और दुः दोनो को समान समझता है ॥१-२॥

अज्ञानी तो उल्टा बोले,
गोलाँ ने नाखे भ भोले ।
उपद्रव मिटण कोई चावे,
तिण माँही वे पाप बतावे ॥३॥

भावार्थ :—दशवैकालिक सूत्र की उपरोक्त गाथा का वास्तविक अर्थ न समझकर कितनेक अज्ञानी इसका उल्टा अर्थ करके भोले प्राणियों को भ्रम मे डालते है। वे कहते हैं कि यदि कोई मुनि जीवों का उपद्रव मिटाना चाहे तो उसे पाप लगता है ॥३॥

संवरद्वारे जिनजी भाख्यो,
खेमंकर मुनिगुण दाख्यो।
उपद्रव मेटे ते खेमङ्कर,
ते जीवों रो जा गो हि ङ्कर ॥४॥

भावार्थ :—प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवरद्वार में मुनि को 'क्षेमङ्कर' कहा है। क्षेमङ्कर शब्द का अर्थ यह है—जो जीवों के उपद्रव को मिटाकर उनका हित करे। अतः साधु प्राणियो के उपद्रव को मिटाकर उनका हित करते है। इसमे पाप बताना अज्ञानियो का कार्य है ॥४॥

श्री वीर रा गुण इ भाखे,
ादरकुँवर गो ाला ने दाखे।
त्रस थावर खेम करंता,
शान्ति - रणशील भगवन्ता ॥५॥

भावार्थ :—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के गुणों का वर्णन करते हुए आर्द्रकुमार मुनि गौशाला से कहते है :—

' लोगं थावराणं, मंकरे णे माहणे '
(सूय० श्रु० २ अध्य० ६ । ४)

अर्थात्—श्रमण भगवान महावीर स्वामी त्रस और स्थावर सम्पूर्ण प्राणियो के क्षेम अर्थात् शान्ति एवं रक्षा के लिए उपदेश देते थे। क्षेमङ्कर शब्द का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि :—

"क्षेमं शान्तिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंकरः"

अर्थात्—भगवान् सब प्राणियो का क्षेम, शान्ति यानि रक्षा करते थे।

यदि कोई कहे कि हिंसा के पाप से बचा देना ही जीव की रक्षा यानि क्षेम है, मरने से बचाना नहीं, तो उसे कहना चाहिए कि इस गाथा मे भगवान् को स्थावर जीवो का भी क्षेम करने वाला कहा है। यदि वे मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते थे तो स्थावर जीवो का क्षेम करने वाले वे क्यो कहे गये है? क्योकि स्थावर जीवो मे उपदेश ग्रहण करने की योग्यता नही होती, इसलिए हिंसा के पाप से बचाने के लिए उनको उपदेश देना नही घट सकता, किन्तु उनकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश देना ही घटता है। अतः भगवान् मरते प्राणी की क्षेम यानि प्राणरक्षा के लिए उपदेश देते थे। यह इस गाथा का अर्थ है।

यदि दशवैकालिक सूत्र की उक्त गाथानुसार साधु को क्षेम यानि शान्ति (रक्षा) करना बुरा होता तो स्वयं भगवान् त्रस और स्थावर जीवो का क्षेम यानि शान्ति, रक्षा करने के लिए उपदेश क्यो देते? इसलिए दशवैकालिक सूत्र की उक्त गाथा का टीकानुसार यही अर्थ है कि—अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिए साधु को इन सात बातो की प्रार्थना नही करनी चाहिए परन्तु प्राणियो की रक्षा को पाप जानकर उसकी निवृत्ति के लिए इन सात बातो का निषेध नही किया है ॥८॥

पर पद्रव मेट चावे,
तिण में गो पाप थावे।
ीत ापादि उपद्रव ोई,
ि पे आयो नि लियो जोई ॥६॥

होगो, होवो मुनि नहीं केवे,
ार ध्या जा मौ रेवे।
ारतध्यान रो ीजो भेदो,
रोग ायाँ ोई करे खेदो ॥७॥

भावार्थ :—दूसरे प्राणियो के उपद्रव मिटाने की मुनि इच्छा करता है तो इसमें कोई पाप नहीं लगता। किन्तु शीत, ताप ादि से घबराकर मुनि अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिये इन सात बातों की प्रार्थना न करे क्योंकि ऐसा करने से चित्त में आर्त्तध्यान होता है। रोग आने पर उसकी निवृत्ति के लिए चिन्ता करना आर्त्तध्यान का तीसरा भेद है ॥६-७॥

रोग रो वियोग जो चावे,
ार ध्या प्रभुजी बतावे।
और मुनियों रो रोग मिटावे,
ते तो आर नहीं कहावे ॥८॥

भावार्थ :—भगवान् ने फरमाया है कि अपने शरीर मे उत्प हुए रोग को मिटाने के लिए चिन्तित रहना आर्त्तध्यान है किन् दूसरे मुनियों के रोग को मिटाना आर्त्तध्यान नहीं कहलाता है ॥८॥

तिम पर उपद्रव रो जाणो,
पाप केवे ते कुमति पीछाणो ।
ज्यों वन्दना मुनि नहीं चावे,
चावे तो दूषण पावे ॥६॥

यों आपणा आसरी जाणो,
सूयगडाङ्ग सूत्र पिछाणो ।
कोई वन्दना नि ने देवे,
दोष तिण में सूत्र हीं केवे ॥१०॥

भावार्थ :—इसी प्रकार दूसरे प्राणियो के उपद्रव को मिटाने मे कोई दोष नही है। इसमे पाप बताना अज्ञानियो का कार्य है। जिस प्रकार मुनि अपने लिए 'वन्दना' नही चाहते और चाहने पर उन्हे दोष लगता है किन्तु कोई मुनि को 'वन्दना' करे तो इसमे कोई दोष नहीं है। इसी तरह यहाँ भी समझना चाहिए कि शीत, तापादि का परीषह अपने ऊपर आने पर उसकी निवृत्ति के लिए चिन्तित रहकर आर्त्तध्यान करना मुनि के लिए दोष है किन्तु दूसरे प्राणियो के उपद्रव को मिटाने मे कोई दोष नही है ॥६-१०॥

खेम निरउपद्रव ति जाणो,
पर रो वंछया न दोष रो ठाणो ।
खेम र नि गुण कहिये,
ते वंछया दोष किम लहिये ॥११॥

भावार्थ :—अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिए मुनि आर्त्तध्यान न करे किन्तु दूसरे प्राणियो का क्षेम अर्थात् रक्षा करने में मुनि को कोई दोष नही लगता है क्योकि 'क्षेमङ्कर' यह तो मुनि का गुण है फिर दूसरे प्राणियो का क्षेम अर्थात् शान्ति, रक्षा करने मे मुनि को दोष कैसे लग सकता है ?

सूयगडाँग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के छठे अध्ययन की चौथी गाथा मे भगवान् महावीर स्वामी के लिए 'क्षेमङ्कर' विशेषण दिया है । यथा :—

'समिच्च लोगं त थावराणं, खेमंकरे णे माहणे '

क्षेमङ्कर शब्द का अर्थ करते हुए टीकाकार ने लिखा है कि ;—

"क्षेमं शान्तिःरक्षा तत्करण ।। : क्षेमङ्करः"

अर्थात्—भगवान् महावीर स्वामी त्रस और स्थावर स प्राणियो का क्षेम अर्थात् शान्ति, रक्षा करते थे ।

इसलिए दशवैकालिक सूत्र की उक्त गाथा में गर्मी आदि से पीड़ित होकर साधु को अपनी पीड़ा की निवृत्ति के लिए वायु, वृष्टि आदि सात बातो की प्रार्थना करने का निषेध किया गया है किन्तु प्राणियों की रक्षा को पाप जानकर उसकी निवृत्ति के लिए इन सात बातों की प्रार्थना का निषेध नही किया गया है । इसलिए इस गाथा का नाम लेकर जीवरक्षा मे पाप सिद्ध करना अज्ञानियो का काम है ॥११॥

६-अधिकार नौका का पानी बताने का

साधु बैठा नाव में आई,
नावड़िये नाव चलाई।
नाव फूटी माँय आवे पाणी,
उपरा उपरी जल सूँ भराणी ॥१॥

आता पाणी बतावा रो नेमो,
तेथी मुनि बतावे केमो।
अवसर डूबण केरो आवे,
जतना से निकल मुनि जावे ॥२॥

विधि से उतरया नदी घाट,
'आहारियं रियेज्जा' पाठ।
जतना सूँ निकलने जाणो,
डूब जाणो रो नहिं ब णो ॥३॥

भावार्थ :—शास्त्र मे कथन किया गया है कि यदि कभी मुनि को नदी पार करनी पड़े तो मुनि नौका मे बैठ सकता है। जिस नौका मे मुनि बैठा है संयोगवश उस नौका मे कोई छेद हो जाय और उस छेद मे से नौका मे पानी आने लगे तो उस आते हुए पानी को मुनि बतावे नहीं क्योंकि नौका मे आते हुए पानी को बताना मुनि का कल्प नही है। यदि नौका डूब जाने का

अवसर आ जाय तो 'आहारियं रियेज्जा' अर्थात् उस नाव से निकलकर शा ीय-विधि अनुसार यतनापूर्वक तैर कर नदी पार कर जाय। ऐसा आचाराङ्ग सूत्र मे विधान किया गया है किन्तु जल में डूब जाने का विधान नहीं है ॥१-३॥

एवा रल अर्थ ने छोड़ी,
खोटी ढालाँ मूँ । सूँ जो ी ।
(कहे) "मनुज बचाया पापो,
तेथी (मुनि) जल न बतावे ापो ॥४॥

जो जी बचाया में धर्मो,
तो नुज बचियाँ हुवे भ कर्मो ।
जल बताई नाँय बचावे,
(तेथी मनुज) बचायाँ पाप बहु थावे" ॥५॥

भावार्थ :—आचाराङ्ग सूत्र के पाठ का सीधा और सरल अर्थ जो ऊपर बताया गया है उसको छोड़कर तेरहपन्थियो के आचार्य भीषणजी और जीतमलजी ने अपनी इच्छानुसार ढालें जोड़कर मनगढ़न्त उटपटाँग अर्थ किया है। उनका कहना है कि 'मनुष्यो की रक्षा करना पाप है इसीलिए नाव मे आते हुए पानी को नि नही बताते। यदि मनुष्यो की रक्षा करने मे धर्म होता हो तो मुनि नाव मे आते हुए पानी को क्यो नहीं बताते? इसलिए मनुष्यों की रक्षा करना महान् पाप है' ॥४-५॥

एवी खोटी रे ोई थापो,
जाँरे उदय हुवा महा पापो ।

जो जल ने मुनि नाय बतावे,
(तेथी) मनुज बचायाँ पाप में गावे ॥६॥

भावार्थ :—'नाव मे आते हुए पानी को मुनि नहीं बताते इसलिए मनुष्यों की एवं जीवों की रक्षा करने में पाप होता है।' इस प्रकार जो खोटी स्थापना करता है उस अज्ञानी के महान् पापकर्मों का उदय हुआ है ऐसा समझना चाहिए ॥६॥

मुनि निज रो तो जीवणो चावे,
आहार पाणी मुनि नित खावे।
निज नी अनुकम्पा करणी,
या तो तुम पिण मुख थी वरणी ॥७॥

तो निज अनुकम्पा लाई,
क्यों पाणी बतावे नाँही।
(कहे) अनुकम्पा तो निज री करणी,
पाणी बतावा री (सूतर में) नाही वरणी ॥८॥

कल्प पाणी बतावा रो नाँही,
(पिण निज) अनुकम्पा में दोष न काँई।
तो इम हिज समझो रे भाई,
पर री अनुकम्पा धर्म रे माँई ॥९॥

मनुजाँ ने बचाया में धर्मो,
'यो ठाणायङ्ग रो मर्मो।

निज (नुकम्पा) जे पाणी बतावे,
(तिम) पर जे पिण नाँही दिखावे ॥१०॥

भावार्थ :—उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'आप लोग दूसरे प्राणी की रक्षा करना पाप मानते हैं अपनी रक्षा करने मे तो पाप नहीं मानते। अपनी रक्षा करना तो आप साधु का कर्त्तव्य मानते हैं इसीलिए साधु सदा आहार-पानी की गवेषणा करता है। ऐसी दशा मे दूसरे मनुष्यों की रक्षा के लिए न सही, अपनी रक्षा के लिए साधु नाव मे आता हुआ पानी गों नहीं बतला देता ? क्योकि नाव मे पानी आने पर दूसरे लोगो के समान साधु स्वयं भी तो डूब सकता है फिर वह अपनी रक्षा के लिए पानी क्यो नहीं बताता ? यदि कहो कि अपनी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य तो है परन्तु पानी बतलाने की तीर्थंकर भगवान् की ज्ञा नहीं है, पानी बताना साधु का कल्प नही है इसलिए साधु नाव मे आता हुआ पानी नही बतलाता तो उसी तरह यह भी समझो कि दूसरे जीव की रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य है परन्तु पानी बतलाना उसका कल्प नही है इसलिए साधु नाव में आता हुआ पानी नहीं बतलाता। ठाणाँग सूत्र की अनुकम्पा की चौभङ्गी में स्थविरकल्पी साधु को उभयानुकम्पक बतलाया है। जिस तरह वह अपनी रक्षा अपना कर्त्तव्य समझता है उसी तरह दूसरो की रक्षा करना भी वह अपना कर्त्तव्य समझता है किन पानी बताने का उसका कल्प नही है इसलिए वह पानी नहीं बताता ॥७-१०॥

पाणी रो प हीं,
नुजरक्षा धर्म रे हीं।

जीव बचिया न व्रत में भङ्गो,
तिण रो साखी आचारङ्गो ॥११॥

भावार्थ :—जिस तरह अपनी रक्षा करना धर्म है उसी तरह दूसरे मनुष्यो की रक्षा करना भी धर्म है। दूसरे जीवों की रक्षा करने से साधु के व्रत भङ्ग नहीं होते—यह आचाराङ्ग सूत्र में स्पष्ट बतलाया गया है। किन्तु पानी बताने का उनका कल्प नहीं है इसलिए नाव मे आता हुआ पानी वे नहीं बताते ॥११॥

अनुकम्पा किण री न करणी,*
ऐसी आचारंगे ने वरणी।
शङ्का होवे तो सूतर देखो,
नाव रो बतायो जठे लेखो ॥१२॥

भावार्थ :—भीषणजी ने अपनी अनुकम्पा की ढाल मे यह लिखा है कि 'आप डूबे अनेरा प्राणी, अनुकम्पा किणरी न आणी' अर्थात् नाव मे बैठा हुआ साधु आप भी डूबे और दूसरे प्राणी भी डूब जाएँ परन्तु साधु किसी पर अनुकम्पा न करे। यह उनका कथन अयुक्त है। ऐसा मानने से भीषणजी तथा उनकी सम्प्रदाय के सब साधु ठाणाङ्ग सूत्र की पूर्वोक्त चौभङ्गी के 'उभयाननुकम्पक' नामक चौथे भङ्ग मे शामिल होते है क्योंकि इस भङ्ग वाले जीव न अपनी अनुकम्पा करते है और न पर की,

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—

आप डूबे अनेरा प्राणी, अनुकम्पा किण री नहीं आणी ॥
(अनु० ढाल २ गाथा १६)

जैसे कालशोकरिक आदि। किन्तु यह बात शास्त्र तथा इनके सिद्धान्त से भी विरुद्ध है। आचाराङ्ग सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध के छब्बीसवे अध्ययन मे जहाँ नाव का प्रकरण बतलाया गया है वहाँ यह भी बतलाया गया है कि यदि डूबने का अवसर आय तो साधु तैर कर नदी पार कर जाय। यदि भीषणजी की उक्ति अनुसार अपनी रक्षा करना साधु का कर्त्तव्य नही होता तो आचाराङ्ग मे नदी पार कर साधु की अपनी रक्षा करना कैसे बतलाया जाता? इसलिए यह समझना चाहिए कि ठाणाङ्ग सूत्र की चौभङ्गी के अनुसार स्थविरकल्पी साधु अपनी और दूसरे की दोनो की रक्षा करते हैं परन्तु नाव मे आता हुआ पानी गृहस्थ को बताना उनका कल्प नहीं है इसलिए नाव मे आता हुआ पानी नहीं बताते ॥१७॥

॥ इति दूसरी ढाल सम्पूर्ण ॥

: तीसरी ढाल :

१–अधिकार मेघरथ राजा का परेवा (कबूतर) पर दया करने का

[तर्ज—विछिया नी]

इन्द्र करी परसंसिया,
मेघरथ मोटो राय रे जीवा।
दयावन्त दानेश्वरी,
रणागण देवे सहाय रे जीवा ॥१॥

मोह नुकम्पा न जाणिये,
नहीं मोह तणो यह काम रे जीवा।
परकाश न्धेरा रा ज्यूँ जुदा,
दोयाँ रा न्यारा-न्यारा नाम रे जीवा ॥ मो० २॥

भावार्थ :—एक समय सौधर्म देवलोक मे देवो की सभा हो रही थी उस समय इन्द्र ने मेघरथ राजा की प्रशंसा करते हुए कहा कि इस समय जम्बूद्वीप के पूर्व महाविदेह की पुष्कलावती विजय मे मेघरथ राजा बड़ा दानी और दयावान् है। वह शरणागत की पूर्णरूप से रक्षा करता है ॥१॥

कितनेक अज्ञानी जीव रक्षा को मोह-अनुकम्पा कहते है किन्तु इसे मोह-अनुकम्पा न समझना चाहिए, क्योकि अनुकम्पा मे मोह नहीं होता। जिस प्रकार अन्धेरा और प्रकाश तथा रात और दिन परस्पर विरोधी है उसी प्रकार मोह और अनुकम्पा ये दोनों भी परस्पर विरोधी है। जहाँ मोह है वहाँ अनुकम्पा नहीं हो सकती और जहाँ अनुकम्पा है वहाँ मोह नही हो सकता। मोह और अनुकम्पा ये दोनो भिन्न-भिन्न है ॥२॥

तिण ले ए देवता,
दयाभाव देखण रे काज रे जीवा।
रूप परेवो बाज नो,
तिण कीनो वैक्रिय साज रे जीवा ॥ मो० ३ ॥

पडियो राय री गोद में,
भय थी ड़फे तस काय रे जीवा।
शरणो दियो महारायजी,
भय त पावो कहि वाय रे जीवा ॥ मो० ४ ॥

भावार्थ :—इन्द्र द्वारा की गई मेघरथ राजा की प्रशंसा एक मिथ्यात्वी देव को सहन न हुई। उसने मेघरथ राजा की दया की परीक्षा करने की ठानी। उसने वैक्रिय करके कबूतर और बाज पक्षी ऐसे अपने दो रूप बनाये। आगे कबूतर उड़ने लगा और उसको पकड़ने के लिए पीछे बाज उड़ने लगा। वह उड़ता आ कबूतर मेघरथ राजा की गोद मे आकर गिरा। भय के रे उसका शरीर काँप रहा था। तब मेघरथ राजा ने उसे शरण

दी और कहा कि हे कबूतर ! अब तू मेरी शरण मे आ चुका है । अब तुझे किसी से डरने की आवश्यकता नहीं है । अब तू सर्व प्रकार से अभय है ॥३-४॥

बाज कहे भख माहरो,
मुझ भूखा नो यह शिकार रे जीवा ।
और कछू लेसूं नहीं,
मोने आपो म्हारो आहार रे जीवा ॥ मो० ५ ॥

भावार्थ :—इतने मे कबूतर के पीछे उड़ने वाला वह बाज भी वहाँ आ पहुँचा और राजा से कहने लगा कि हे राजन् ! मै भूखा हूँ । यह कबूतर मेरा शिकार है, यह मुझे दे दीजिए । मैं और कुछ नहीं चाहता ॥५॥

यो शरणागत माहरे,
और माँग तू वस्तु रसाल रे जीवा ।
जे माँगे ते आपसूँ,
हूँ जीवदया प्रतिपाल रे जीवा ॥ मो० ६ ॥

भावार्थ :—तब राजा बाज से कहने लगा कि यह कबूतर तो मेरा शरणागत है । मै इसे नहीं दे सकता । शरणागत की रक्षा करना मेरा परम धर्म है । मै जीवदया प्रतिपालक हूँ । इसलिए इसके बदले तू और कोई दूसरी चीज़ माँग ले । मै प्रसन्नतापूर्वक वह तुझे दे दूंगा ॥६॥

माँस ापो निज देह नो,
इण रे बराबर तोल रे जीवा ।

हर्षित हो राय इम कहे,
यह तो भलो द्यो थें बोल रे जीवा ॥ मो० ७॥

भावार्थ :—तब बाज कहने लगा कि हे राजन्! मैं मांस-भोजी पक्षी हूँ। माँस के सिवाय दूसरी चीज नहीं खाता। इसलिए यदि आप इस कबूतर को न देना चाहे तो इसके बराबर तोलकर अपने शरीर का माँस मुझे दे दीजिये। बाज के वचन को सुनकर राजा बड़ा हर्षित हुआ और कहने लगा कि यह तो तुमने अच्छा माँगा ॥७॥

तुरत तराजू माँड ने,
राय एडन ागो ाय रे जी ा।
हाहाकार हुओ घणो,
अन्तेवर ति विल ाय रे जीवा ॥ मो० ८॥

भावार्थ :—राजा ने उसी वक्त तराजू मँगाया। उसके एक पलड़े मे कबूतर को रखकर दूसरे पलड़े मे अपने शरीर का माँस काटकर रखने लगा। राजा के इस कार्य को देखकर महल में हाहाकार मच गया। खिन्न होकर सब रानियाँ राजा से कहने लगी कि हे नाथ! आप यह क्या कर रहे है? इस तुच्छ कबूतर के लिए आप अपने अमूल्य शरीर को काट रहे हैं ॥८॥

उत्तर दीधो राजवी,
नहीं मोह तणो यहाँ म रे जीवा।
क्षत्री धर्म ै रो,
ध राखे ै थारो रे जीवा ॥ मो० ९॥

भावार्थ :—तब राजा ने उनको उत्तर दिया कि तुम वृथा मोह न करो। यहाँ मोह करने का काम नहीं है। मैं क्षत्रिय हूँ। क्षत्रिय शब्द का अर्थ है :—

'क्षतात् विनाशात् त्रायते रक्षति क्षत्रं तदस्यास्तीति इति क्षत्रियः'

अर्थात्—विनाश से यानि मरते हुए प्राणी के प्राणों की जो रक्षा करे उसे क्षत्र कहते है, वह धर्म जिसका हो वह क्षत्रिय कहलाता है। इसलिए मै अपने क्षत्रिय-धर्म की रक्षा कर रहा हूँ ॥६॥

सब समझाया ज्ञान सूँ,
विलखाया सामा जोय रे जीवा।
इसड़ो धर्मी जगत् में,
हुओ वली होसी न कोय रे जीवा ॥ मो० १० ॥

निज नो मरणो वंछियो,
ते तो जाणी धर्म रो काम रे जीवा।
प्राण कपोत रा राखिया,
ते द्रढ धर्म रे नाम रे जीवा ॥ मो० ११ ॥

भावार्थ :—राजा ने उन सबको ज्ञानपूर्वक समझा दिया। वे सब राजा की तरफ खिन्न दृष्टि से देखने लगे। राजा के इस कार्य को देखकर सब लोग कहने लगे कि संसार मे ऐसा धर्मी न हुआ और न होगा। राजा ने पर-अनुकम्पारूप धर्म के लिए

अपने शरीर को न्यौछावर करके कबूतर के प्राणों की रक्षा की ॥१०-११॥

तन खंड्यो मन खंड्यो नहीं,
अपूरण जाण्यो तोल रे जीवा ।
वीर रसे महारायजी,
तन मेल दियो अनमोल रे जीवा ॥ मो० १२ ॥

भावार्थ :—शरीर का माँस काटकर राजा उस पलड़े मे रखने लगा किन्तु वह कबूतर तो वैक्रिय शरीरधारी देव था इस लिए वह इतना भारी हो गया कि माँस उसके बराबर नही हुआ और वह कबूतर वाला पलड़ा नीचे झुकता रहा। तब राजा ने अपना सारा शरीर उस पलड़े मे रख दिया। तब उस देव ने अवधिज्ञान द्वारा देखा तो ज्ञात हुआ कि राजा का चित्त अनुकम्पा से तिलमात्र भी चलित नही हुआ है बल्कि वीररस से परिपूर्ण उसके अनुकम्पा के परिणाम अत्यन्त शुद्ध, उज्ज्वल और चढ़ते हुए है ॥१२॥

जय जयकार सुर करे,
धन-धन तूँ महाराय रे जीवा ।
इन्द्र किया गुण ताहरा,
मैं देख लिया यहाँ आय रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

भावार्थ :—उसी समय देव ने बाज और कबूतर का रूप छोड़कर अपना असली रूप धारण किया और मेघरथ राजा की जय-जयकार करता हुआ कहने लगा कि हे राजन् ! आप धन्य

हैं। आज देवसभा के अन्दर इन्द्र ने आपके गुणों की प्रशंसा की थी किन्तु मैंने उस पर विश्वास नहीं किया। इसलिए मैं बाज और कबूतर का रूप धारण करके आपकी परीक्षा करने के लिए यहाँ आया। जैसी इन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वैसे ही गुण आपके अन्दर विद्यमान है। यह मैंने प्रत्यक्ष देख लिया है ॥१३॥

खम अपराध तूं माहरो,
मैं हुओ सुवरण पारस संग रे जीवा।
गोत तीर्थङ्कर बाँधियो,
राय दयातणे परसंग रे जीवा ॥ मो० १४ ॥

भावार्थ :—फिर देव दोनो हाथ जोड़कर कहने लगा कि "हे राजन्! मैंने आपको इतना कष्ट दिया। इस अपराध के लिए मैं आपसे क्षमा चाहता हूँ। आप क्षमासागर है अतः आप मेरे अपराध को क्षमा करे। आप लोह को सोना बनाने वाले पारस के समान हैं। आपके संयोग से मैं सुवर्ण बन गया हूँ अर्थात् जिस प्रकार पारसमणि के संयोग से लोह सुवर्ण बन जाता है उसी प्रकार आपके संयोग से मैं मिथ्यात्वी से सम्यक्त्वी बन गया हूँ।"

नोट—इस भव से बहुत पहले किसी एक भव मे मेघरथ राजा का जीव महाविदेह क्षेत्र में अपराजित नाम के बलदेव थे और इस देव का जीव दमितारि प्रतिवासुदेव था। अपराजित बलदेव के छोटे भाई अनन्तवीर्य वासुदेव ने दमितारि प्रतिवासुदेव को मारा था। इसके पश्चात् कुछ भव निकल जाने पर भी इस समय उसका पूर्वभव का द्वेष जागृत हो गया। इस कारण से इन्द्र द्वारा की हुई मेघरथ राजा की प्रशंसा उसे सहन न हुई। इसलिए यह उसकी परीक्षा करने के लिए आया था।

इस प्रकार राजा मेघरथ के गुणो की प्रशंसा करता I देव अपने स्थान को चला गया।

इस अनुकम्पा से राजा मेघरथ ने तीर्थंकर गोत्र उपार्जन किया, जो कि वर्तमान अवसर्पिणी मे सोलहवें तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ हुए ॥१४॥

इ नुकम्पा में मोह कहे,
उण रे पूरो उदे मिथ्यात रे जीवा।
यह तो पर मोह रो जीतणो,
माँहे देखो च्च रे ा ॥
मोह अनु म्पा न जाणिये ॥१५॥

भावार्थ:—जो लोग इस अनुकम्पा को मोह-अनुकम्पा कहते है वे मिथ्यात्वी है। समझना चाहिए कि उन लोगों के पूर्ण रूप से मिथ्यात्व का उदय है। इस अनुकम्पा मे तो मोह को जीता गया है क्योकि मोह को जीते बिना शरीर पर से ममता नहीं उतरती। इसलिए मेघरथ राजा की इस अनुकम्पा को मोह-अ कम्पा कहने वाले मिथ्यात्वी एवं अ ानी हैं।

त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित्र मे तथा अन्य ग्रन्थों मे यह कथा विस्तारपूर्वक दी हुई है ॥१५॥

२—अधिकार अरणकजी की अनुकम्पा का

संक्षिप्त कथा :—

अङ्ग देश मे चम्पा नाम की नगरी थी। वहाँ चन्द्रछाय नाम का राजा राज्य करता था। उस नगरी मे अरणक नाम का एक श्रावक रहता था। एक समय अरणक श्रावक ने दूसरे बहुत से व्यापारियो के साथ व्यापार के निमित्त लवण समुद्र मे यात्रा की। जब जहाज समुद्र के बीच मे पहुँचा तो अकाल ही मे मेघ की गर्जना होने लगी और भयङ्कर बिजलियाँ चमकने लगी।

अरणक परीक्षा कारणे,
देव बोले इण पर वाय रे जीवा।
अणुव्रत पाँचों निर्मला,
दयाधर्म धारे चित्तचाय रे जीवा॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये॥१॥

तोड़ हिंसा करसी नहीं,
अनुकम्पा न छोड़सी आज रे जीवा।
धर्म न छोडसी थाहरो,
तो हूँ करसूँ मोटो अकाज रे जीवा॥ मो० २॥

भावार्थ :—इसके पश्चात् अरणक श्रावक की परीक्षा करने के लिए हाथ मे तलवार लिए, भयङ्कर रूप वाला एक पिशाच अरणक श्रावक के सामने उपस्थित हुआ और कहने लगा कि

अरणक श्रावक ! तू श्रावक के पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतो का भली प्रकार पालन कर रहा है। तुझे अपने धर्म से विचलित होना इष्ट नहीं है किन्तु मै तुझे तेरे धर्म से विचलित करूँगा। यदि तू अपने व्रतो को तोड़कर एवं अनुकम्पा को छोड़कर हिसा न करेगा एवं अपने धर्म को न छोड़ेगा तो मै तेरा बड़ा भारी अनर्थ करूँगा। मै तेरे जहाज को आकाश मे उठाकर फिर समुद्र मे पटक दूंगा जिससे आर्त्त रौद्र ध्यान करता हुआ तू मर कर दुर्गति को प्राप्त होगा ॥१-२॥

वचन सुणी डरियो नहीं,
इम चिन्ते चित्त झार रे जीवा।
धर्मबोध इण रे नहीं,
तेथी पाप करण झूँझार रे जीवा ॥ मो० ३॥

सुमति तजी मती भजी,
तेथी धर्म छुड़ावण चाय रे जीवा।
मैं मर्म जाण्यो छै एहनो,
तेथी धर्म छो ो किम जाय रे जीवा ॥ मो० ४॥

पाप है घातक जगत में,
दुः दे वे करे ाज रे जीवा।
जगवच्छल जिनधर्म है,
सुखदाई सारे ाज रे जीवा ॥ मो० ५॥

अट्ठि-मींजा रस रह्यो,
जारे धर्मतणो अनुराग रे जीवा।
केम गहे कर काँकरो,
रतन चिंतामणि त्याग रे जीवा॥मो० ६॥

दृढ़ रह्यो चलियो नहीं,
देव कीनो उपसर्ग दूर रे जीवा।
धन-धन मुख से बोलतो,
दयाधर्मी तूँ महाशूर रे जीवा॥मो० ७॥

भावार्थ :—पिशाच के उपरोक्त वचनो को सुनकर जहाज मे बैठे हुए दूसरे लोग बहुत घबराये और इन्द्र, वैश्रमण, दुर्गा आदि देवो की अनेक प्रकार की मान्यताएँ करने लगे किन्तु अरणक श्रावक किञ्चिन्मात्र भी घबराया नही और न अपने धर्म से विचलित ही हुआ। प्रत्युत वस्त्र से भूमि का प्रमार्जन करके सागारी संथारा कर धर्मध्यानपूर्वक शान्त चित्त से बैठ गया और विचार करने लगा कि "इस पिशाच को धर्म का बोध नही है इसीलिए यह पाप करने के लिए उद्यत हुआ है। सुमति को छोड़-कर कुमति ने इसके हृदय मे निवास किया है इसीलिए यह मुझे धर्म छुड़ाना चाहता है किन्तु मैने तो धर्म का मर्म पहचान लिया है। मै इसे कैसे छोड़ सकता हूँ? संसार मे पाप ही आत्मिक सुखो का घातक है। यह जीवो को दुःख देता है और अकार्य भी करवाता है तथा अन्त मे दुर्गति मे ले जाता है। संसार मे एक जिनधर्म (वीतराग प्ररूपित धर्म) ही श्रेष्ठ है। जगत्वत्सल है। इसका सेवन करने से प्राणी सुखी होते है और अन्त मे मोक्ष को

प्राप्त करते हैं। जिन पुरुषो के अस्थि और अस्थिमिंजा मे धर्म का अनुराग हो, क्या वे कभी धर्म से विचलित हो सकते है ? कौन ऐसा बुद्धिमान् पुरुष होगा जो चिंतामणि रत्न को छोड़कर कंकर को लेना चाहेगा ? अर्थात् कोई नही।" इस प्रकार विचार करता हुआ अरणक श्रावक शान्त चित्त से निश्चल बैठा रहा।

अरणक श्रावक को निश्चल शान्त बैठा हुआ देखकर वह पिशाच अनेक प्रकार के भयोत्पादक वचन कहने लगा और उस जहाज को दो अँगुलियो से उठाकर आकाश मे बहुत ऊँचा ले गया और अरणक श्रावक से फिर इसी प्रकार कहने लगा कि तू अपने धर्म को छोड़ दे, किन्तु वह अपने धर्म से किञ्चिन्मात्र भी चलायमान नही हुआ। अरणक श्रावक को इस प्रकार अपने धर्म मे दृढ़ देखकर वह पिशाच शान्त हो गया। पिशाच का रूप छोड़कर उसने अपना असली देवरूप धारण किया। फिर वह अरणक श्रावक के सामने हाथ जोड़कर उपस्थित हुआ और कहने लगा कि "हे देवानुप्रिय ! आप धन्य हैं। आपका जन्म सफल है। आज देवसभा के अन्दर शक्रेन्द्र ने आपकी धार्मिक दृढ़ता की प्रशंसा की थी कि "जीवाजीवादि नवतत्त्व का ज्ञाता अरणक श्रावक अपने धर्म के विषय मे इतना दृढ़ है कि उसको देव दानव भी निर्ग्रंथ प्रवचन से विचलित करने मे और समकित से भ्रष्ट करने मे समर्थ नही है।" मुझे शक्रेन्द्र के वचनो पर विश्वास नहीं हुआ। अतः मै आपकी धार्मिक दृढ़ता की परीक्षा करने के लिए यहाँ आया था।

हे देवानुप्रिय ! जिस तरह शक्रेन्द्र ने आपकी प्रशंसा की थी वास्तव मे आप वैसे ही है। मैंने जो आपको कष्ट दिया उसके लिए आपसे क्षमा चाहता हूँ। मेरे अपराध को आप क्षमा करे।"

इस प्रकार अपने अपराध की क्षमायाचना करके वह देव अरणक श्रावक की सेवा मे दिव्य कुण्डलो की दो जोड़ी रखकर अपने स्थान को चला गया। अपने आपको उपसर्ग रहित समझकर श्रावक ने अपना सागारी सथारा पार लिया ॥३-७॥

कुमति कदाग्रही इम कहे,
जहाज में मनुज अनेक रे जीवा।
मोह करुणा न आणी केहनी, *
मरतो नहीं राख्यो एक रे जीवा ॥ मो० ८॥

एहवी अणहूँती बात उठाय ने,
अनुकम्पा में थापे पाप रे जीवा।
जां रे मोह उदे अति आकरो,
तेहथी खोटी करे छे थाप रे जीवा ॥ मो० ९॥

भावार्थ :—कितनेक विपरीत बुद्धि वाले मिथ्यात्वी इस प्रकार मनगढ़न्त कल्पना करके कहते है कि उस जहाज मे अनेक

---

* जैसा कि वे कहते है :—

तिण सागारी अणसण कियो, धर्मध्यान रह्यो चित्त ध्याय रे।
सगलॉ ने जाण्या डूबता, मोह करुणा न आणी काय रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न आणिये ॥४॥
लोक बिलबिल करता देख ने, अरणक रो न बिगड्यो नूर रे।
मोह करुणा न आणी केहनी, देव उपसर्ग कीधो दूर रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न आणिये ॥८॥
(अनुकम्पा ढाल ३ गाथा ४, ८)

मनुष्य थे किन्तु अरणक श्रावक ने किसी की भी मोह-अनुकम्पा नहीं की और मरने से किसी को नहीं बचाया। इस प्रकार असत् बात उठाकर अनुकम्पा मे पाप की स्थापना करते हैं उन विचारे अज्ञानियो के महामोहनीय कर्म का प्रबल उदय समझना चाहिए जिससे वे ऐसी खोटी स्थापना करते हैं ॥८-९॥

जहाज राख धर्म छोड्यो नहीं,
तेहथी मोह करुणा री थाप रे जीवा।
त्याँने धवन्त हे इण परे,
हेतु रो देवो ज ब रे जीवा ॥ मो० १०॥

रावण ीता ने कहे,
तू ने करे स्वी ार रे जीवा।
तेथी मरसे र अति सामटा,
थारे नहीं दया सूँ प्यार रे जीवा ॥ मो० ११॥

भावार्थ :—यदि कोई मूर्ख ऐसी स्थापना करे कि "अरणक श्रावक ने अपने धर्म को न छोड़कर जहाज मे रहे हुए मनुष्यो की रक्षा नही की। इसलिए इसे मोह-अनुकम्पा समझना चाहिए। कम्पा करने मे मोह समझकर अरणक श्रावक ने उनकी रक्षा नहीं की थी" तो बुद्धिमान् पुरुष उससे पूछता है कि मेरे एक प्रश्न का जवाब दो :—

रावण सीता से कहता है कि "हे सीते! तू मुझे स्वीकार नहीं करती है तो मेरे और राम के बीच संग्राम होगा और बहुत से मनुष्य मारे जाएँगे। इसलिए मैं समझता हूँ कि तेरे हृदय में

दया नहीं है क्योंकि यदि तेरे हृदय में दया होती और मनुष्यों को बचाने में धर्म होता तो तू मुझे स्वीकार कर लेती। इसलिए मैं मानता हूँ कि तेरे हृदय में दया नहीं है और मनुष्यों की रक्षा करने में धर्म नहीं है।"

क्या रावण का उपरोक्त कथन सत्य है और क्या उसकी युक्ति ठीक है तो कहना पड़ेगा कि, रावण का कथन असत्य एवं कुयुक्तिपूर्ण है। इस पर सीता उसे जवाब देती है कि :—

दयाधर्म मुझ मन वस्यो,
हूँ तो सगलाँ रो चाहूँ खेम रे जीवा।
थारे हिरदे खोटी वासना,
म्हारे हिरदे साँचो नेम रे जीवा ॥ मो० १२ ॥

भावार्थ :—"मेरे हृदय में दयाधर्म वसा हुआ है और मैं तो संसार के समस्त प्राणियों का क्षेमकुशल चाहती हूँ किन्तु तेरे हृदय में खोटी वासना है और मैं अपने व्रत-नियम पर अर्थात् शील पर दृढ़ हूँ" ॥१२॥

शील न सीता खण्डियो,
तेथी अनुकम्पा में पाप रे जीवा।
एवी मूढ़ करे कोई कल्पना,
के ज्ञानी केरी या थाप रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

भावार्थ :—"रावण और सीता के उपरोक्त प्रश्नोत्तर को सुनकर यदि कोई यह कल्पना करे कि सीता ने शील खण्डि

नहीं किया इसलिए अनुकम्पा करने मे पाप है।" ऐसी कल्पना करने वाला मूर्ख कहलायगा या बुद्धिमान्? ॥१३॥

जब ाब न ावे एहनो,
ब ज्ञानी कहे समझाय रे जीवा।
शील ती खण्डे नहीं,
तिण रे रक्षा घणी दिल माँय रे जीवा ॥ मो० १४॥

भावार्थ:—जब उपरोक्त प्रश्न का जवाब उन्हें कुछ नहीं ाता है तब ज्ञानी पुरुष उन्हे समझाता है कि सती के हृदय मे दया तो बहुत है किन्तु वह अपना शील खण्डित नही करती। उसे अपना शील प्राणो से भी ज्यादा प्रिय है।

इसलिए सती के शील खण्डित न करने से अनुकम्पा मे पाप की कल्पना करने वाला मूर्ख है क्योकि यहाँ अनुकम्पा से कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तो शीलरक्षा का सवाल है। उसी तरह अरणक श्रावक के विषय मे भी अनुकम्पा मे पाप की कल्पना करने वाला मूर्ख है क्योकि अरणक के सामने अनुकम्पा का सवाल नहीं है किन्तु अपने व्रत-नियमो की रक्षा का सवाल है ॥१४॥

ति ध छोड़े समति,
नुकम्पा घणी घट माँय रे जीवा।
तिण ने कहे कोई मूढ़मति,
वो अनु म्पा लायो नाँय रे जीवा ॥ मो० १५॥
धर्म शील न छोड़े तेहने,
मे करे एवी थाप रे जीवा।

अनुकम्पा में पाप छै,
तेथी मनुष्य बचाया नाँय रे जीवा ॥ मो० १६ ॥

एवी मूढ़ करे परूपणा,
ज्ञानी री यह नहीं वाय रे जीवा ।
धर्म शील सम जाणजो,
जीवरक्षा धर्म रे माँय रे जीवा ॥ मो० १७ ॥

भावार्थ :—जिस प्रकार सती के हृदय में दया बहुत है किन्तु वह अपने शील को खण्डित नहीं करती उसी प्रकार दृढ़धर्मी के हृदय में दया बहुत है किन्तु वह अपने धर्म से विचलित नहीं होता। सती अपने शील को खण्डित नहीं करती और दृढ़धर्मी पुरुष अपने धर्म से विचलित नहीं होता, अतः इन दोनों का दृष्टान्त देकर अनुकम्पा में पाप की स्थापना करने वाला मूर्ख कहलाता है। बुद्धिमान् पुरुष ऐसी कल्पना नहीं कर सकता। जिस प्रकार सती को अपना शील प्यारा है उसी प्रकार दृढ़धर्मी को अपना धर्म प्यारा है। दोनों के हृदय में अनुकम्पा बहुत है। अनुकम्पा धर्म में है ॥१५-१७॥

कोई देव कहे श्रावक भणी,
तू दे जिनधर्म छोड़ रे जीवा।
नहीं तो साधवी गुरुणी थाहरी,
जाँ रा शील ने नाँखसूँ तोड़ रे जीवा ॥ मो० १८ ॥
धर्म न छोड़े तेहथी,
कोई मूर उठावे भरम रे जीवा ।

शील बचाया में पाप है,
तिण रे हेते छोड्यो धर्म रे जीवा ॥ मो० १६ ॥

भावार्थ :—एक दूसरा दृष्टान्त और समझिये कि यदि कोई देव किसी दृढ़धर्मी श्रावक से कहे कि तू जिनधर्म को छोड़ दे। यदि तू जिनधर्म को न छोड़ेगा तो मैं तेरी गुरुणी साध्वी के शील को खण्डित कर दूंगा। देव की बात को सुनकर वह दृढ़धर्मी श्रावक जिनधर्म को न छोड़े तब यदि कोई ऐसी कल्पना करे कि शील की रक्षा करना पाप है तो ऐसी कल्पना करने वाला मूर्ख कहलायगा ॥१८-१६॥

देव कहे धर्म न छोड़सी,
झूठ चोरी रो रसूँ पाप रे जीवा।
तब धर्म न छोड़े तेहथी,
कोई मूढ़ करे एहवी थाप रे जीवा ॥ मो० २० ॥

धर्म त्याग चोरी छुड ताँ,
चोरी झूठ छुड़ावा में पाप रे जीवा।
मूर री परूपणा,
ज्ञानी जाणे साफ रे जीवा ॥ मो० २१ ॥

भावार्थ :—एक दृष्टान्त और समझिये कि यदि कोई देव किसी दृढ़धर्मी श्रावक से कहे कि तू अपने जिनधर्म को छोड़ दे। यदि तू धर्म न छोड़ेगा तो मैं झूठ और चोरी का पाप सेवन करूँगा। देव की उपरोक्त बात सुनकर वह श्रावक अपना धर्म न

छोड़े तब यदि कोई यह कल्पना करे कि झूठ और चोरी को छुड़ाने मे पाप है तो वह मूर्ख कहलायगा ॥२०-२१॥

इम अठारा ही पाप रो,
न्याय शुद्ध हृदय में धार रे जीवा।
धर्म त्यागे न पाप छुड़ायवा,
यो सूत्र तणो निरधार रे जीवा ॥ सो० २२ ॥

भावार्थ :—जिस प्रकार झूठ और चोरी का दृष्टान्त दिया गया है उसी तरह अठारह ही पापो के विषय मे समझ लेना चाहिए। अर्थात् यदि कोई व्यक्ति किसी दृढ़धर्मी श्रावक से यह कहे कि तू अपने जिनधर्म को छोड़ दे। यदि तू धर्म नहीं छोड़ेगा तो मै परिग्रह की मर्यादा न रक्खूँगा और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि अठारह ही पापो का सेवन करूँगा। उपरोक्त बात सुनकर वह श्रावक अपना धर्म न छोड़े तब यदि कोई यह कल्पना करे कि "परिग्रह की मर्यादा रखना पाप है तथा क्रोध, मान, माया, लोभ आदि पापो को छुड़ाने मे पाप है।" तो वह मूर्ख कहलायगा।

शास्त्रो से यह बात स्पष्ट ज्ञात होती है कि पाप छुड़ाने के लिए अपने धर्म का त्याग नही किया जाता ॥२२॥

(कहे) पाप छोड़ावणो धर्म में,
पिण धर्म तो छोड़े नाँय रे जीवा।
धर्म न छोड़े तेहथी,
सेटण प न थाय रे जीवा ॥ सो० २३ ॥

भावार्थ :—तब विवश होकर उन लोगो को यह कहना पड़ता है कि झूठ, चोरी आदि पापों को छुड़ाना तो धर्म का कार्य है किन्तु इसके लिए अपना धर्म नहीं छोड़ा जा सकता। अपना धर्म नहीं छोड़ा जाता इससे झूठ, चोरी आदि को छुड़ाना पाप है ऐसी स्थापनी नहीं की जा सकती ॥२३॥

(तो) जीवरक्षा रो द्वेष छो. ने,
समभा लावो मन माँय रे जीवा।
धर्म छो. अनुकम्पा । रे,
अनुकम्पा सावज नाँय रे जी ।॥ मो० २४॥

भावार्थ :—तब सब जीवों के हितैषी ज्ञानी पुरुष उन भोले भाइयों से कहते हैं कि आप लोगो के हृदय मे जीवरक्षा-अनुकम्पा के प्रति जो द्वेष गुरुओं ने भर दिया है उसे निकालकर अपने दय मे समभाव स्थापित करो और शान्त चित्त होकर विवेक-पूर्वक इस बात को समझो कि धर्म छोड़कर यदि अनुकम्पा नही की जाती तो इससे अनुकम्पा सावद्य या मोहरूप नहीं हो सकती, अनुकम्पा करना पाप है ऐसी स्थापना नहीं की जा सकती ॥२४॥

धर्म छोड़ मनुष हीं रा या,
तेथी नुष चायाँ पाप रे जीवा।
ोटी सर । थाहरी,
इण न्याय थी जाणो साफ रे जीवा ॥ मो० २५॥

भावार्थ :—इसी तरह अरणक श्रावक ने अपने धर्म को छोड़कर जहाज मे स्थित मनुष्यो की रक्षा नहीं की। इससे मनुष्यों की रक्षा करना पाप है, यह म्हारी श्रद्धा मिथ्या है ॥२५॥

इम लेवे अरणक तणो,
नुकम्पा उठावण काज रे जीवा।
ते मूढ़ अज्ञानी जीवड़ा,
छोड़ी धर्म ने भेष री लाज रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥२६॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के सावद्य—पापकारी स्थापित करने के लिए जो लोग अरणक श्रावक का दृष्टान्त देते हैं वे मूढ-अज्ञानी है। साधु का भेष पहनकर वे साधुभेष को लजाते हैं और साथ मे धर्म को भी लजाते है। भगवान् उन्हें सद्‌बुद्धि दे, यही अभ्यर्थना है ॥२६॥

३—अधिकार माता को बचाने से चुलणीपिया के व्रतादि का भङ्ग नहीं हुआ

संक्षिप्त कथा :—

वाराणसी (बनारस) नगरी मे जितशत्रु राजा राज्य करता था। वहाँ चुलणीपियर (चुलनीपिता) नाम का एक गाथापति रहता था। वह सब तरह से सम्पन्न और अपरिभूत था। उसकी माता का नाम भद्रा था और पत्नी का नाम श्यामा था। चुलनी-पिता के पास बहुत ऋद्धि थी। आठ करोड़ सोनैये जाने में

रक्खे हुए थे, आठ करोड़ व्यापार मे और आठ करोड़ प्रविस्तार (घर बिखेरा) मे लगे हुए थे। गायो के आठ गोकुल थे अर्थात् अस्सी हजार गायें थी। वह नगर मे प्रतिष्ठित और मान्य था।

एक समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी वहाँ पधारे। वह भगवान् को वन्दना-नमस्कार करने गया। भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर उसने श्रावक के बारह व्रत अङ्गीकार किये। एक समय पौषधोपवास कर वह पौपधशाला मे बैठा हुआ धर्मध्यान कर रहा था। अर्द्धरात्रि के समय उसके सामने एक देव प्रकट हुआ और कहने लगा कि यदि तू अपने व्रत-नियमादि को नही भांगेगा तो मै तेरे बड़े लड़के को यहाँ लाकर तेरे सामने उसकी घात करूँगा फिर उसके तीन टुकड़े करके उबलत हुए गर्म तेल की कड़ाही मे डालूँगा, उसके शूले बनाऊँगा और वह खून और शूले तेरे शरीर पर छिड़कूँगा जिससे तू आर्त्तरौद्र ध्यान करता हुआ अकाल में ही मृत्यु को प्राप्त होगा। देव ने इस प्रकार दो-तीन बार कहा किन्तु चुलनीपिता जरा भी भयभ्रान्त न हुआ और न अपने व्रत-नियमादि से विचलित हुआ। तब देव ने उसके बड़े लड़के को उसके सामने मारकर तीन टुकड़े किये, कड़ाही में उबाल कर उनके शूले किये और चुलनीपिता के शरीर पर खून छिड़का। तथापि वह अपने व्रत-नियमादि से विचलित नही हुआ। तब देव ने उसके दूसरे और तीसरे पुत्र को भी मार कर ऐसा ही किया किन्तु चुलनीपिता अपने व्रत-नियमादि से विचलित नहीं हुआ। तब वह देव कहने लगा कि हे अनिष्ट के कामी, चुलनीपिता श्रावक! यदि तू अपने व्रत-नियमादि को नहीं तोड़ता है तो अब मै देवगुरु तुल्य पूजनीय तेरी माता को घर से लाता हूँ और इसी तरह उसकी भी घात करके उसका तेरे शरीर पर छिड़कूँगा।

देव के इन वचनो को सुनकर चुलनीपिता के मन मे विचार उत्पन्न हुआ कि यह पुरुष अनार्य प्रतीत होता है जो मेरी देवगुरु-तुल्य पूजनीय माता को भी मार देना चाहता है। इसे पकड़ लूँ और मारूँ। ऐसा विचार कर क्रोध करके वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ा किन्तु उसी समय देव तो आकाश मे भाग गया। चुलनीपिता के हाथ मे एक खम्भा आ गया। उसे पकड़कर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा और कोलाहल करने लगा। उस कोलाहल को सुनकर उसकी माता भद्रा वहाँ आई और कहने लगी कि हे पुत्र ! तुम ऐसे जोर-जोर से क्यो चिल्लाते हो ? तब चुलनीपिता ने सारा वृत्तान्त अपनी माता से कहा। तब वह कहने लगी कि हे पुत्र ! कोई भी पुरुष तुम्हारे किसी भी पुत्र को घर से नहीं लाया है और न तेरे सामने मारा ही है।

"एस णं केइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ। एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे, तं णं तुमं एयाणिं भग्गवए भग्गणियमे भग्गपोसहे विहरसि"

टीका :—'भग्गवए' ति भग्नव्रतः स्थूलप्राणातिपातविरतेर्भावतो भग्नत्वात् तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात्। सापराधस्यापि व्रताविषयीकृतत्वात्। भग्ननियमः कोपोदयेन उत्तरगुणस्य क्रोधाभिग्रहरूपस्य भग्नत्वात्। भग्नपौषधः अव्यापारपौषधरूपस्य भङ्गत्वात्॥

अर्थात्—यह किसी ने तुम्हे उपसर्ग दिया है। तुमने जो देखा है वह मिथ्या दृश्य था। इस समय तुम्हारे व्रत-नियम और पौषध होहल्ला मचाने से और क्रोध करने से नष्ट हो गये है।

टीका का अर्थ :—चुलनीपिता श्रावक का स्थूल प्राणातिपात विरमणव्रत भाव से नष्ट हो गया क्योंकि वह क्रोध करके हिंसक को मारने के लिए दौड़ा था। पौषधव्रत मे अपराधी प्राणी को भी मारने का त्याग होता है। उत्तरगुण—क्रोध नहीं करने का जो अभिग्रह था वह क्रोध करने से नष्ट हो गया और अयतनापूर्वक दौड़ने से अव्यापाररूप पौषध का भङ्ग हुआ है॥

इसलिए हे पुत्र! अब तुम दण्ड प्रायश्चित्त लेकर अपनी आत्मा को शुद्ध करो।

चुलनीपिता श्रावक ने अपनी माता की बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया और यथाविधि दण्ड प्रायश्चित्त लिया। बहुत वर्षों तक श्रावकव्रतों का पालन कर अन्त मे समाधिमरण को प्राप्त कर सौधर्म देवलोक मे उत्पन्न हुआ। वहाँ से चवकर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेगा और उसी भव से मोक्ष जायगा।

❀ ढाल ❀

अरणक नी परे जाणज्यो,
चुलणीपिया नी बा रे जीवा।
पुत्र मार शूला कर छाँटता,
कम्पा रा ी ात रे जीवा॥
मोह नुकम्पा न जाणिये ॥१॥

भावार्थ :—जिस तरह अरणक श्रावक के अधिकार मे कहा गया है उसी तरह चुलनीपिता श्रावक के विषय मे भी समझना

चाहिए। पुत्रो को मारकर उनके शूले बनाकर अपने शरीर पर खून छिड़कने वाले देव पर भी उसने अनुकम्पा की थी ॥१॥

अपराधी ने नहीं मारणो,
कीधो पोसा माँही नेम रे जीवा।
तेथी पुत्र रा मारणहार पे,
अनुकम्पा राखी धर प्रेम रे जीवा ॥ मो० २ ॥

भावार्थ :—अपराधी को भी न मारने का उसने पौषध मे नियम किया था। इसलिए पुत्रों को मारने वाले पर भी उसने अनुकम्पा रक्खी थी ॥२॥

मूढ़मति उल्टी हे,
जाँ रे दया नहीं दिल माँय रे जीवा।
करुणा न की अँगजात नी,
एवी खोटी बोले वाय रे जीवा ॥ मो० ३ ॥

भावार्थ :—जिनके हृदय मे दया नही है ऐसे मूढ़ अज्ञानी कहते है कि "चुलनीपिता श्रावक ने अपने पुत्रो की भी अनुकम्पा नहीं की। यदि अनुकम्पा करने मे धर्म होता तो वह पुत्रो की अवश्य अनुकम्पा करता। उसने अपने-पुत्रो की भी अनुकम्पा नहीं की, इससे यह साफ जाहिर होता है कि अनुकम्पा करना धर्म का कार्य नही है।" इस प्रकार वे मिथ्या भाषण करते हैं ॥३॥

जो देव इण विध बोलतो,
थारा पुत्र बचाया में धर्म रे जीवा।
तू सरधे तो छोड़ूँ जीवता,
हीं तो घा करूँ तज शर्म रे जी ।॥ मो० ४॥

दा श्रावक धर्म न श्रद्धतो,
देव करतो पुत्र री घात रे जीवा।
तो करुणा न की गज तणी,
या ँची होती तुम बात रे जीवा ॥ मो० ५॥

भावार्थ :—इस प्रकार मिथ्या भाषण करने वाले उन लोगों को बुद्धिमान् पुरुष कहते है कि "यदि देव इस प्रकार कहता कि यदि तू अपने पुत्रो को बचाने में धर्म मानता है तो मै इन्हें जीवित छोड़ दूं अन्यथा मै इनकी घात करूँगा।"

इस तरह 'पुत्रों को बचाने मे धर्मश्रद्धा न करने की' शर्त श्रावक के सामने वह देव र ता और तब चुलनीपिता श्रावक उसमें धर्मश्रद्धान न करता तब तो उन लोगो का कथन सत्य होता कि अनुकम्पा करना धर्म का कार्य नही और इसीलिए उसने अपने पुत्रों की अनुकम्पा नहीं की ॥४-५॥

पिण देव तो बोल्यो इण परे,
थारे जीव दया रो व्रत रे जीवा।
ते तो हिंसा करसी हीं,
थारा पुत्र मारूँ इ शर्त रे जीवा ॥ मो० ६॥

तेथी श्रावक व्रत तोड्या नहीं,
दयाधर्म हिरदा में ध्याय रे जीवा।
तुम कहो करुणा आणी नहीं,
यो तो झूठो थारो न्याय रे जीवा ॥ मो० ७॥

भावार्थ :—परन्तु देव ने तो उस श्रावक के सामने यह शर्त रक्खी कि "तेरे जीवदया का व्रत है अर्थात् स्थूलप्राणातिपात-विरमण—हलते-चलते निरपराधी त्रस जीवो की हिंसा न करने का व्रत है और आज पौषध मे तो सापराधी और निरपराधी दोनो प्रकार के प्राणियो को न मारने का व्रत है। इस अहिंसा-व्रत को तोड़कर यदि तू हिंसा न करेगा तो मै तेरे पुत्रो की घात करूँगा।" देव की इस शर्त को सुनकर श्रावक ने अपने अहिंसा-व्रत को तोड़ा नहीं प्रत्युत हृदय मे दयाधर्म का ध्यान करता हुआ अपने अहिंसाव्रत पर दृढ़ रहा।

वे लोग कहते हैं कि 'श्रावक ने करुणा नहीं की' यह उनका कथन मिथ्या है ॥६–७॥

देव कहे हिंसा रसी नहीं,
थारे देव गुरु सम माय रे जीवा।
तिण ने मार शूला र छाँटसूँ,
दयाधर्म न मुझ सुहाय रे जीवा ॥ मो० ८॥

भावार्थ :—श्रावक के सामने उसके तीनो पुत्रो की घात करने पर भी जब वह अपने व्रत-नियम से विचलित नहीं हुआ

तब देव कहने लगा कि मुझे दयाधर्म अच्छा नहीं लगता इस-लिए मैं तुझे दयाव्रत—अहिंसाव्रत से विचलित करूँगा। यदि तू अपने अहिंसाव्रत को तोड़कर हिंसा न करेगा तो मैं तेरी माता, जो कि तेरे लिए देवगुरु के समान पूजनीय है, उसकी तेरे सामने घात करूँगा, उसके माँस के शूले बनाऊँगा और उसका रुधिर तेरे शरीर पर छिड़कूँगा ॥८॥

इम सुण चुलणीपिया ोपियो,
यो तो पुरुष नारज थाय रे जीवा।
पक ू, मारूँ एहने,
इम चिन्ती लारे धाय रे जीवा ॥ मो० ६॥

देव गयो ाश में,
इण रे थाँबो ायो हाथ रे जीवा।
कोलाहल ीधो घणो,
आई भद्रा । रे जीवा ॥ ो० १०॥

वच्छ! विरूप देख्यो मे,
नहीं हुई पुत्रों री ात रे जीवा।
पुरुष मारण तुम उठिया,
नेम भागा ात रे जीवा ॥ मो० ११॥

भावार्थ :—देव के उपरोक्त वचनों को सुनकर चुलनीपिता पित हो गया। उसके मन मे विचार उत्प आ कि यह पुरुष नार्य ीत होता है। इसे पकड़ लूँ और । ऐसा विचार

कर क्रोध करके वह उसे पकड़ने के लिए दौड़ा किन्तु उसी समय देव तो आकाश से भाग गया। चुलनीपिता के हाथ मे एक खम्भा आ गया। उसे पकड़कर वह जोर-जोर से चिल्लाने लगा और कोलाहल करने लगा। उस कोलाहल को सुनकर उसकी माता भद्रा वहाँ आई और कहने लगी कि पुत्र! तुम इस प्रकार कोलाहल क्यो कर रहे हो? तब चुलनीपिता ने सारा वृत्तान्त अपनी माता से कहा। तब वह कहने लगी कि हे पुत्र! तुम्हारे पुत्रो को किसी ने नहीं मारा है। किसी ने तुम्हे यह उपसर्ग दिया है। तुमने जो देखा है वह मिथ्या दृश्य था। तुम्हारे व्रत-नियम और पौषध भग्न हो गये है अर्थात् उस पुरुष को मारने के लिए तुम क्रोध करके दौड़े थे। इसलिए भाव से स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रत का भङ्ग हुआ है। पौषधव्रत मे स्थित श्रावक का सापराधी और निरपराधी दोनो तरह के प्राणियो की हिंसा का त्याग होता है। क्रोध के आने से कषायत्यागरूप उत्तरगुण (नियम) का भङ्ग हुआ है और अयतनापूर्वक दौड़ने से पौषध का भङ्ग हुआ है। इसलिए हे पुत्र! अब तुम दण्ड प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि करो।

माता के कथनानुसार चुलनीपिता श्रावक ने दण्ड प्रायश्चित्त लेकर अपनी शुद्धि की ॥६-११॥

इहाँ झूठा बोला इम कहे,
जाँ रे नहीं अनुकम्पा सूँ प्रेम रे जीवा।
अनुकम्पा करी जननी तणी,
ते सूँ भागा व्रत नेम रे जीवा ॥ मो० १२॥

घेटा हो पर कहे,
मिथ्यात रो चढ़ियो पूर रे जीवा।
ज्ञानी कहे हिवे साँभलो,
होकर सतवादी शूर रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

भावार्थ :—जिनको नुकम्पा से प्रेम नहीं है ऐसे अनुकम्पा-द्वेषी और मानो जिनके हृदय में मिथ्यात्व का पूर चढ़ा हुआ है ऐसे मिथ्यात्वी, मिथ्या भाषण करने वाले धृष्ट-निर्लज्ज बन-कर इस प्रकार कहते है कि "चुलनीपिता श्रावक ने माता की नुकम्पा की थी इसलिए अनुकम्पा करने से उसके व्रत-नियम ौर पौषध भंग हो गये थे।" इनका यह कथन शा विरुद्ध है। ानी पुरुष इसका न्यायपूर्वक कारण बताते हैं जिसका ध्यान-पूर्वक श्रवण करो ॥१२-१३॥

त्याग कि हिंसा तणा,
तेथी रे ोय रे ीवा।
ते ागे हिं ियाँ,
यो न्याय विचारी ोय रे जीवा ॥ मो० १४ ॥

नुक हिंसा ीं,
तेने त्याग्याँ नहीं था रे जीवा।
जो अनुकम्पा त्या दे,
निरदयी कह्यो ि राय रे जीवा ॥ मो० १५ ॥

भावार्थ :—हिं ा पाप है उसका त्याग करने से श्रावक के ोता है। इस प्र र अहिंसाव्रत को स्वीकार करके यदि

श्रावक हिंसा करे तो उसका अहिंसाव्रत भङ्ग हो जाता है किन्तु अनुकम्पा हिंसा नहीं है और अनुकम्पा का त्याग करने से कोई व्रत नहीं होता है प्रत्युत अनुकम्पा का त्याग करने वाले को तीर्थंकर भगवान् ने निर्दयी कहा है ॥१४-१५॥

अनुकम्पा थी व्रत नीपजे,
तेथी व्रत री किम हुवे घात रे जीवा।
अमृत थी मरणो कहे,
या तो मूढ़मत्यॉं री बात रे जीवा ॥ मो० १६ ॥

मारे ते विष जाणज्यो,
अमृत थी रक्षा थाय रे जीवा।
अनुकम्पा थी व्रत भागे नहीं,
हिंसा हुआँ व्रत जाय रे जीवा ॥ मो० १७ ॥

अनुकम्पा थी व्रत भागा कहे,
ते डूबा कालीधार रे जीवा।
वली भोलों ने भरमाय ने,
पकड़ डुबोया लार रे जीवा ॥ मो० १८ ॥

भावार्थ :—अनुकम्पा से तो व्रत निपजता है तो फिर अनुकम्पा से व्रत भङ्ग कैसे हो सकता है? अनुकम्पा अमृत के समान है और हिंसा विष के समान है। जिस प्रकार अमृत से प्राणों की रक्षा होती है और विष से प्राणों का विनाश (मरण) होता है उसी प्रकार अनुकम्पा रूपी अमृत से व्रत की रक्षा होती

है और हिंसा रूपी विष से व्रत का भङ्ग होता है किन्तु अनुकम्पा से व्रत का भङ्ग नही होता। जो लोग अनुकम्पा से व्रत का भङ्ग होना कहते हैं उन्हें उन मूर्खों की श्रेणी मे समझना चाहिए जो अमृत से मरण होना कहते हों।

जो लोग अनुकम्पा से व्रत का भंग होना कहते है वे अज्ञानी जीव स्वयं कालीधार डूब गये और भोले जीवों को भ्रम में डाल कर उन्होने उनको भी साथ मे डुबाया है। ऐसे अज्ञानी जीवों की नरकनिगोदादि के सिवाय दूसरी गति हो नही सकती ॥१६-१८॥

भग्गवए भग्गनिय रो,
लि भग्ग पोषध रो र्थ रे जीवा।
टीका में कियो इण भाँत थी,
थें च रो क्यों व्यर्थ रे जीवा ॥ मो०-१६ ॥

कोप करी ने दोड़ियो,
पुरुष रण रे परिणाम रे जीवा।
अणुव्रत भागो तेहथी,
रही तिण म रे जीवा ॥ मो० २० ॥

अपराधी पिण नहीं मारणो,
या पोषध री मर्याद रे जीवा।
हु ा मारण तणा,
भागो जो हठवाद रे जीवा ॥ मो० २१ ॥

क्रोध करण रा त्याग था,
पुरुष पर आयो कोप रे जीवा।
नियम उत्तरगुण भागियो,
जिन आणा दीवि लोप रे जीवा ॥ मो० २२॥

न कल्पे पोषधे दोड़णो,
ते तो दौड्या पुरुष रे संग रे जीवा।
दौड्याँ अजतना हुई,
पोषध रो हुओ भङ्ग रे जीवा ॥ मो० २३॥

भावार्थ:—चुलनीपिता श्रावक के अध्ययन मे 'भग्गवए भग्गणियमे भग्गपोसहे' ये तीन शब्द आये हैं। इनका टीका मे अर्थ इस प्रकार किया है:—

'भग्गवए' ति भग्नत्र : स्थूलप्राणातिपात विरतेर्भावतो भग्नत्वात् तद्विनाशार्थं कोपेनोद्धावनात्। सापराधस्यापि व्रताविषयीकृतत्वात्। भग्ननियमः, कोपोदयेन उत्तरगुणस्य क्रोधाभिग्रहरूपस्य भग्नत्वात्। भंग्नपौषधः, व्यापार पौषधरूपस्य भंगत्वात्।

अर्थात्—चुलनीपिता श्रावक का स्थूलप्राणातिपातविरमण व्रत द्रव्य से नही किन्तु भाव से नष्ट हो गया क्योंकि वह क्रोध करके उस पुरुष को मारने के लिए दौड़ा था। पौषध व्रत मे अपराधी प्राणी को भी न मारने का नियम होता है। क्रोध नहीं करने का जो नियम था वह नियम उस पुरुष पर क्रोध करने से

नष्ट हो गया। पौषध मे अयतनापूर्वक दौड़ना नहीं कल्पता है किन्तु चुलनीपिता श्रावक क्रोध करके उस पुरुष के पीछे दौड़ा था इसलिए पौषध का भंग हुआ ॥१९-२३॥

यो सत्य अर्थ सूतर तणो,
टीका थी लीजो जोय रे जीवा।
खोटा अर्थ कुगुराँ तणा,
मा जो स्याणा होय रे जीवा ॥ मो० २४ ॥

भावार्थ :—शा के उपरोक्त पाठ का जो टीकानुसार अर्थ किया गया है वही सत्य है। अतः बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि वे इस सत्य अर्थ को ही स्वीकार करे और कुगुरुओं द्वारा किये गये टे अर्थ को छोड़ दें ॥२४॥

उपासकदशाङ्ग सूत्र के तीसरे अध्ययन मे चुलनीपिता श्रावक ा वर्णन किया गया है। इसके आगे चौथे अध्ययन मे सुरादेव श्रावक का वर्णन किया गया है। उससे यह विषय और भी स्पष्ट हो जाता है इसलिए अब सुरादेव श्रावक का वर्णन किया जाता है।

'अनुकम्पा आणी ननी णी,
ते सूँ मागा ने नेम रे जीवा।'
एवी ोटी थाप ोई करे,
तेने उत्तर दीजे एम रे जीवा ॥ मो० २५ ॥

भावार्थ :—"माता की अनुकम्पा करने से चुलनीपिता श्रावक के व्रत-नियम भङ्ग हो गये थे" इस प्रकार जो ोटी स्थापना रते है उन्हें इस प्रकार उत्तर देना चाहिए :—

सुरादेव श्रावक तणी,
चुलणीपिया सम बात रे जीवा।
देव कष्ट दियो पुत्राँ तणो,
तिण में विशेष है, इण भाँत रे जीवा ॥ मो० २६ ॥

जो तू दयाधर्म छोड़े नहीं,
तो थारी देह रे माँय रे जीवा।
सोले रोग मैं घालसूँ,
तू मरने दुर्गति जाय रे जीवा ॥ मो० २७ ॥

इम सुण कोप थी दौड़ियो,
चुलणीपिया सम जाण रे जीवा।
व्रत नियम भागा कह्या,
ते समझ ने तज दो ताण रे जीवा ॥ मो० २८ ॥

भावार्थ :—चुलनीपिता और सुरादेव श्रावक की कथा एक समान है, सिर्फ थोड़ी सी विशेषता है वह इस प्रकार है :—

सुरादेव श्रावक पौषध मे बैठा था। किसी देव ने चुलनीपिता श्रावक के समान उसको भी उपसर्ग दिया और उसके तीनों लड़को को उसके सामने मारा। इतने पर भी जब सुरादेव श्रावक अपने व्रत से विचलित नही हुआ तब देव ने उससे कहा कि यदि तू अपने व्रत-नियमादि को भङ्ग नही करेगा तो मै तेरे शरीर मे एक ही साथ श्वास, खाँसी, ज्वर, दाह, कुक्षिशूल, भगन्दर,

अर्श, जीर्ण, दृष्टिरोग, मस्तकशूल, अरुचि, अक्षिवेदना, कर्ण-वेदना, खुजली, उदररोग और कोढ़ ये सोलह रोग डाल दूंगा जिससे मर कर तू दुर्गति मे जायगा ।

उपरोक्त वचनो को सुनकर सुरादेव श्रावक क्रोध करके उस पुरुष को मारने के लिए दौड़ा किन्तु देव तो आकाश मे भाग गया और उसके हाथ मे एक खम्भा आ गया जिसे पकड़कर वह कोलाहल करने लगा । तब उसकी स्त्री धन्या आई और उससे सारा वृत्तान्त सुनकर सुरादेव से कहने लगी कि हे स्वामिन् ! आपके तीनो लड़के आनन्द मे हैं किसी ने उनकी घात नही की है । किसी देव ने आपको यह उपसर्ग दिया है । आपके व्रत-नियम और पौषध भङ्ग हो गये हैं । अतः आप दण्ड प्रायश्चित्त लेकर अपनी आत्मा को शुद्ध करो । तब सुरादेव श्रावक ने दण्ड प्रायश्चित्त लेकर शुद्धि की ॥२६-२८॥

पोषा सामायि में तुमें,
एवी करो छो थाप रे जीवा ।
देह रक्षा कियाँ भागे नहीं,
आगार कहो तुम साफ रे जीवा ॥ मो० २६ ॥

---

* जैसा कि वे 'श्रावक-धर्म-विचार' मे श्रावक के सामायिक की ढाल मे कहते हैं :—

शरीर कपड़ादिक तेहना,
जतन करे सामायिक माँयजी ।
लाय चोरादिक रा भय थकी,
एकान्त स्थानक जयणा से जायजी ॥२४॥

तुम कथने सुरादेव रे,
देहरक्षा थी भागा न व्रत रे जीवा ।
हीवे अनुकम्पा किण री करी,
तिणथी भागा इणारा व्रत रे जीवा ॥ सो० ३० ॥

भावार्थ :—अब भीषण मतानुयायियों से पूछना चाहिए कि "तुम लोग चुलनीपिता के व्रत-नियम और पौषध भँग होने

आपरो तो आगार राखियो,
औरॉ रो नहीं छै आगारजी ।
औराँ ने त्यागया सामाई मुझे,
त्यांने किणविध ले जावे बाहरजी ॥
सिखाजा व्रत आराधिये ॥२७॥

लाय चोरादिक रा भय थकी,
राख्या ते द्रव्य ले जायजी ।
पाखती कपड़ादिक हुवे घणा,
त्यांने तो बाहर न ले जावे तायजी ॥२८॥

राख्या ते द्रव्य ले जावताँ,
सामाई रो भंग न थायजी ।
त्यागया छै त्यांने ले जावताँ,
सामाई रो व्रत भाग जायजी ॥२९॥

ग्यारहवे व्रत की ढाल मे भी लिखा है :—

पोषा ने सामायिक व्रत ना, सरखा छै पच्चखाणजी ।
सामायिक तो मुहूर्त एक नी, पोषो दिवसरात रो जाणजी ॥७॥
पौषा ने सामायिक व्रत मे, याँ दोयाँ मे सरखो छै आगारजी ॥८

का कारण उसकी माता की अनुकम्पा बतलाते हो किन्तु अब यह बतलाओ कि सुरादेव के व्रत-नियम और पौषध भङ्ग क्यों हुए थे? इसने तो किसी की भी अनुकम्पा नहीं की थी फिर इसके व्रत-नियमादि भङ्ग होने का क्या कारण है? यदि तुम कहो कि सुरादेव ने अपनी अनुकम्पा की थी इसलिए उसके व्रत-नियमादि भङ्ग हुए तो यह तुम्हारा कथन तुम्हारे मत से विरुद्ध होता है क्योंकि तुम्हारे मत के प्रवर्तक भीषणजी ने अपनी अनुकम्पा करने से व्रत-नियमादि का भङ्ग होना नहीं माना है, उन्होंने अपनी ढालो मे साफ लिखा है कि सामायिक और पौषध में अपनी अनुकम्पा (आत्मरक्षा) करने का आगार होता है। फिर सुरादेव श्रावक के व्रत-नियम और पौषध भंग होने का क्या कारण है? यदि कहो कि सुरादेव के व्रत-नियम और पौषध अपनी अनुकम्पा के कारण भंग नहीं हुए थे किन्तु अपराधी को मारने के लिए क्रोधित होकर दौड़ने से भंग हुए थे तो यही बात चुलनीपिता श्रावक के विषय मे भी तुमको माननी चाहिए।

कथने थें जाण लो,
चुलनीपिया नी बात रे जीवा।
जननी अनुकम्पा थ ी,
नहीं हुई व्रत री घा रे जीवा ॥ मो० ३१ ॥

हिंसा करण ने दौड़ियो,
वली क्रोध ायो तिण वार रे जीवा।
अजतना व्यापार थी,
त नें पोषध टूटी कार रे जीवा ॥ मो० ३२ ॥

भावार्थ :—सुरादेव के समान ही चुलनीपिता श्रावक भी अपराधी को मारने के लिए क्रोधित होकर दौड़ा था। इसलिए हिंसा करने के भाव आने से, क्रोध आने से और अयतनापूर्वक दौड़ने से क्रमशः उसके व्रत, नियम और पौषध भंग हुए थे किन्तु माता की अनुकम्पा आने से नहीं।

यदि माता के ऊपर अनुकम्पा करने से चुलनीपिता का व्रत भंग होना मानते हो तो फिर सुरादेव का अपने पर अनुकम्पा करने से व्रतभंग मानना पड़ेगा और जैसे चुलनीपिता की मातृ-अनुकम्पा को सावद्य कहते हो उसी तरह सुरादेव की अपनी अनुकम्पा को भी सावद्य कहना होगा। ऐसी दशा में भीषणजी ने अपनी ढालों में सामायिक और पौषध में अपने पर अनुकम्पा करके अग्नि, सर्पादि के भय से बचने के लिए जयणा के साथ निकल जाने की जो आज्ञा दी है वह बिलकुल मिथ्या ठहरेगी, अतः भीषण-मतानुयायी अपनी अनुकम्पा को सावद्य नहीं कह सकते। इसलिए जैसे सुरादेव की अपनी अनुकम्पा सावद्य नहीं थी और उससे व्रत-नियम और पौषध भंग नहीं हुए थे उसी तरह चुलनीपिता श्रावक की भी मातृ-अनुकम्पा सावद्य नहीं थी और उससे उसके व्रत, नियम और पौषध भंग नहीं हुए थे। इसलिए चुलनीपिता का उदाहरण देकर अनुकम्पा को सावद्य बतलाना अज्ञानियों का कार्य है।

व्रत भागे हिंसा थकी,
यो निश्चय लीजो जाण रे जीवा।
अनुकम्पा थी रक्षा हुवे,
(तेथी) व्रत भागो कहे अणजाण रे जीवा॥
मोह अनु म्पा न जाणिये ॥२३॥

भावार्थ :—उपरोक्त सारे कथन से यह निष्कर्ष निकलता है कि हिंसा से व्रत भंग होता है और अनुकम्पा से व्रत की रक्षा होती है। अतः अनुकम्पा से व्रतभंग कहना अज्ञानियों का कार्य है ।।३३।।

४–अधिकार 'नमिराज ऋषि ने अनुकम्पा नहीं की' ऐसा कहने वालों को उत्तर
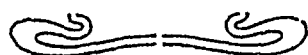
संक्षिप्त कथा :—

मिथिला नगरी मे महाराजा नमिराज राज्य करते थे। एक समय उनके शरीर मे दाह-ज्वर की वेदना उत्पन्न हुई। उनके शरीर पर चन्दन का लेप करने के लिए उनकी महारानियाँ चन्दन घिसने लगीं। हाथ मे पहनी हुई चूड़ियो की परस्पर रगड़ से उत्पन्न होने वाला शब्द महाराजा की वेदना मे और वृद्धि करने लगा। वह शब्द उनसे सहन नही हो सका इसलिए प्रधान मन्त्री को बुलाकर उन्होने कहा—यह शब्द मेरे से सहन नहीं होता, इसे बन्द कराओ। तब चन्दन घिसने वाली रानियो ने सौभाग्यचिन्ह स्वरूप हाथ मे सिर्फ एक-एक चूड़ी रखकर बाकी सब उतार दी। चूड़ियो को उतार देने से तत्काल शोर बन्द हो गया। थोड़ी देर बाद नमिराज ने पूछा—क्या काय पूरा हो गया ? मन्त्री ने जवाब दिया—नही महाराज ! कार्य अभी हो रहा है। नमिराज ने पूछा—तब शोर बन्द कैसे हो गया ? मंत्री ने ऊपर की हकीकत कह सुनाई। इस बात को सुनते ही नमिराज

के हृदय मे यह भाव उठा कि जहाँ पर बहुत होते हैं वहाँ शोर होता है, जहाँ पर एक होता है वहाँ पर शान्ति रहती है। इस गूढ़चिन्तन के परिणामस्वरूप नमिराज को जातिस्मृति ज्ञान पैदा हो गया। शान्तिप्राप्ति के लिए समस्त बाह्य बन्धनो का त्याग कर एकाकी विचरने की उन्हे तीव्र इच्छा जागृत हुई। वे राजपाट एवं भोगविलासो को छोड़कर मुनि बनकर एकाकी विचरने लगे। उस अपूर्व त्यागी के त्याग, निरासक्ति और निर्ममत्व भाव की परीक्षा करने के लिए इन्द्र ब्राह्मण का रूप बनाकर नमिराज के पास आया। उनके सामने ऐसा दृश्य उपस्थित किया कि मानो मिथिला नगरी जल रही है। फिर ब्राह्मण वेषधारी इन्द्र ने नमिराज से कहा कि देखो तुम्हारे सामने यह अग्नि तुम्हारी मिथिला को जलाकर अन्तःपुर सहित तुम्हारे राजमहलो को जला रही है। तुम इधर क्यो नही लक्ष्य देते ? क्या तुम्हे अपनी वस्तु प्रिय नही है ? तब नमिराज ने उत्तर दिया कि हे विप्र ! मिथिला नगरी मे मेरा कुछ भी नही है कारण कि मै अकेला हूँ, ज्ञानदर्शन मेरा स्वरूप है इसके अतिरिक्त मेरा कुछ भी नही है। यदि मेरे हृदय मे प्रिय और अप्रियपने का भाव होता तो मै पुत्र-कलत्रादि का त्याग कदापि नहीं कर सकता। ी-पुत्रादि का एवं समस्त सांसारिक बन्धनो का त्याग कर देने से अन्तःपुर और राजभवन आदि से अब मेरा कोई सम्बन्ध नहीं रहा है इसलिए इनके जलते रहने पर भी मेरा कुछ नही जलता है। ज्ञानदर्शन ही मेरा अर्थात् आत्मा का स्वरूप है। इसलिए जो मेरा है वह जल नही सकता और जो जलता है वह मेरा नही।

नमिराज के उपरोक्त उत्तर को सुनकर इन्द्र को यह दृढ़ विश्वास हो गया कि इनके हृदय मे सांसारिक पदार्थों के प्रति

लेशमात्र भी मोह और ममत्वभाव नहीं है। इसी प्रकार इन्द्र ने और भी कई प्रश्न किये जिनका उत्तर नमिराजर्षि ने बहुत ही मार्मिक और भावपूर्ण दिया है। इनके प्रश्नोत्तरों का वर्णन उत्तराध्ययन सूत्र के नवे अध्ययन में बड़े ही रोचक शब्दों मे है-दिया गया है।

जब इन्द्र अनेक उपायो से नमिराजर्षि को अपने धर्म से नही डिगा सका तब देवेन्द्र ने अपना कृत्रिम ब्राह्मण का रूप त्याग दिया और अपना असली रूप धारण किया। तत्पश्चात् वह नमिराजर्षि की भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगा। उनके निर्ममत्व भाव की एवं अन्य गुणो की प्रशंसा करके और भक्तिपूर्वक उनके चरणो मे वन्दना करके बड़े हर्ष के साथ इन्द्र स्वर्गलोक को चला गया।

❀ ढाल ❀

नमिराज ऋषि संयम लीनो,
प्रत्येक बोधी अणगार रे जीवा।
निज हित करण ने उठिया,
पर री नहिं रे सारसंभार रे जीवा॥
मोह नुकम्पा न जाणिये॥१॥

दीक्षा देवे केहने,
देवे श्राव व्रत रे जीवा।
उपदेश पिण देवे हीं,
पूछयाँ उत्तर देवे सत्य रे जीवा॥ मो० २॥

अनुकम्पा करे आपणी,
पर री कल्पे तस नाय रे जीवा।
इन्द्र आयो तिण ने परखवा,
त्याँ माया विविध बणाय रे जीवा ॥ मो० ३॥

भावार्थ :—मिथिला नगरी के राजा नमिराज संयम अँगीकार कर मुनि बन गये। वे प्रत्येक बुद्ध मुनि थे। प्रत्येक बुद्ध साधुओं का आचार स्थविरकल्पी साधुओं से कितने ही अँशों में भिन्न होता है। प्रत्येक बुद्ध मुनि अपना ही हित करते हैं वे दूसरों का हित नहीं करते, मरते प्राणी की प्राणरक्षा भी वे नहीं करते, किसी को दीक्षा भी नहीं देते, शिष्य नहीं बनाते, श्रावकव्रत ग्रहण नहीं करवाते, उपदेश नहीं देते, आहार-पानी लाकर किसी साधु की वैयावच्च भी नहीं करते, वे संघ के अन्दर न रहकर अकेले ही रहते हैं किन्तु किसी के प्रश्न पूछने पर वे सत्य उत्तर देते है। वे अपनी ही अनुकम्पा करते हैं दूसरों की अनुकम्पा नहीं करते। इस प्रकार प्रत्येक बुद्ध मुनियों का कल्प है। नमिराजर्षि भी प्रत्येकबुद्ध मुनि थे। उनकी निर्मोहता और निर्ममत्वभाव की परीक्षा करने के लिए स्वयं इन्द्र आया। अनेक प्रकार की माया बनाकर वह नमिराज से कहने लगा :—

महल अन्तेवर थाहरा,
अगनि में बले परतख रे जीवा।
तुम स्वामी छो एहना,
ज्ञानादि नी परे र रे जीवा ॥ मो० ४॥

भावार्थ :—हे नमिराज ! देखो यह अग्नि तुम्हारे महलों को और अन्तःपुर को जला रही है। तुम इनके स्वामी हो। जिस प्रकार तुम अपने ज्ञानदर्शनचारित्र की रक्षा कर रहे हो उसी प्रकार तुम्हें इनकी भी रक्षा करनी चाहिए॥४॥

तब [ऋषिजी इम कहे,
ज्ञानादिक गुण छै मुझ रे जीवा।
एथी बीजी वस्तु नहीं माहरी,
निश्चय नय री बताई सूझ रे जीवा ॥ मो० ५ ॥

मुझनो ते [ ] बले नहीं,
बले ते न माहरो होय रे जीवा।
यह मिथिला बल [ ] थ [ ],
ज्ञानादि श होय रे [ ]ीवा ॥ मो० ६ ॥

भावार्थ :—तब नमिराजर्षि ने उत्तर दिया कि नि यनय के अनुसार मेरा (आत्मा का) ज्ञानदर्शनचारित्रस्वरूप है। इसके अतिरिक्त मेरा कुछ भी नही है। जो मेरा (आत्मा का) है वह त्रिकाल मे भी जल नही सकता और जो जलता है वह मेरा (आत्मा का) नहीं हो सकता। इसलिए मेरे (आत्मा के) जो [ ]नादिक गुण हैं वे मिथिला के जलने पर जल नहीं सकते हैं॥ ५-६॥

केई ज्ञानी इम कहे,
[ ]नुकम्पा री करवा घात रे जीवा।

'नमिराज ऋपि आणी नहीं,
मोह अनुकम्पा री बात र जीवा' ॥ मो० ७॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेपी कितनेक अज्ञानी जीव अनुकम्पा को उठाने के लिए इस प्रकार कहते हैं कि जलती हुई सिथिला पर नमिराजर्पि ने मोह-अनुकम्पा नहीं की। यदि अनुकम्पा करने से धर्म होता तो नमिराजर्पि मिथिला पर अवश्य अनुकम्पा करते और अन्तःपुर की रक्षा करते। नमिराजर्षि ने मिथिला पर अनुकम्पा नहीं की और अन्तःपुर की रक्षा नहीं की इससे साबित होता है कि अनुकम्पा करना पाप है ॥७॥

अनुकम्पा रो प्रश्न छै नहीं,
नहीं उत्तर में तेनी बात रे जीवा।
थाँ झूठा गाल बजाविया,
थांरे मोह उदय मिथ्यात रे जीवा ॥ मो० ८॥

अन्तेवर रक्षा ना करी,
तेहथी अनु म्पा में पाप रे जीवा।
एवी करे कोई थापना,
तो उत्तर सुणजो साफ रे जीवा ॥ मो० ९॥

भावार्थ :—शक्रेन्द्र ने नमिराजर्पि से जो प्रश्न किया है वह अनुकम्पा-विषयक प्रश्न नहीं है इसलिए उत्तर मे भी अनुकम्पा का कोई जिक्र नहीं आया है। फिर भी अनुकम्पाद्वेषियों ने झूठमूठ ही यहाँ अनुकम्पा की वात घुसेड़ दी है। इस प्रकार मिथ्या

भाषण करने वालों के मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का उदय है। नमि-राजर्षि ने अन्तःपुर की रक्षा नहीं की इससे कोई यह स्थापना करे कि नुकम्पा करने मे पाप है तो इसका उत्तर इस प्रकार है :—

हिंसा, झूठ, चोरी तणा,
मी रावे त्याग रे जीवा।
वस्तर पि राखे नहीं,
सं में रहे महाभाग रे जी । ॥मो० १०॥

नि हित में तत्पर रहे,
पर साधु रो रे ाज रे जीवा।
प्रत्येकबोधी नि तिके,
पर रो न वंछे साज रे जीवा ॥मो० ११॥

याँ प्रत्येकबोधी रो नाम ले,
कोई मूर्ख रे एहवी थाप रे जीवा।
जो कार्य मित्रऋषि ना करे,
तिण में ोह तणो पाप रे जीवा ॥मो० १२॥

इण लेखे दीक्षा देण में,
वलि विविध करावण नेम रे जीवा।
ते मोह पाप में ठहरसी,
तेने ज्ञ ी तो माने केम रे जीवा ॥मो० १३॥

दीक्षा त्याग व्यावच तणा,
यों कार्य में दोप न कोय रे जीवा।
तिम पर-जीव रक्षा में जाणज्यो,
थीवर ल्पी करे सब कोय रे जीवा॥सो० १४॥

भावार्थ :—नमिराजर्षि प्रत्येक बुद्ध मुनि थे। प्रत्येक बुद्ध साधु का और स्थविरकल्पी साधु का कल्प भिन्न-भिन्न होता है। प्रत्येक बुद्ध मुनि किसी को हिसा, झूठ, चोरी का त्याग नहीं करवाते, वे किसी को दीक्षा नही देते, धर्मोपदेश नही देते, स्वयं वस्त्र नहीं रखते, किसी साधु के संग मे न रहकर अकेले ही विचरते है, आहार-पानी लाकर दूसरे साधुओ की वैयावच्च नहीं करते तथा दूसरे साधुओं की सहायता आप स्वयं नहीं चाहते और उनसे अपना कोई काम नही करवाते। यह प्रत्येकबुद्ध मुनि का कल्प है। ऐसे प्रत्येकबुद्ध मुनि का उदाहरण देकर यदि कोई यह स्थापना करे कि जो कार्य प्रत्येकबुद्ध मुनि नही करे उन सब मे पाप है तो इस हिसाब से दीक्षा देना, हिसा, झूठ, चोरी आदि का त्याग कराना, धर्मोपदेश देना आदि कार्यों मे भी उसे पाप मानना होगा। किन्तु ज्ञानी पुरुष इस बात को कैसे मान सकते है क्योकि ये सब धर्म के कार्य है। जिस प्रकार दीक्षा देना, हिसा, झूठादि का त्याग कराना, साधुओ की वैयावच्च करना ये सब धर्मकार्य हैं, इनमे कोई दोप नही है उसी प्रकार जीवरक्षा करना भी धर्म का कार्य है। स्थविरकल्पी साधु इन सब कार्यों को करता है। इनमे किसी प्रकार का दोप नही है। इन कार्यों को करने मे स्थविरकल्पी को धर्म होता है और उसका यह कल्प है किन्तु प्रत्येकबुद्ध का यह कल्प नही है। अतः प्रत्येकबुद्ध साधु

का उदाहरण देकर स्थविरकल्पी साधु को जीवरक्षा करने मे पाप कहना अज्ञान का परिणाम है ॥१०–१४॥

जिनकल्पी प्रत्येक बोधि नो,
जिण कामों रो कल्प न होय रे जीवा।
त्यांरे देखादेखी कोई ना करे,
निर्दयी समझो सोय रे जीवा ॥ मो० १५॥

ठाणायङ्ग में भाषियो,
करुणा तणो अधिकार रे जीवा।
छत्ती शक्ति व्यावच ना करे,
बांधे महामोहणी रो भार रे जीवा ॥ मो० १६॥

थीवरकल्पी रा कल्प रो,
जिन एहवो भाख्यो मर्म रे जीवा।
जिनकल्पी प्रत्येकबोधी ने,
प्रभु नाय बतायो यो धर्म रे जीवा ॥ मो० १७॥

भावार्थ :—जिनकल्पी और प्रत्येकबुद्ध मुनि के लिए जिन कार्यों का कल्प नहीं है और इसलिए वे उन कार्यों को नहीं करते है। उनकी देखादेखी यदि कोई दूसरा मनुष्य उन कार्यों को न करे तो उसे निर्दयी समझना चाहिए क्योंकि ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे जो अनुकम्पा की चौभङ्गी बतलाई गई है उसके प्रथम भङ्ग मे बतलाया गया है कि :—

'आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकंपए'

अर्थात्—जो अपनी ही अनुकम्पा करते हैं परन्तु दूसरे की नहीं करते, ऐसे तीन पुरुष होते है—प्रत्येकबुद्ध, जिनकल्पी और परोपकारबुद्धि निर्दयी।

जिनकल्पी और प्रत्येकबुद्ध साधु दूसरे की अनुकम्पा नहीं करते किन्तु अपने ही हित मे प्रवृत्त रहते है इसलिए वे इस प्रथम भङ्ग के स्वामी कहे गये है। उनकी तरह जो दूसरे जीव की अनुकम्पा नही करता है वह पुरुष यदि जिनकल्पी और प्रत्येकबुद्ध नही है तो उसको प्रथम भङ्ग का तीसरा स्वामी निर्दयी समझना चाहिए।

जिनकल्पी और प्रत्येकबुद्ध मुनि दूसरे साधुओ की किसी प्रकार की वैयावच्च नही करते, यह उनका कल्प है किन्तु स्थविरकल्पी साधुशक्ति होते हुए यदि दूसरे साधुओ की वैयावच्च नहीं करे तो उसके महामोहनीय कर्म का बंध होता है ऐसा श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है ॥१५-१७॥

प्रत्येकबोधि नमि तणो,
झूठो उठायो नाम रे जीवा।
अनुकम्पा उठायवा,
ए नहीं समदृष्टि रा काम रे जीवा ॥
मोह नुकम्पा न जाणिये ॥१८॥

भावार्थ :—ऊपर यह स्पष्ट बतला दिया गया है कि प्रत्येकबुद्ध मुनि का कल्प और स्थविरकल्पी मुनि का कल्प भिन्न-भिन्न

है। अतः प्रत्येकबुद्ध साधु का उदाहरण देकर स्थविरकल्पी साधु को जीवरक्षा करने में पाप कहना अज्ञानियो का काम है।

दूसरी बात यह है कि इन्द्र ने नमिराजर्षि से यह नही पूछा था कि मरते जीव की रक्षा करना धर्म है या पाप है ? यदि इन्द्र ऐसा पूछता और उसके उत्तर मे नमिराजर्षि जीवरक्षा करना पाप बतलाते तो अवश्य जीवरक्षा करने मे पाप माना जाता परन्तु वहाँ तो इन्द्र ने माया करके नमिराजर्षि की सांसारिक पदार्थों में आसक्ति एवं ममत्व न होने की परीक्षा की है और नमिराजर्षि ने यह स्पष्ट कह दिया है कि :—

"मिहिलाए उज्झमाणीए, न मे उज्झइ किंचणं।"

अर्थात्—मिथिला के जल जाने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता।

ऐसा उत्तर देकर नमिराजर्षि ने सांसारिक पदार्थों से अपना ममत्व हट जाना बतलाया है किन्तु मरते जीव की रक्षा करने मे पाप नहीं कहा है।

अतः नमिराजर्षि के उदाहरण से जीवरक्षा करने मे पाप कहना अज्ञानियो का कार्य है ॥१८॥

———

५-अधिकार नेमिनाथजी ने गजसुकुमाल की अनुकम्पा नहीं की, ऐसा कहने वालों को उत्तर

संक्षिप्त कथा :—

द्वारिका नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे। इनके छोटे भाई का नाम गजसुकुमाल (गजसुकुमार) था। एक समय बाईसवें तीर्थंकर भगवान अरिष्टनेमि (नेमिनाथ) द्वारिका के बाहर उद्यान में पधारे। श्रीकृष्ण वासुदेव अपने छोटे भाई गजसुकुमाल को साथ लेकर भगवान् को वन्दना करने गये। भगवान् का धर्मोपदेश सुनकर गजसुकुमाल को वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपनी माता देवकी और पिता वसुदेव की आज्ञा लेकर उन्होंने भगवान् के पास दीक्षा ले ली। उसी दिन बारहवीं भिक्खुपडिमा अङ्गीकार कर श्मशान भूमि में ध्यान धर कर खड़े रहने की भगवान् से आज्ञा माँगी। अपने ज्ञान में देखकर भगवान् ने उन्हें आज्ञा दे दी। तब वे श्मशान भूमि में जाकर ध्यान धर कर खड़े रहे। उसी समय इनका श्वसुर सोमिल ब्राह्मण उधर आ निकला। पूर्ववैर के जागृत हो जाने के कारण उसने गजसुकुमाल के शिर पर गीली मिट्टी की पाल बाँधकर खैर की लकड़ी के खीरे (अङ्गारे) रख दिये। इससे मुनि को तीव्र वेदना उत्पन्न हुई। उन्होने इस तीव्र वेदना को समभावपूर्वक सहन की और परिणामों में किसी प्रकार की चञ्चलता एवं कलुषता न आने दी। परिणामों की विशुद्धता के कारण उनको तत्क्षण केवलज्ञान केवलदर्शन उत्पन्न हो गये और वे मोक्ष में पधार गये।

❀ ढाल ❀

श्री नेमि जिनेश्वर जाणता,
नि गजसुकुमाल री घात रे जीवा ।
ए तो खेर खीरा माथे खमी,
मोक्ष जासी इणहिज भाँत रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥१॥

तेथी जिण दिन दीक्षा आदरी,
पडिमा वहण चित्त चाय रे जीवा ।
आज्ञा माँगी जिनराज री,
श्री ुख दीवी फुरमाय रे जीवा ॥ मो० २॥

भावार्थ :—गजसुकुमाल ने जिस दिन दीक्षा ली उसी दिन बारहवीं भिक्खुपडिमा अङ्गीकार करके श्मशान मे ध्यान धर कर खड़े रहने की श्री नेमिनाथ भगवान् से आज्ञा माँगी। सर्वज्ञ सर्वदर्शी भगवान् ने अपने ज्ञान मे यह बात जान ली थी कि गजसुकुमाल मुनि शिर पर खेर के खीरो को सहन कर आज ही मोक्ष जाएँगे। इसलिए उन्होने गजसुकुमाल मुनि को उपरोक्त कार्य के लिए आज्ञा दे दी ॥१-२॥

श शाणे काउसग्ग कियो,
सोमल आयो तिहाँ चाल रे जीवा ।
माथे पाल बाँधी माटी तणी,
माँहे घाल्या खीरा लाल रे जीवा ॥ मो० ३॥

ह्यो वेदना खमी,
मुनि मोक्ष गया तिण वार रे जीवा ।
केई मन्दमती तो इम कहे,
* नेम करुणा न की लिगार रे जीवा ॥ मो० ४ ॥

पहले करुणा आणी नहीं,
और साधु न मेल्या साथ रे जीवा ।
तेथी नुकम्पा में पाप है,
इम बोले झूठ मिथ्यात रे जीवा ॥ मो० ५ ॥

भावार्थ :—भगवान् की आज्ञा लेकर गजसुकुमाल मुनि श्मशान भूमि मे गये और वहाँ ध्यान धर कर खड़े हो गये । उसी समय उनका श्वसुर सोमिल ब्राह्मण उधर आ निकला । गजसुकुमाल मुनि को देखकर उनका पूर्ववैर जागृत हो गया । गीली मिट्टी लेकर उसने मुनि के शिर पर पाल बाँधी और पास मे जलती हुई चिता मे से खीरे लेकर मुनि के शिर पर रख दिये ।

---

* जैसा कि वे कहते हैं :—
कष्ट सह्यो वेदना अति घणी,
नेमि करुणा न आणी लिगार रे ॥१८॥
श्री नेमि जिनेश्वर जाणता,
होसी गजसुकुमाल री वात रे ।
पहिले अनुकम्पा आणी नही,
और साधु न मेल्या साथ रे ॥१९॥
(अनु० ढाल ३)

नि को अत्यन्त तीव्र वेदना हुई किन्तु उन्होने उस तीव्र वेदना को समभावपूर्वक सहन की। केवलज्ञान केवलदर्शन उपार्जन कर नि तत्काल मोक्ष पधार गये।

इस विषय में कितनेक मन्दबुद्धि जीव ऐसा कहते हैं कि 'नेमिनाथ भगवान् ने गजसुकुमाल मुनि की अनुकम्पा नहीं की ौर अनुकम्पा करके उनके साथ साधु भी नहीं भेजे। इसलिए अनुकम्पा करने मे पाप है' ऐसी खोटी स्थापना करते हैं ॥३-५॥

(त्तर) चरम शरीरी जीव नो,
आयु टूटे नहीं लि ार रे जीवा।
जिम बाँध्यो तिम भोगवे,
निरुप ी तणो निरधार रे जीवा ॥ मो० ६॥

ागमबलिया केवली,
कल्पाती त्रिकाल ना जाण रे जीवा।
निश्चय जाणे म करे,
जाँरो ाम लेई रे ाण रे जीवा ॥ मो० ७॥

ग सुकुमाल री ना करी,
नुकम्पा श्री नेम रे जीवा।
ए चन नु म्पा-द्वेष रा,
ज्ञानी तो समझे एम रे जीवा ॥ मो० ८॥

भावार्थ :—चरमशरीरी (उसी भव मे मोक्ष जाने वाला) जीव का आयुष्य निरुपक्रमी होता है अर्थात् उनका आयुष्य बीच मे नहीं टूटता। जितना आयुष्य बाँधा है और जिस प्रकार बाँधा है वे अपना उतना पूरा आयुष्य उसी प्रकार भोगकर फिर मोक्ष जाते है।

गजसुकुमाल मुनि चरमशरीरी जीव थे। वे अपना पूर्ण आयुष्य भोगकर फिर मोक्ष गये थे। उनका आयुष्य बीच मे टूटा नही था। दूसरी बात यह है कि तीर्थकर भगवान् आगम-विहारी, कल्पातीत, भूत, भविष्यत् और वर्तमान तीनो काल के जानने वाले सर्वज्ञ सर्वदर्शी होते है वे जिस तरह से अपने ज्ञान मे देखते है उसी तरह से करते है। इसलिए यह कहना मिथ्या है कि 'तीर्थकर भगवान् श्री नेमिनाथ ने गजसुकुमाल मुनि की अनुकम्पा नही की।' गजसुकुमाल मुनि इसी प्रकार मोक्ष मे जावेंगे यह बात श्री नेमिनाथ भगवान् अपने ज्ञान मे जानते थे इसीलिए उन्होने गजसुकुमाल मुनि को ऐसी आज्ञा देने मे भी किसी प्रकार का संकोच नही किया। अतः तीर्थङ्कर भगवान् श्री नेमिनाथ का नाम लेकर अनुकम्पा को सावद्य बतलाना अनु-कम्पाद्वेषियो का कार्य है ॥६-८॥

सूत्र व्यवहारी णि तणो,
सूतर में चाल्यो धर्म रे जीवा।
तिण ने सूत्रव्यवहारी ना करे,
जाँ रे माठा बन्धे कर्म रे जीवा ॥ मो० ६॥

भावार्थ :—सर्वज्ञ सर्वदर्शी, कल्पातीत आगमविहारी तीर्थ-ङ्कर भगवान् के लिए सूत्र मे किसी प्रकार की मर्यादा नहीं बतलाई

गई है वे तो जिस तरह पने ज्ञान मे देखते हैं उसी प्रकार करते हैं किन्तु सूत्रव्यवहारी (आगमव्यवहारी-आगमानुसारी) मुनि के लिए शा ों मे मर्यादा बतलाई गई है। अतः सूत्रव्यवहारी मुनि को सूत्रो मे बतलाई हुई मर्यादा के अनुसार ही बर्ताव करना चाहिए उससे विपरीत आचरण करने पर सूत्रव्यवहारी मुनि के अशुभ कर्मों का बन्ध होता है ॥९॥

ठाणायङ्ग ठाणे तीसरे,
चौथे उद्देशे अधिकार रे जीवा।
तपसी, रोगी, नवदीक्ष नी,
कोई न करे सार संभार रे जीवा ॥ मो० १०॥

ते री अनुकम्पा तणा,
जिन श्रीमुख भाख्या ाप रे जीवा।
तेथी तीनों री करणी चाकरी,
नहीं करियाँ थी लागे पाप रे जीवा ॥ मो० ११॥

भावार्थ :—ठाणाङ्ग सूत्र के तीसरे ठाणे के चौथे उद्देशे में श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है कि तपस्वी, रोगी और नवदीक्षित इन तीन मुनियो की जो साधु सारसंभाल एवं वैयावच्च नहीं करता वह अनुकम्पा का द्वेषी है। इसलिए इन तीनो की वैयावच्च अवश्य करनी चाहिये। इनकी वैयावच्च नहीं करने से पाप लगता है॥१०-११॥

गजसुकुमाल रो नाम ले,
नुकम्पा में थापे प रे जीवा।

ते घातक मुनि ना जाणज्यो,
ज्याँ दीना सूत्र उथाप रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥१२॥

भावार्थ :—गजसुकुमाल मुनि का उदाहरण देकर जो लोग अनुकम्पा मे पाप की स्थापना करते है वे अनुकम्पा के घातक है। वे सूत्रों के उत्थापक हैं। ऐसे लोग अनन्तकाल तक संसार में परिभ्रमण करते रहते है और भोले लोगो को भ्रम मे डालकर उन्हे भी अनन्तसंसार मे परिभ्रमण करवाते हैं ॥१२॥

६—अधिकार वीर भगवान् के उपसर्ग दूर करने में पाप कहते हैं, उसका उत्तर
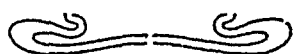
श्री वीर जिनेन्द्र चौवीसमाँ,
कल्पातीत मोटा अणगार रे जीवा ।
ज्याँ ने देव मनुज तिर्यञ्च ना,
उपसर्ग उपज्या अपार रे जीवा ॥ मो० १ ॥

भावार्थ :—चौबीसवे तीर्थङ्कर श्री महावीर स्वामी कल्पातीत महामुनीश्वर थे। छद्मस्थ अवस्था से उन्हे देव, मनुष्य और तिर्यञ्च सम्बन्धी अनेक उपसर्ग उत्पन्न हुए थे, उन सबको वीर भगवान् ने समभावपूर्वक सहन किये थे ॥१॥

(हे) " ' दे भगवान् ने,
दुः दीधा अने ार रे जी ।।
म्लेच्छ ोकाँ श्री वीर रे,
श्वानादि दीना लार रे जीवा ॥ मो० २॥

दुः देताँ देखी वीर ने,
गा नहीं किया ाय रे जीवा।
समदृ देव हूँता घणा,
पि कि हीन ीधी साय रे जीवा ॥ मो० ३॥

नुकम्पा ाण बीच में प ा,
यो ो जि ाख्यो हीं र्म रे जीवा।
तेथी उपसर्ग मेटणो पाप में"
न्दमती पाड़े इम भर्म रे जीवा ॥ मो० ४॥

भावार्थ :—अनुकम्पाद्वेषी कितनेक लोगो का कथन है कि "संगमदेव ने वीर भगवान् को बहुत उपसर्ग दिये और जब भगवान् अनार्य देश मे पधारे तब वहाँ के म्लेच्छ लोगों ने भी अनेक प्रकार के उपसर्ग दिये और भगवान् के पीछे त्ते लगाये। उस समय अनेक समदृष्टि देव थे किन्तु किसी ने भी भगवान् की सहायता नही की और उनके उपसर्ग दूर नहीं किये। इसलिए अनुकम्पा लाकर किसी के उपसर्ग को मिटाना धर्म नही किन पाप है।" इस प्रकार कितनेक मन्दबुद्धि अनुकम्पाद्वेषी लोग अनुकम्पा मे एवं अनुकम्पा लाकर किसी के दुः को दूर करने मे पाप कहते हैं ॥२-४॥

हिवे उत्तर एनो साँभलो,
देव मेट्या छै उपसर्ग आय रे जीवा।
नुकम्पा रा द्वेप थी,
मन्दमती वे दिया छिपाय रे जीवा ॥ मो० ५ ॥

भावार्थ :—अब ध्यानपूर्वक इसका उत्तर सुनो। जो लोग यह कहते हैं कि "देवो ने वीर भगवान् के उपसर्ग नहीं मिटाये थे" वे मिथ्या भाषण करते है। देवो ने कई अवसरो पर वीर भगवान् के उपसर्गो को दूर किया था। उन लोगो को अनुकम्पा के साथ द्वेष है इसलिए उन्होने उन बातो को छिपा दी है ॥५॥

जिण दिन दीक्षा आदरी,
ायोत्सर्ग रह्या वन माँय रे जीवा।
पशुपाल बैल रे कारणे,
वीर ने मारण हाथ उठाय रे जीवा ॥ मो० ६ ॥

तब इन्द्र आय ने रोकियो,
भक्तिवन्त तो भक्ति चाय रे जीवा।
सिद्धारथ देव श्री वीर रा,
बहु उपसर्ग दीना मिटाय रे जीवा ॥ मो० ७ ॥

ानाँ थी ीला काढ़िया,
भक्तिवन्त वैद्य हुलसाय रे जीवा

ते महाफल पायो धर्म नो,
मरणान्ति कष्ट मिटाय रे जीवा ॥ मो० ८॥

इम बहु उपसर्ग मेटिया,
कल्पसूत्र था रे मॉय रे जीवा।
तो पिण अनुकम्पा-द्वेषी इम कहे,
कोई उपसर्ग टाल्यो नाय रे जीवा ॥ मो० ६॥

भावार्थ :—जिस दिन भगवान् महावीर स्वामी ने दीक्षा ली उसी दिन जङ्गल मे जाकर वे कायोत्सर्ग करके खड़े रहे। वहाँ एक ग्वाला अपने बैलों को चरा रहा था। वहाँ वीर भगवान् को खड़े देखकर उनसे अपने बैलों की निगाह रखने के लिए कह कर वह अपने किसी कार्य के लिए चला गया। बैल चरते-चरते कहीं दूसरी जगह चले गये। वापिस आकर जब उस ग्वाले ने अपने बैलो को वहाँ न देखा तो उसने अपने बैलो के विषय मे भगवान् से पूछा। भगवान् तो ध्यानस्थ ड़े थे। उनसे कोई उत्तर न पाकर वह अपने बैलों को इधर-उधर जङ्गल में ढूँढने लगा। इधर संयोगवश बैल चरते-चरते वापिस वहीं आ गये और उन्हे ढूँढता हुआ ग्वाला भी वापिस वही आ निकला। उसने अपने बैलो को वहाँ देखकर मन मे विचार किया कि "ये बाबाजी चोर मालूम होते हैं, मेरे बैलो को चुरा ले जाना चाहते थे इसीलिए पहले इन्होने मेरे बैलों को कहीं छिपा दिया था।" ऐसा समझकर वह ग्वाला भगवान् को मारने लगा किन्तु उसी समय इन्द्र ने आकर उसे रोक दिया। इस प्रकार ग्वाले से होने वाले उपसर्ग को इन्द्र ने मिटा दिया।

इसी प्रकार सिद्धार्थ देव ने भी वीर भगवान् के बहुत से उपसर्ग मिटाये थे।

जब भगवान् के कानों से कीले ठोक दिये थे तब उन्हें अत्यन्त वेदना हुई। किसी भक्तिवान् वैद्य ने भगवान् के कानों से उन कीलों को निकालकर उनका मारणान्तिक कष्ट मिटा दिया, जिससे उस वैद्य को महान् धर्म-लाभ हुआ।

इस प्रकार अनेक अवसरो पर भगवान् के उपसर्ग दूर किये गये थे जिनका वर्णन कल्पसूत्र की कथाओ में है। ऐसा होते हुए भी कितनेक अनुकम्पाद्वेषी कहते हैं कि 'वीर भगवान् का उपसर्ग किसी ने नही मिटाया।' यह उनका कथन एकान्त मिथ्या है ॥६–६॥

(कहे) था री बात मानाँ नहीं,
तो संगम री मानो केम रे जीवा।
या था पिण कल्पसूत्र नी,
तुम ख देवो छो केम *रे जीवा ॥ मो० १० ॥

भावार्थ :—यदि वे ऐसा कहे कि 'वीर भगवान् के उपसर्ग मिटाने की ये बाते कल्पसूत्र की कथाओ मे हैं। हम कथाओ की बातो को प्रामाणिक नही मानते' तो उनसे कहना चाहिये कि

---

* जैसा कि वे कहते है :—

संगमदेवता भगवान् ने, दुःख दीधा अनेक प्रकार रे।
अनार्य लोकॉ श्री वीर रे, श्वानादिक दीवा लार रे ॥
(अनु० ढाल २ गाथा २१)

'संगमदेव ने वीर भगवान् को उपसर्ग दिया था, यह बात भी तो कल्पसूत्र की कथा मे आई है फिर तुम लोग इसका प्रमाण कैसे देते हो ? उपसर्ग देने की बात को तो प्रामाणिक मानना और उपसर्ग मिटाने की बात को प्रामाणिक न मानना यह केवल तुम्हारा हठाग्रह है' ॥१०॥

श्री वीर ना उपसर्ग मेटिया,
मठाम था रे माँय रे जीवा।
तुम कहो किण ही न मेटिया *
झूठा बोलता शरमो नाय रे जीवा ॥ मो० ११ ॥

भावार्थ :—श्री वीर भगवान् के उपसर्ग यथावसर मिटाये गये थे इस बात का वर्णन कल्पसूत्र की कथाओ मे एवं अन्य कथाओं मे जगह-जगह मिलता है। फिर भी जो लोग यह कहते हैं कि 'किसी ने वीर भगवान् का उपसर्ग नहीं मिटाया' इस प्रकार सरासर मिथ्या भाषण करते हुए उन लोगो को जरा भी शर्म नहीं आती ॥११॥

जब ज्वार आवे एह गो,
आडा वला गाल बजाय रे जीवा।
म्लेच्छ शस्त्र खू ँ थकाँ,
डूँगर थी टोल गुड़ाय रे जीवा ॥ मो० १२ ॥

---

* जैसा कि वे कहते हैं :—

दुःख देता देखी भगवान् ने, अलगा न कीधा आय रे।
समदृष्टि देव हूँता घणा, पिण किण ही न कीधी सहाय रे ॥
(अनु० ढाल २ गाथा २३)

भावार्थ :—जब उन लोगों से यह पूछा जाता है कि "वीर भगवान् के उपसर्ग मिटाने का वर्णन कथाओं में जगह-जगह मिलता है फिर तुम इस प्रकार मिथ्या भाषण क्यों करते हो कि किसी ने वीर भगवान् का उपसर्ग नहीं मिटाया ? जब इसका उन्हें सीधा जवाब कुछ भी नहीं आता तब जिस प्रकार अपने पास के शस्त्र समाप्त हो जाने पर म्लेच्छ लोग पर्वत पर से पत्थर लुढ़काते हैं उसी प्रकार वे भी अडंग-बडंग ऊटपटांग जवाब देने लगते है ॥१२॥

पार्श्व प्रभु दीक्षा ग्रही,
काउसग्ग कियो वन माँय रे जीवा ।
जब कमठे मेह बरसावियो,
उपसर्ग दीनो आय रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

तब धरणेन्द्र पद्मावती,
उपसर्ग दीनो मिटाय रे जीवा ।
तुम पिण मानो या वारता, *
हिवे बोली ने बदलो काय रे जीवा ॥ मो० १४ ॥

---

* जैसा कि वे कहते है :—

'पार्श्वनाथजी घर छोड़ काउसग्ग कीधो,
जब कमठ उपसर्ग कर बरसायो पाणी ।
जब पद्मावती हेठे सिंहासन कीधो,
धरणेन्द्र छत्र कियो सिर आणी ॥
(अनु० ढाल ३ गाथा २७)

भावार्थ :—तेईसवें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ स्वामी ने दीक्षा ग्रहण करके जङ्गल मे जाकर कायोत्सर्ग किया। उस समय कमठ देव ने भगवान् को उपसर्ग देने के लिए मूपलाधार पानी बरसाना शुरू किया। तब धरणेन्द्र और पद्मावती ने भगवान् का वह उपसर्ग दूर किया अर्थात् धरणेन्द्र ने भगवान् के शिर पर छत्र कर दिया और उसकी पद्मावती देवी ने भगवान् के नीचे सिहासन कर दिया। इस प्रकार उन्होने भगवान् का यह उपसर्ग दूर किया। इस बात को वे लोग भी मानते हैं और इसी-लिए उन्होने अपनी ढालो मे भी जोड़ रक्खा है। इस प्रकार उनके वचन परस्पर विरोधी है अर्थात् एक तरफ तो वे कहते हैं कि "किसी ने भगवान् का उपसर्ग नही मिटाया और दूसरी तरफ कहते है कि धरणेन्द्र और पद्मावती देवी ने पार्श्वनाथ भगवान् का उपसर्ग मिटाया था तथा एक तरफ तो वे कहते है कि हम कथा की बात को नही मानते और दूसरी तरफ कथा में आई हुई धरणेन्द्र पद्मावती द्वारा उपसर्ग मिटाने की बात को स्वीकार करते है।" इस प्रकार परस्पर विरोधी वचनों के कारण वे अपने ही वचनो से झूठे साबित होते हैं ॥१३-१४॥

वलि था रे नामे तुमे,
ढालाँ जोड़ी विविध प्र ार रे जीवा।
नव ार मन्त्र प्रभाव * थी,
उपतर्ग मेटण अधि ार रे जीवा ॥ मो० १५ ॥

---

* जैसा कि आराधना की दसवीं ढाल मे वे कहते है :—

पन्नग पुष्प नी माल थई, नवकार प्रभावे कीरति लई।
सुख श्रीमती उभय भवे सारं, इम जाण जपो श्रीनवकारं ॥७॥

श्रीमती अमरकुमर वली,
भील सेठ आदिक नी बात रे जीवा।
देव साय करी (तुमे) मानी खरी,
बीच पड्या ये साक्षात् रे जीवा ॥ मो० १६ ॥

भावार्थ :—कथा मे आई हुई बातो के आधार पर नवकार मन्त्र के प्रभाव से उपसर्ग मिटने सम्बन्धी अनेक प्रकार की बाते उन्होने ढालो मे जोड़ रक्खी है। जैसे कि—नवकार मन्त्र के प्रभाव से श्रीमती के लिए सर्प के स्थान फूलमाला बन गई, अमरकुमार के लिए अग्नि शीतल होकर उसके स्थान पर सोने का सिहासन हो गया, बछड़े चराने वाले भील के लड़के के लिए नदी का पूर शान्त होकर नदी ने थाह दे दिया और जब सेठ समुद्र मे डूबने लगा तब नवकार मन्त्र के प्रभाव से देवो ने उसकी

अग्नि ठंडी कीधी देवॉ,
किये कनक सिंहासन तत्खेवा।
ऊपर अमर कुमर प्रति पैसारं,
इम जाण जपो श्री नवकारं ॥८॥
बछड़ा चरावतो जीह वारं,
नदी पूर आयो गुण्यो नवकारं।
थई ततखीण सरिता दोय डारं,
इम जाण जपो श्री नवकारं ॥९॥
सेठ समुद्र मे डूबतो,
नवकार गुण्यो धर चित्त शान्तो।
सुर जहाज उठाय मेली पारं,
इम जाण जपो श्री नवकारं ॥१०॥

जहाज को तीर पहुँचा दिया। इस प्रकार कथा के आधार पर अनेक बाते उन्होंने अपनी ढालों मे जोड़ रक्खी हैं और इस बात को स्वीकार किया है कि देवों ने उपसर्ग मिटाये थे ॥१५-१६॥

ये था समदृष्टि देवता,
जिनधर्म दिपावणहार रे जीवा।
नवकार महिमा कारणे,
संकट मेट कियो उप र रे जीवा ॥ मो० १७॥

तुम हता समदृष्टि देवता,
बीच में नहीं पड़िया य रे जीवा।
। बात थारी झूठी हुई,
बीच पड्या थाँ मान्या जोड माँय रे जीवा ॥ १८ ॥

भावार्थ :—ये सब जिनधर्म को दीपाने वाले समदृष्टि देव थे जिन्होंने नवकार मन्त्र की महिमा के कारण उन पुरुषों का उपसर्ग मिटाकर उपकार किया था।

अब उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'तुम कहते थे कि समदृष्टि देवों ने उपसर्ग नहीं मिटाये थे किन्तु इन ढालो मे तुमने स्वयं इस बात को मान लिया है कि समदृष्टि देवो ने उपसर्ग मिटाये थे। इसलिए तुम्हारा पूर्वकथन तुम्हारी स्वयं की ढालों से झूठा साबित हो गया ॥१७-१८॥

हाज चाई देवता,
यो तो तणो उप ार रे जीवा।

जो खोटा जाणे समदृष्टि,
देवता किम करता सार रे जीवा ॥ मो० १६ ॥

थें अनुकम्पा रा द्वेष थी, (कह्यो)
धर्म हो तो न करता ढील रे जीवा ।
*उपसर्ग तुरत मिटावता,
समदृष्टि देवाँ रो शील रे जीवा ॥ मो० २० ॥

भावार्थ :—उन लोगो से कहना चाहिए कि 'समुद्र मे डूबती हुई उस सेठ की जहाज को देव ने बचा दिया, इससे अनेक मनुष्यो के प्राण बच गये यह कितना बड़ा उपकार हुआ। यदि समदृष्टि देव इसे पाप का कार्य समझता तो वह यह कार्य क्यो करता ? देव ने इसको धर्म का कार्य समझकर किया था। इसलिए तुम लोग जो यह कहते हो कि 'यदि उपसर्ग मिटाने मे धर्म होता तो समदृष्टि देव अवश्य उपसर्ग मिटाते' यह तुम्हारा कथन मिथ्या हुआ ॥१६-२०॥

नवकार प्रभाव थी देवता,
उपसर्ग मेट्या साक्षात् रे जीवा ।

---

* जैसे कि वे कहते है :—
धर्म हूँतो आघो न काढ़ता,
वली वीर ने दुखिया जाण रे जीवा ।
परीषह देवण आया तेहने,
देव अलगा करता ताण रे जीवा ॥
(अनु० ढाल २ गाथा २५)

तुम थने पिण हुवो ध र्यो,
मान लेवो छोड़ मिथ्यात रे जीवा ॥ मो० २१ ॥

भावार्थ :—उन लोगों से कहना चाहिए कि तुम लोगो ने भी इस बात को स्वीकार किया है कि नवकार मन्त्र के प्रभाव से देवों ने उपसर्ग मिटाये हैं और उपसर्ग मिटाने से धर्म हुआ है। फिर तुम लोग जो यह कहते हो कि 'उपसर्ग मिटाना पाप है' यह तुम्हारा कथन मिथ्या साबित होता है ॥२१॥

तो सब उपसर्ग वीर ना,
देव केम मे । ाय रे जीवा ।
एवी शंका कोई करे,
जाँ रे ध ध हिरदे नाय रे जीवा ॥ मो० २२ ॥

निश्चयवादी वधिधरा,
मिटता देख्या निज ज्ञान रे जीवा ।
तो वि मेट्या देवाँ हर्ष सूँ,
धर्म सेवा रो दे भ ध्यान रे जीवा ॥ मो० २३ ॥

जो होनहार टले नहीं,
ते देव न सके टार रे जीवा ।
त्याँ रो ाम लेई कहे मूढमती,
उपसर्ग मेट्याँ पाप अपार रे जीवा ॥ मो० २४ ॥

भावार्थ :—यदि कोई ऐसी शङ्का करे कि 'यदि उपसर्ग मिटाने मे धर्म है तो फिर देवो ने महावीर स्वामी के सारे उपसर्ग क्यों नही मिटा दिये ?' ऐसी शङ्का करना अयुक्त है क्योंकि निश्चयवादी अवधिज्ञानी देवो ने अवधिज्ञान द्वारा जिन उपसर्गों को प्रयत्न से मिटने योग्य देखा उनको धर्मसेवा का कार्य समझकर हर्षपूर्वक मिटाये हैं परन्तु भवितव्यता (होनहार) तो देवो से भी टाली नही जा सकती। होनहार का नाम लेकर यदि कोई ऐसी स्थापना करे कि 'उपसर्ग मिटाने मे पाप है' तो उसे मूर्ख समझना चाहिए ॥२२-२४॥

सौ कोसाँ उपसर्ग ना होवे,
जिन महिमा सूतर साख रे जीवा।
होनहार गोशाले वीर पे,
तेजू लेश्या दीनी नाख रे जीवा ॥ मो० २५ ॥

भावार्थ :—शास्त्रो मे ऐसा फरमाया गया है कि 'जहाँ तीर्थंकर भगवान् विचरते हो वहाँ से सौ कोस तक किसी प्रकार का उपसर्ग एवं उपद्रव नही होता' परन्तु गोशालक ने साक्षात् तीर्थंकर भगवान् महावीर स्वामी पर ही तेजोलेश्या फेक दी। तो कहना पड़ेगा कि यह 'होनहार' थी ॥२५॥

उपसर्ग मिटे प्रभु तेजथी,
यह तो प्रत्यक्ष आछो काम रे जीवा।
भावी टले नहीं जो दा,
मन्द आणे ख नाम रे जीवा ॥ मो० २६ ॥

वीर उपसर्ग देवाँ मेटिया,
परतख धर्म रो ाम रे जीवा।
जो होनहार मिटे नहीं,
ज्ञानी नहीं लेवे तिण रो रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा जाणिये ॥२७॥

भावार्थ :—जिस प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् के अतिशय से उपसर्ग मिट जाते हैं, यह धर्म का कार्य है परन्तु यदि कोई भावी (होनहार) उपसर्ग न टले तो उपसर्ग टलने मे पाप की स्थापना नहीं की जा सकती उसी प्रकार देवो ने महावीर स्वामी के कई उपसर्ग मिटाये थे यह प्रत्यक्ष धर्म का कार्य है परन्तु जो भवितव्यता रूप उपसर्ग नही मिटाया जा सका उसका उदाहरण देकर उपसर्ग मिटाने मे पाप की स्थापना नही की जा सकती। भवितव्यता (होनहार) का उदाहरण देकर यदि कोई 'उपसर्ग मिटाने मे पाप की स्थापना करे' तो उसे हठवादी मूर्ख समझना चाहिए ॥२७॥

७—अधिकार—द्वीप समुद्रों की हिंसा देवता क्यों नहीं मिटाते ? इसका उत्तर

ोई मन्दमती इण पर हे,
नुकम्पा उठावण काज रे जीवा।

इन्द्र मेटी न हिंसा समुद्र (द्वीप) री,
अचित वस्तु री देई साज रे जीवा ॥ मो० १ ॥

ज्याँ ने द्वेष घणो करुणा तणो,
उदय आयो मिथ्यात रो पाप रे जीवा ।
तेथी अनुकम्पा पाप छै,
इवी मन्द करे छै थाप रे जीवा ॥ मो० २ ॥

भावार्थ :—अनुकम्पा को उठा देने के लिए कितनेक मन्द-बुद्धि ऐसा कुतर्क करते है कि 'यदि अनुकम्पा करने मे धर्म है तो इन्द्र अचित्त वस्तु देकर द्वीप समुद्रो मे होने वाली हिंसा को क्यो नही मिटाता ? इसलिए अनुकम्पा मे पाप है।' इस प्रकार इन्द्र का नाम लेकर जो अनुकम्पा मे पाप की स्थापना करते है, समझना चाहिए कि उन लोगो को अनुकम्पा से बड़ा भारी द्वेष है और उनके मिथ्यात्वरूपी पाप उदय मे आया है ॥१-२॥

त्याँ ने ज्ञानी कहे समझायवा,
इन्द्र जे-जे न करे काम रे जीवा ।
तिण में पाप कहो तो विचार लो,
केइ काम रा लेऊँ नाम रे जीवा ॥ मो० ३ ॥

भावार्थ :—उन उपरोक्त अज्ञानी जीवो को समझाने के लिए ज्ञानी पुरुष कहते है कि 'जो-जो काम इन्द्र नही करता उन सब मे पाप है' ऐसी स्थापना नही की जा सकती । यदि कोई ऐसी स्थापना करे कि 'जो काम इन्द्र नही करता उसमे पाप है

तो व कितनेक ऐसे कार्यों का नाम गिनाया जाता है जिनको इन्द्र ने नहीं किया। क्या उन सब मे पाप माना जायगा ?'

श्रीकृष्ण ऐश्वर महामती,
जाँए पडहो दीनो फिराय रे जीवा।
जो दीक्षा लेवो श्री नेम पे,
मैं पिछलाँ री करूँ सहाय रे जीवा ॥ मो० ४ ॥

सहस्र पुरुष संजम लियो,
यो परतख हा उप ार रे जीवा।
पिण इन्द्र पडहो फेरयो नहीं,
तिण रो बुधवन्त करो विचार रे जीवा ॥ मो० ५ ॥

जो इन्द्र कियो नहीं,
तिणसूँ कृष्ण ने कहे पाप रे जीवा।
ते जिन रा ाण ,
खोटा हेतु री करे थाप रे जी ा ॥ मो० ६ ॥

भावार्थ :— ाता सूत्र के पाँचवे अध्ययन में थावर्चा पुत्र के अधिकार मे यह वर्णन आता है कि—महा बुद्धिमान् श्री ष्ण वासुदेव ने द्वारिका नगरी मे यह उद्घोषणा करवाई कि जो भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा लेना चाहे, वे बड़ी खुशी के साथ दीक्षा ले, उनके पीछे रहने वाले कुटुम्बी-जनो की मैं सार-सँभाल करूँगा और सर्व प्रकार से सहायता दूंगा। श्रीकृष्ण

वासुदेव की इस उद्घोषणा को सुनकर एक हजार पुरुषों ने भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा ली। यह प्रत्यक्ष महान धर्म का कार्य हुआ था। इन्द्र ने इस प्रकार की कोई उद्घोषणा नहीं करवाई थी। 'इन्द्र जो कार्य नहीं करता उसमें पाप है' इस प्रकार की स्थापना करने वालों के मत से तो श्रीकृष्ण का उपरोक्त कार्य भी पाप से ठहरता है। परन्तु ऐसे महान् उपकार और धर्म के कार्य को जो पाप का कार्य कहे तो वैसा महामूर्ख तो संसार मे दूसरा कोई नहीं हो सकता। इसलिए 'इन्द्र जो कार्य नहीं करता उस कार्य मे पाप है' ऐसी स्थापना करना महामूर्खों का काम है ॥४-६॥

श्रेणिक पडहो फेराविचो,
साधु ने देवो स्थान रे जीवा।
वलि जीवहिंसा करो मती,
सप्तम अङ्ग में धरो ध्यान रे जीवा ॥ सो० ७॥

यो काम इन्द्र कीधो नहीं,
श्रेणिक कीधो धर ध्यान रे जीवा।
ते तो साँचो समदृष्टि हुँतो,
तुम धारो हिरदे ज्ञान रे जीवा ॥ सो० ८॥
श्रेणिक इम न विचारियो,
यो इन्द्र करचो नहीं काम रे जीवा।
मुझ ने धर्म होसी के नहीं,
एवी शङ्का न आणी ताम रे जीवा ॥ सो० ९॥

तो पिण इन्द्र रो नाम ले,
नुकम्पा में नाँखे भ्रम रे जीवा।
पिण इन्द्र ज्ञान में देखे तिम करे,
अनुकम्पा तो आछो धर्म रे जीवा ॥ मो० १० ॥

भावार्थ :—उपासकदशाँग सूत्र के आठवें अध्ययन मे यह वर्णन आता है कि श्रेणिक राजा ने अपने राज्य मे यह उद्-घोषणा करवाई थी कि 'साधु महात्माओ को ठहरने के लिए यथायोग्य स्थान दो और किसी भी जीव की हिंसा मत करो।' अब उन लोगों से पूछना चाहिए कि यह काम इन्द्र ने तो नहीं किया था किन्तु शुद्ध श्रद्धावान् समदृष्टि श्रेणिक राजा ने किया था। इसमे श्रेणिक को धर्म हुआ या पाप? यह तो प्रत्यक्ष धर्म का कार्य है। 'अमारी' (किसी जीव को मत मारो) की उद्घोषणा करवा कर श्रेणिक राजा ने महान् धर्म का लाभ प्राप्त किया था और तीर्थ र गोत्र बाँधा था। इस कार्य को करते समय श्रेणिक राजा ने ऐसी शङ्का नहीं की कि 'यह कार्य इन्द्र ने तो नहीं किया किन्तु मैं करता हूँ। मुझे धर्म होगा या नहीं?' श्रेणिक राजा समदृष्टि थे। वे समझने थे कि यह तो महान् धर्म का कार्य है इससे अनेक प्राणियो के प्राण बचेंगे।

ऐसे धार्मिक-कार्यों के अनेक उदाहरण शास्त्रो मे विद्यमान् हैं जिनको इन्द्र ने नही किया था किन्तु समदृष्टि जीवों ने उन कार्यों को किया है। इसलिए यह नियम नहीं बनाया जा सकता कि जिन कार्यों को इन्द्र न करे उनमे पाप होता है। इन्द्र तो अपने अवधिज्ञान मे जिस तरह देखता है वैसा ही करता है। इन्द्र के न करने से अनुकम्पा के कार्य मे पाप की स्थापना नहीं

की जा सकती। 'इन्द्र जो कार्य न करे उसमे पाप है' ऐसी स्थापना करने वाले को मूर्ख-शिरोमणि समझना चाहिए ॥८-१०॥

सावद्य ने निरवद्य वली,
अनुकम्पा रा भेद दोय रे जीवा।
इन्द्र कया नहीं तुम भणी,
थे भाखो क्यों निर्बुद्ध होय रे जीवा ॥ सो० ११ ॥

भावार्थ :—'इन्द्र जो कार्य न करे उसमे पाप है' ऐसी स्थापना करने वाले लोगो से पूछना चाहिए कि 'इन्द्र ने तो अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ये दो भेद नहीं किये है और न इन्द्र ने आकर तुमसे ऐसा कहा। फिर तुम लोग अनुकम्पा के सावद्य, निरवद्य ऐसे दो भेद क्यो कहते हो' ?

तब तो झटके बोल दे,
म्हारे इन्द्रसूँ काँई काम रे जीवा।
म्हें सूत्रसूँ करॉ परूपणा,
म्हारा गुराँ रो राखाँ नाम रे जीवा ॥ सो० १२ ॥

भावार्थ :—तब तो चट से उत्तर देते है कि इन्द्र से हमे क्या प्रयोजन है ? हम तो सूत्र से प्ररूपणा करते हैं और हमारे गुरु भीषणजी और जीतमलजी ने अनुकम्पा के दो भेद बताये है, हम वैसी ही प्ररूपणा करते है और हमारे गुरुओ की टेक को कायम रखते हैं ॥१२॥

समझो रे समझो जरा,
नुकम्पा सावद्य होय रे जी ।
त्र में न खी केवली,
वलि इन्द्र कयो नहीं गोय रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

अणहूँती बा उठाय ने,
करो अनुकम्पा री घा रे जीवा ।
इन्द्र रो लेई-लेई,
मत बाँधो सात्त रे जीवा ॥
गोह अनुकम्पा न जाणिये ॥१४॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ऐसे दो भेद करने वाले भोले अज्ञानी जीवो पर अनुकम्पा करके शा ों के ज्ञाता परम कारुणिक दयालु पुरुष हितबुद्धि से उन्हें समझाते हैं कि हे भोले भाइयो ! जरा समझो—अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ऐसे दो भेद हो नहीं सकते। अनुकम्पा अमृत के समान कही गई है। जिस तरह मारने वाला भी अमृत और जिलाने वाला भी अमृत—इस प्रकार अमृत के दो भेद हो नहीं सकते उसी तरह अनुकम्पा के भी सावद्य (पापकारी) और निरवद्य ऐसे दो भेद हो नहीं सकते। अनुकम्पा तो निरवद्य ही है। वह कभी सावद्य हो नहीं सकती। शास्त्रों मे अनुकम्पा के सावद्य और निरवद्य ऐसे दो भेद नहीं कहे गये हैं और इन्द्र ने भी तुमसे अनुकम्पा के दो भेद नही कहा है। इसलिए इस असत्य बात को ड़ी करके अनुकम्पा की घात मत करो और 'इन्द्र जो कार्य नहीं करता उसमे पाप है' ऐसी स्थापना करके कर्म मत बाँधो।

इस प्रकार ज्ञानी पुरुष शास्त्रो की सच्ची बात समझाकर उन्हें शिक्षा देते है ॥१३-१४॥

८-अधिकार-चेडा और कोणिक का संग्राम मिटाने में पाप कहते हैं इसका उत्तर
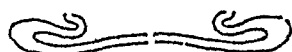
संक्षिप्त कथा :—

राजगृह नगर मे श्रेणिक राजा राज्य करता था। उसके चेलना, नन्दा आदि पाँचसौ रानियाँ थीं। नन्दा रानी के अभय-कुमार नाम का पुत्र था। वह राजनीति मे बड़ा चतुर था। इस-लिए राजा ने उसे प्रधान मंत्री के पद पर नियुक्त कर रक्खा था।

एक समय चेलना रानी ने सिह का स्वप्न देखा। उसने अपना स्वप्न राजा को सुनाया। राजा ने कहा—प्रिये ! तुम्हारी कुक्षि से एक राज्यधुरन्धर, सिह के समान पराक्रमी पुत्र का जन्म होगा। यह सुनकर रानी बहुत हर्पित हुई और सुखपूर्वक अपने गर्भ का पालन करने लगी। जब गर्भ के तीन महीने पूर्ण हुए तब गर्भस्थ बालक के प्रभाव से रानी को राजा के कलेजे का माँस खाने का दोहला उत्पन्न हुआ। अभयकुमार ने अपनी बुद्धि-मत्ता से उस दोहले को पूर्ण किया। "गर्भ मे कोई पापी जीव आया है" ऐसा जानकर रानी ने उसको गिराने के लिए बहुत प्रयत्न किया किन्तु गर्भ न गिरा।

गर्भ-समय पूरा होने पर रानी की कुक्षि से एक तेजस्वी पुत्र का जन्म हुआ। रानी ने विचार किया कि गर्भस्थ भी इस

बालक ने अपने पिता के कलेजे का माँस खाने की इच्छा की तो न जाने बड़ा होने पर यह क्या गजब करेगा ? ऐसा सोचकर रानी ने एक दासी को बुलाकर कहा—इस बालक को ले जाओ और किसी एकान्त स्थान मे जाकर उकरड़ी (गोबर, कचरे आदि का ढेर) पर डाल आओ। रानी के आदेशानुसार दासी ने उस बालक को अशोकवाटिका मे ले जाकर उकरड़ी पर डाल दिया। जब यह बात श्रेणिक राजा को मालूम हुई तब वह स्वयं वहाँ गया और बालक को उठाकर चेलना रानी के पास आया। रानी को उलाहना देते हुए राजा ने कहा—तुमने इस बालक को उकरड़ी पर क्यो डलवा दिया ? तुमने यह ठीक नहीं किया। लो, अब इसका अच्छी तरह पालन-पोपण करो।

श्रेणिक राजा के उपरोक्त कथन को सुनकर रानी बहुत लज्जित हुई। उसने राजा के कथन को स्वीकार किया और उस बालक का पालन-पोषण करने लगी।

तीसरे दिन बालक को सूर्य-दर्शन कराये और बारहवें दिन उसका गुणनिष्पन्न* कोणिक नाम रक्खा। सुखपूर्वक बढ़ता हुआ बालक क्रमशः युवावस्था को प्राप्त हुआ। आठ सुन्दर राजकन्याओ के साथ उसका विवाह किया गया।

एक समय कोणिक ने काली-सुकाली आदि अपनी सौतेली माताओं से जन्मे हुए काल-सुकाल आदि दस भाइयो को बुलाया और कहा—राजा श्रेणिक अब बूढा हो गया है फिर

---

*नोट—जिस समय वह उकरडी पर रहा था उस समय एक मुर्ग (कूकड़े) ने उसकी एक अँगुली काट खाई थी। उसकी अँगुली के काट खाये जाने के कारण उसका नाम कोणिक रक्खा गया था।

भी राज्य करने की उसकी इच्छा ज्यों की त्यों बनी हुई है। वह अब भी राज्यलक्ष्मी हमें नहीं सौंपता। अतः हमारे लिए यही उचित है कि राजा श्रेणिक को पकडकर बन्धन में डाल दें और हम लोग राज्य के ग्यारह विभाग कर आनन्दपूर्वक राज्य करें। कोणिक की इस बात को सब भाइयों ने स्वीकार कर ली।

एक समय मौका देखकर कोणिक ने राजा श्रेणिक को पकड़ कर बन्धन मे डलवा दिया और उसने स्वयं अपना राज्याभिषेक करवाया। राजा बनकर वह माता को प्रणाम करने के लिए गया। माता को उदास और चिन्ताग्रस्त देखकर उसने कहा—मातेश्वरि! आज तुम्हारा पुत्र राजा बना है। तुम राजमाता बनी हो। आज तुम्हे विशेष प्रसन्न होना चाहिए किन्तु तुम तो उदास प्रतीत हो रही हो। इसका क्या कारण है? माता ने कहा—पुत्र! तुमने अपने पूज्य पिता को बन्धन मे डाल रक्खा है। यह तुमने बड़ा अनुचित कार्य किया है। वे तुमसे कितना प्रेम करते है? बचपन मे उन्होने तुम्हारी किस प्रकार रक्षा की थी? इन सब बातो को तुम भूल गये हो। ऐसा कहकर माता ने उसे जन्म के समय की सारी घटना कह सुनाई।

माता के कथन को सुनकर कोणिक कहने लगा—माता! मैंने वास्तव मे बड़ा दुष्ट कार्य किया है। पिता श्रेणिक मेरे लिए देवगुरु के समान पूजनीय है। अतः अभी जाकर मै उनके बन्धन को काट देता हूँ। ऐसा कहकर हाथ मे फरसा लेकर वह राजा श्रेणिक की तरफ जाने लगा। हाथ मे फरसा लेकर अपनी तरफ आते हुए कोणिक को देखकर राजा श्रेणिक ने विचार किया कि न जाने अब यह मुझे किस कुमृत्यु से मारेगा। इसके हाथ से मारे जाने की अपेक्षा तो यही अच्छा है कि मै स्वयं मर जाऊँ।

ऐसा सोचकर उसने विषमिश्रित मुद्रिका अपने मुख मे र ली जिससे उसकी तत्क्षण मृत्यु हो गई।

नजदीक आने पर कोणिक को मालूम पड़ा कि विष खाने से राजा श्रेणिक की मृत्यु हो गई है। वह तत्क्षण मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा। कुछ समय पश्चात् उसे चेत हुआ। वह बार-बार पश्चात्ताप करता हुआ कहने लगा—मैं अधन्य हूँ, मैं अकृतपुण्य हूँ, मै महादुष्ट कर्म करने वाला हूँ। मेरे कारण राजा श्रेणिक की मृत्यु हुई है। इसके पश्चात् उसने राजा श्रेणिक का दाह-संस्कार किया।

कुछ समय बाद कोणिक चिन्ता-शोकरहित हुआ। वह राजगृह को छोड़कर चम्पा नगरी मे चला गया और उसी को अपनी राजधानी बनाकर वही रहने लगा। उसने काल-सुकाल आदि दसो भाइयो को उनके हिस्से का राज्य बाँट कर दे दिया।

श्रेणिक राजा के छोटे पुत्र का नाम विहल्लकुमार था। अपने जीवनकाल मे ही श्रेणिक राजा ने उन्हे एक सेचानक गन्धहस्ती और दिव्य अठारहलड़ा वंकचूड़ हार दे दिया था। विहल्लकुमार उस हाथी पर सवार होकर गगा नदी के किनारे जाते और वहाँ अनेक प्रकार की क्रीड़ाएँ करते। उनकी रानियो को हाथी अपनी सूँड मे उठाता, पीठ पर बिठाता तथा और भी अनेक प्रकार की क्रीड़ाओ द्वारा उनका मनोर न करता हुआ उन्हे गङ्गा मे स्नान कराता। इस प्रकार उसकी क्रीड़ाओ को देखकर लोग कहने लगे कि वास्तव मे राज्यश्री के उपभोग का आनन्द तो बस विह -कुमार लेता है। जब यह बात कोणिक की रानी पद्मावती ने सुनी तो उसके हृदय मे ईर्षा उत्पन्न हुई। वह सोचने लगी—यदि

हमारे पास सेचानक गन्धहस्ती और हार नहीं है तो यह राज्य हमारे क्या काम का ? इसलिए विहल्लकुमार से सेचानक गन्ध-हस्ती और हार अपने यहाँ मँगा लेने के लिए मैं राजा कोणिक से प्रार्थना करूँगी। ऐसा सोचकर उसने अपनी इच्छा राजा कोणिक के सामने प्रकट की। रानी की बात सुनकर पहले तो राजा ने उसकी बात को टाल दिया किन्तु उसके बार-बार कहने पर राजा के हृदय में भी यह बात जँच गई। उसने विहल्लकुमार से हार और हाथी मांगे तब विहल्लकुमार ने कहा कि यदि आप हार और हाथी लेना चाहते हैं तो मेरे हिस्से का राज्य मुझे दे दीजिए। विहल्लकुमार की इस न्यायोचित बात पर कोणिक ने कोई ध्यान नहीं दिया। उसने हार और हाथी जबर्दस्ती छीन लेने का विचार किया। इस बात का पता जब विहल्लकुमार को लगा तो हार और हाथी को लेकर अपने अन्तःपुर सहित वह विशाला नगरी में अपने नाना चेड़ा राजा की शरण में चला गया। तत्पश्चात् कोणिक ने अपने नाना चेडा राजा के पास यह सन्देश देकर एक दूत भेजा कि 'विहल्लकुमार मुझे बिना पूछे हार और हाथी लेकर आपके पास चला आया है। इसलिए उसे मेरे पास शीघ्र वापिस भेज दीजिये।'

उपरोक्त सन्देश लेकर दूत विशाला नगरी में चेड़ा राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने राजा कोणिक का सन्देश कह सुनाया। चेड़ा राजा ने दूत से कहा—'तुम कोणिक से कहना कि जिस प्रकार तुम श्रेणिक-पुत्र, चेलना के अङ्गजात और मेरे दोहिते हो उसी प्रकार विहल्लकुमार भी श्रेणिक का पुत्र, चेलना का अङ्गजात और मेरा दोहिता है। श्रेणिक राजा जब जीवित थे तभी यह हार और हाथी विहल्लकुमार को दे दिये थे। यदि

अब तुम इन्हे लेना चाहते हो तो विहल्लकुमार को उसके हिस्से का राज्य दे दो।'

दूत ने जाकर यह बात कोणिक राजा को कही। इसे सुनते ही कोणिक राजा अतिकुपित हुआ। उसने कहा—राज्य मे उत्पन्न हुई सब वस्तुओ का स्वामी राजा होता है। हार और हाथी भी मेरे राज्य मे उत्पन्न हुए हैं। इसलिए उन पर मेरा अधिकार है। वे मेरे ही भोग मे आने चाहिएँ। ऐसा सोचकर उसने चेड़ा राजा के पास दूसरा दूत भेजकर कहलवाया—'या तो हार हाथी सहित विहल्लकुमार को मेरे पास भेज दीजिये अन्यथा युद्ध के लिए तैयार हो जाइये।'

चेड़ा राजा के पास पहुँच कर दूत ने कोणिक राजा का सन्देश कह सुनाया। चेड़ा राजा ने कहा—यदि कोणिक अनीति-पूर्वक युद्ध करने को तैयार हो गया है तो न्याय और नीति की रक्षा के निमित्त मै भी युद्ध करने को तैयार हूँ।

दूत ने जाकर कोणिक राजा को उपरोक्त बात कह सुनाई। तत्पश्चात् काल-सुकाल आदि दसो भाइयो को बुलाकर कोणिक ने उनसे कहा कि तुम लोग अपने राज्य मे जाकर अपनी-अपनी सेना लेकर शीघ्र आओ। कोणिक राजा की आज्ञा को सुनकर दसों भाई अपने राज्य मे गये और सेनाएँ लेकर कोणिक की सेवा मे उपस्थित हुए। कोणिक भी अपनी सेना को सज्जित कर तैयार हुआ। फिर वे सभी विशाला नगरी पर चढ़ाई करने के लिए रवाना हुए। उनकी सेना मे तेतीस हजार हाथी, तेतीस हजार घोड़े, तेतीस हजार रथ और तेतीस कोटि पदाति (पैदल सैनिक) थे।

इधर चेड़ा राजा ने अपने धर्ममित्र काशी देश के नवमल्लि वंश के राजाओं को और कौशल देश के नव लच्छिवंश के राजाओं को एक जगह बुलाया और विहल्लकुमार विषयक सारी हकीकत कही। चेड़ा राजा ने कहा—भूपतियो! कोणिक राजा मेरी न्यायसंगत बात की अवहेलना करके अपनी चतुरंगिणी सेना को लेकर युद्ध करने के लिए यहाँ आ रहा है। अब आप लोगों की क्या सम्मति है? क्या विहल्लकुमार को वापिस भेज दिया जाय या युद्ध किया जाय?

सब राजाओं ने एक मत होकर जवाब दिया—मित्र! हम क्षत्रिय हैं। शरणागत की रक्षा करना हमारा परम कर्त्तव्य है। विहल्लकुमार का पक्ष न्यायसंगत है और वह हमारी शरण में आ चुका है। इसलिए हम उसे कोणिक के पास नहीं भेज सकते। न्याय और नीति की रक्षा करने के लिए हम युद्ध करने को तैयार हैं। उनका कथन सुनकर चेड़ा राजा ने कहा—जब आप लोगों का यही निश्चय है तो आप लोग अपनी-अपनी सेना लेकर वापिस शीघ्र आइये। तत्पश्चात् वे अपने-अपने राज्य में गये और सेनाएँ लेकर वापिस चेड़ा राजा के पास आये। चेड़ा राजा भी अपनी सेना को सज्जित कर तैयार हो गया। उन उन्नीसों राजाओं की सेना में सत्तावन हजार हाथी, सत्तावन हजार घोडे, सत्तावन हजार रथ और सत्तावन कोटि पदाति (पैदल सैनिक) थे।

दोनों ओर की सेनाएँ युद्ध में आ डटीं। घोर संग्राम होने लगा। काल, सुकाल आदि दसों भाई दस दिनों में मारे गये। तब कोणिक ने तेले का तप करके अपने पूर्वभव के मित्र देवों का स्मरण किया। जिससे शक्रेन्द्र और चमरेन्द्र उसकी सहायता

करने के लिए आये। पहले महाशिला संग्राम हुआ, जिसमे चौरासी लाख आदमी मारे गये। दूसरा रथमूसल संग्राम हुआ, उसमे छयानवे लाख मनुष्य मारे गये। उनमे से वरुणनाग नत्तुआ (एक श्रावक जो बारह व्रतधारी श्रावक था और बेले-बेले पारणा करता था) और उसका मित्र क्रमशः देव और मनुष्य-गति में गये। शेष सभी नरकतिर्यञ्च गति मे गये।

देवशक्ति के आगे चेड़ा राजा की महान् शक्ति भी काम न आई। वे परास्त होकर विशाला नगरी मे घुस गये और नगरी के दरवाजे बन्द करवा दिये। कोणिक राजा ने नगरी के कोट को गिराने की बहुत कोशिश की किन्तु वह उसे न गिरा सका। फिर कूलबालक नामक एक गुरुद्रोही पतित साधु की सहायता से विशाला नगरी के कोट को गिरा कर नगरी को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। हार और हाथी देवप्रदत्त थे इसलिए कोणिक उन्हे न ले सका।

❀ ढाल ❀

केइक कुमती इम कहे,
संग्राम छुड़ायाँ पाप रे जीवा।
पहली पिण नहीं वर्जणा,
युद्ध होता जाणी साफ रे जीवा ॥ मो० १ ॥
***चेड़ा कोणि री साख दे,**
भोलाँ ने सिखावे वाद रे जीवा।

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—
चेड़ा ने कोणिक री वारता, निरयावलिका भगवती साख रे।
मानव मुआ दोय संग्राम मे, एक क्रोड़ ने अस्सी लाख रे जीवा ॥३६

वीर अनुकम्पा आणी नहीं,
पोते न गया न मेल्या साध रे जीवा ॥ सो० २॥

याने पहला पिण वर्ज्या नहीं,
जाणता था संग्राम में घात रे जीवा ।
युद्ध मिटायाँ पाप छै,
तेथी कही न मेटण वात रे जीवा ॥ सो० ३॥

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानी लोगो का कथन है कि दो व्यक्ति लड़ रहे हो या दो राजाओ मे युद्ध हो रहा हो तो उपदेश देकर उनका युद्ध शान्त न करना चाहिए और उन्हे युद्ध होने से

भगवन्त अनुकम्पा आणी नही,
पोते न गया न मेल्या साध रे।
यॉ ने पहला पिण वर्ज्या नही,
ते तो जीवॉ री जाणी विराध रे जीवा ॥४०॥

एमॉ अनुकम्पा जाणता,
तो वीर विचाले जाय रे।
सगलॉ ने साता उपजावता,
यह तो थोड़े मे देता मिटाय रे जीवा ॥४१॥

कोणिक भक्त भगवान् रो,
चेड़ो बारह व्रत धार रे
इन्द्र भीड़ आयो ते समकिती,
ते किण विध लोपता कार रे जीवा ॥४२॥

(अनु० ढाल २ गाथा ३९-४३)

पहले भी समझाकर न रोकना चाहिए क्योंकि युद्ध मिटाने में पाप होता है इसीलिए भगवान् महावीर स्वामी ने चेड़ा और कोणिक राजा के युद्ध को नहीं मिटाया था। 'संग्राम मे अनेक मनुष्यों की घात होगी' यह बात भगवान् जानते थे फिर भी भगवान् ने उन्हे समझाकर युद्ध करने से रोका नहीं तथा जिस समय उन दोनो मे युद्ध हो रहा था उस समय भी उन्हे रोकने के लिए न स्वयं भगवान् गये और न दूसरे साधुओ को भेजा था। 'युद्ध मिटाने मे पाप है' इसीलिए भगवान् ने उनका युद्ध नही मिटाया था ॥१-३॥

(उत्तर)—भोला भरमावण तणो,
यो तो परतख माँड्यो फन्द रे जीवा।
ज्ञानी पूछे तेहने,
तब खड़ो हो जावे बन्द रे जीवा ॥मो० ४॥

जो युद्ध मेटण वीर ना गया,
तेथी रण मेटण में प रे जीवा।
तो हिं ा मेटण वीर ा गया,
तेथी हिंसा मेटण में प रे जीवा ॥मो० ५॥

भावार्थ :—भोले लोगो को भ्रम मे डालने के लिए उन लोगों ने यह प्रपञ्च रचा है किन्तु जब ज्ञानी पुरुष उन लोगो से पूछते हैं तब उन्हें कुछ भी जवाब नही आता। उनका मुँह बन्द हो जाता है। उन लोगों से पूछना चाहिए कि 'चेड़ा राजा और कोणिक राजा के युद्ध को मिटाने के लिए वीर भगवान् नहीं गये

थे।' इसलिए आप लोग युद्ध मिटाने मे पाप की स्थापना करते हो तो हम आपसे पूछते है कि युद्ध मे होने वाली हिंसा को मिटाने के लिए वीर भगवान् नही गये तो क्या हिंसा मिटाने में भी पाप है ?

तब तो बोले उतावला,
हिंसा मेट्याँ तो होवे धर्म रे जीवा।
तो वीर मेटण किम ना गया,
महा हिंसा रा घोर कर्म रे जीवा ॥ मो० ६ ॥

चवदे पूर्व चार ज्ञान ना,
गोतमादिक लब्धिधार रे जीवा।
याँ ने हिंसा मेटण मेल्या नहीं,
कोई कारण कहो निरधार रे जीवा ॥ मो० ७ ॥

कोणि भक्तो वीर नो,
चेड़ो बारा व्रत नो धार रे जीवा।
उपदेश देता वीर जाय ने,
दोनों हिंसा देता टार रे जीवा ॥ मो० ८ ॥

भावार्थ :—तब तो वे उत्तर देते हैं कि 'हिंसा मिटाने से धर्म होता है, पाप नहीं।' तब उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'चेड़ा और कोणिक के संग्राम मे होने वाली महाहिसा को मिटाने के लिए वीर भगवान् स्वयं क्यो नही गये और चार ज्ञान एवं चौदह पूर्व के धारक तथा अनेक लब्धियो के धारक गौतमस्वामी

आदि साधुओ को क्यों नही भेजा ? कोणिक राजा भगवान् का परम भक्त था और चेड़ा राजा भी बारह व्रतधारी श्रावक था। यदि इन्हे उपदेश दिया जाता तो ये युद्ध मे होने वाली महा हिंसा को अवश्य टाल देते। फिर उन्हे समझाने के लिए वीर भगवान् स्वयं नही गये और साधुओं को भी नहीं भेजा इसमे क्या कारण था ? ॥६-८॥

तब तो बोले पाधरा,
'होणहार मेटी जाय रे जीवा।
ज्ञान में देख्याँ थी ना गया,
बलि धु न मेल्या नाय' रे जीवा ॥ मो० ६ ॥

भावार्थ :—तब तो वे लोग इसका सीधा उत्तर देते हैं कि 'भगवान् ने अपने ज्ञान से इस बात को जान लिया था कि यह अवश्य होनहार (भवितव्यता) है।' 'होनहार' टाली नहीं जा सकती। इसीलिए वीर भगवान् स्वयं नही गये और साधुओ को भी नहीं भेजा॥६॥

तो इमहिज समझो व थी,
संग्राम मेटण में धर्म रे जीवा।
न्याय रीत समझावियाँ,
शान्ति हुए न बन्धे कर्म रे जीवा ॥ मो० १० ॥

भावार्थ :—तब ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि जिस प्रकार हिंसा मिटाने मे धर्म है उसी प्रकार सग्राम (युद्ध) मिटाने मे भी धर्म है। युद्ध करने वाले व्यक्तियो को न्याय बात समझा देने

पर दोनो तरफ शान्ति हो जाती है और किसी के कर्मबन्ध नहीं होता ॥१०॥

सब जीव खेमङ्कर वीरजी,
सुयगडाङ्ग मॉंय देख रे जीवा।
भय मेटे सब जीव रा,
अभयंकर विरुद विशेख रे जीवा ॥ मो० ११ ॥

भगवन्त विचरे देश में,
सौ-सौ कोसाँ रे मॉंय रे जीवा।
मनुष्याँ रे उपद्रव ना रहे,
पिण होणी तो मिटे नॉंय रे जीवा ॥ मो० १२ ॥

तिम चेड़ा कोणि संग्राम में,
न्याय मिटायाँ मोटो धर्म रे जीवा।
मिटतो न देख्यो ज्ञान में,
प्रभु ना गया समझो मर्म रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

भावार्थ :—सूयगडॉग सूत्र मे वीर भगवान् को 'क्षेमंकर और अभयङ्कर' कहा है। सब जीवो के क्षेम यानि शान्ति के करने वाले होने से वीर भगवान् 'क्षेमङ्कर' कहे जाते है और सब जीवो के भय को मिटाने वाले होने के कारण 'अभयङ्कर' कहे जाते हैं। जिस देश मे भगवान् विचरते है वहॉं सौ-सौ कोस तक किसी तरह का उपद्रव नही होता परन्तु होनहार (भवितव्यता) तो वहाँ भी नहीं टलती। 'होनहार' तो होकर ही रहती है।

न्याय बात समझा कर चेड़ा और कोणिक के संग्राम को मिटा देना महान् धर्म का कार्य था किन्तु भगवान् ने अपने ज्ञान से जान लिया था कि यह अवश्यम्भावी (होनहार) है इसीलिए आप स्वयं भी उन्हें समझाने के लिए नहीं गये और साधुओं को भी नहीं भेजा ॥११-१३॥

अनुकम्पा उठायवा,
मिथ्या माँड्यो थाँ परपञ्च रे जीवा।
चतुर विचारे न्याय ने,
त्याग देवे मिथ्या खंच रे जीवा॥
मोह नुकम्पा न ाणिये ॥१४॥

भावार्थ :—अनुकम्पाद्वेपियों ने अनुकम्पा को उठा देने के लिए यह सब मिथ्या प्रपञ्च रचा है और इसीलिए वे संग्राम मिटाने में पाप की स्थापना करते हैं किन्तु चतुर पुरुष को चाहिए कि न्याय-बात को समझकर मिथ्यापक्ष को छोड़ दे। मिथ्यापक्ष को छोड़ देने से ही आत्मा का कल्याण होता है ॥१४॥

९-अधिकार-'समुद्रपाल ने चोर पर अनुकम्पा नहीं की' ऐसा कहने वालों को उत्तर

संचि था :—

चम्पा नाम की नगरी में पालित नाम का एक व्यापारी रहता था। वह श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का श्रावक था।

जीवाजीवादि नौ तत्त्वो का ज्ञाता और निर्ग्रन्थ-प्रवचनों मे कोविद (पण्डित) था। एक बार व्यापार करने के लिए वह जहाज द्वारा पिहुण्ड नगर मे आया और वहाँ उसने अपना व्यापार शुरू किया। न्याय-नीति, सच्चाई और ईमानदारी के साथ व्यापार करने से उसका व्यापार बहुत चमक उठा। सारे शहर मे उसका यश और कीर्ति फैल गई। पिहुण्ड नगर मे रहते हुए उसे कई वर्ष बीत गये। उसके गुणो से आकृष्ट होकर पिहुण्ड नगरनिवासी एक महाजन ने रूप-लावण्यसम्पन्न अपनी कन्या का विवाह पालित के साथ कर दिया। अब वे दोनो दम्पति आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे। कुछ समय पश्चात् वह कन्या गर्भवती हुई। अपनी गर्भवती पत्नी को साथ लेकर पालित श्रावक जहाज द्वारा अपने घर चम्पा नगरी आने के लिए रवाना हुआ। आसन्नप्रसवा होने से पालित की पत्नी ने समुद्र मे ही पुत्र को जन्म दिया। समुद्र मे पैदा होने के कारण उस बालक का नाम समुद्रपाल रक्खा गया। सबको प्रिय लगने वाला सौम्य और कान्तिधारी वह बालक सुखपूर्वक बढ़ने लगा। योग्य वय होने पर उसे शिक्षागुरु के पास भेजा गया। विलक्षण बुद्धि होने के कारण शीघ्र ही वह बहत्तर कलाओ तथा नीतिशास्त्र मे पारंगत हो गया। जब वह यौवन-वय को प्राप्त हुआ तब उसके पिता ने अप्सरा जैसी सुन्दर एक महारूपवती कन्या के साथ उसका विवाह कर दिया। विवाह हो जाने के पश्चात् समुद्रपाल उस कन्या के साथ रमणीय महल मे रहने लगा और दोगुन्दक-देव के समान कामभोग भोगता हुआ सुखपूर्वक समय बिताने लगा।

एक दिन वह अपने महल की खिड़की मे बैठा हुआ नगर-चर्या देख रहा था। इतने ही मे फाँसी पर चढ़ाने के लिए वध्य-

भूमि की तरफ मृत्युदण्ड के चिन्ह सहित ले जाये जाते हुए एक चोर पर उसकी दृष्टि पड़ी। उस चोर को देखकर उसके हृदय मे कई तरह के विचार उठने लगे। वह सोचने लगा कि अशुभ कर्मों के कैसे कड़वे फल भोगने पड़ते हैं। इस चोर के अशुभ कर्मों का उदय है इसी से इसको यह कडुआ फल भोगना पड़ रहा है। यह मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। 'जो जैसा करता है वह वैसा भोगता है' यह अटल सिद्धान्त समुद्रपाल के प्रत्येक अङ्ग मे व्याप्त हो गया। कर्मों के इस अटल नियम ने उसके हृदय को कँपा दिया। वह विचारने लगा कि मेरे लिए इन भोगजन्य सुखो के कैसे दुखदायी परिणाम होगे ? मैं क्या कर रहा हूँ ? यहाँ आने का मेरा क्या कारण है ? इत्यादि अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क उसके मन मे पैदा होने लगे। इस प्रकार गहरे चिन्तन के परिणामस्वरूप उसको जातिस्मरण ज्ञान पैदा हो गया जिससे वह अपने पूर्वभव को देखने लगा। परिणामस्वरूप उसे वैराग्य उत्पन्न हो गया। अपने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त कर उसने दीक्षा अङ्गीकार कर ली। अनेक वर्षों तक संयम का पालन कर वे मोक्ष को प्राप्त हो गये।

❀ ढाल ❀

पालित श्रावक गुणमणि,
वचने पण्डित जाण रे जीवा।
समुद्रपाल सुत तेहनो,
महल माँहे बैठो सुखमाण रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा जाणिये ॥१॥

फाँसी योग एक पुरुष ने,
    फाँसी रो पेरायो वेष रे जीवा।
तिण ने मारण ले जावताँ,
    समुद्रपाल देख्यो विशेष रे जीवा ॥ मो० २॥

करुणा उपजी अति घणी,
    अहो- हो कर्मविपाक रे जीवा।
वैरागे संजम लियो,
    मोक्ष गया करम कर खाक रे जीवा ॥ मो० ३॥

भावार्थ :—चम्पा नगरी मे पालित नाम का एक गुणवान् श्रावक था। वह प्रवचन मे पण्डित था। उसके पुत्र का नाम समुद्रपाल था। एक समय महल मे बैठा हुआ वह समुद्रपाल नगरचर्या देख रहा था इतने मे उनकी दृष्टि एक चोर पर पड़ी जो वध्य था और फाँसी के योग्य वेष पहनाकर राजपुरुषो द्वारा वध्यभूमि की ओर ले जाया जा रहा था। उसे देखकर समुद्रपाल के हृदय मे अत्यन्त करुणा उत्पन्न हुई और वे कर्मों के कटु विपाक का विचार करने लगे। तत्स्वरूप उन्हे वैराग्य उत्पन्न हो गया। दीक्षा अङ्गीकार कर वे मोक्ष मे गये ॥१-३॥

(कहे) " नुकम्पा न आणी चोर री"
    एवी मति काढे वाय रे जीवा।
नु म्पा रो धर्म उथापवा,
    भोलाँ ने दिया भरमाय रे जीवा ॥ मो० ४॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी कितनेक अज्ञानी लोक कहते हैं कि 'चोर को देखकर समुद्रपाल ने उस पर अनुकम्पा नहीं की।' इस प्रकार कहकर वे अनुकम्पा-धर्म को उठाना चाहते हैं और भोले लोगो को भ्रम मे डालते है ॥४॥

दुःखी देख कोई जीव ने,
करुणा उपजे मन माँय रे जीवा।
कोमल भाव करुणा कही,
दुःख मेटण भाव कहाय रे जीवा ॥ मो० ५ ॥

शक्ति वसर पाय ने,
पर जीवाँ रा मेटे दुःख रे जीवा।
फल रे निज भाव ने,
करुणा रे हो सन रे जीवा ॥ मो० ६ ॥

जो शक्ति अवसर ना हुवे,
नुकम्पा रहे मन माँय रे जीवा।
ते भावे करुणा जिन कही,
व्यवहारे न्याय दिखाय रे जीवा ॥ मो० ७ ॥

भावार्थ :—किसी दुःखी जीव को देखकर उसके दुःख मिटाने के लिए हृदय मे जो करुणा के भाव उत्पन्न होते है वह भाव करुणा कहलाती है। शक्ति और अनुकूल अवसर होने पर जब दुःखी प्राणी का दुःख दूर किया जाता है तब वह व्यवहार में करुणा कही जाती है किन्तु यदि शक्ति और अनुकूल अवसर न

हो तब अनुकम्पा एवं करुणा हृदय में ही रहती है वह भाव-करुणा है और वह व्यवहार में दृष्टिगोचर नहीं होती ॥५-७॥

जिम जीरण भाई भावना,
वीर रो नहीं मिलियो जोग रे जीवा।
तिरियो निर्मल भाव थी,
व्यवहारे रयो वियोग रे जीवा ॥ मो० ८॥

तिम मरता पुरुष देख ने,
करुणा उपजी मन माँय रे जीवा।
सरूप जाण संसार नो,
समुद्रपाल नी धूजी काय रे जीवा ॥ मो० ९॥

चोर अपराधी राय नो,
ते राख्यो कहो किम जाय रे जीवा।
व्यवहार नहीं यह जगत् नो,
राखण री शक्ति नाय रे जीवा ॥ मो० १०॥

तेहथी छोड़ाई ना शक्या,
पिण छोड्यो संसार रे जीवा।
भावाँ करुणा आदरी,
तेथी पाया भव नो पार रे जीवा ॥ मो० ११॥

भावार्थ :—जिस प्रकार श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के पारणे के दिन जीरण सेठ ने भावना भाई थी। यद्यपि वीर

भगवान् का योग नहीं मिला था और भगवान् का पारणा जीरण सेठ के घर नही हुआ था तथापि भावना की प्रबलता के कारण जीरण सेठ तिर गया अर्थात् वह संसार-समुद्र के किनारे तक पहुँच गया। इसी प्रकार फाँसी पर ले जाये जाते हुए चोर पुरुष को देखकर समुद्रपाल के मन मे अत्यन्त करुणा उत्पन्न हुई। अशुभ कर्मों के कठोर एवं कड़वे फल को तथा संसार के स्वरूप को जानकर समुद्रपाल का शरीर कंपित हो गया किन्तु वह चोर तो राजा का अपराधी था उसे कैसे बचाया जा सकता था। लौकिक व्यवहार न होने से तथा उसको बचाने की शक्ति न होने से समुद्रपाल उस चोर को न बचा सके। उसे देखकर कर्मों के कठोर एवं कड़वे परिणाम को जानकर समुद्रपाल के हृदय मे वैराग्य उत्पन्न हो गया। संसार त्याग कर उन्होने दीक्षा अङ्गीकार कर ली और वे मोक्ष को प्राप्त हो गये ॥८-११॥

समुद्रपाल रो नाम ले,
करुणा उठावण ाज रे जीवा।
ते बैरी नुकम्पा तणा,
झूठ बोलण री हीं लाज रे जीवा ॥ मो० १२॥

भावार्थ :—'समुद्रपाल ने चोर पर अनुकम्पा नहीं की' ऐसा कहने वाले अनुकम्पा के द्वेषी हैं, उन्हे मिथ्या भाषण करते हुए जरा भी शर्म नहीं आती ॥१२॥

भवजीवाँ! हिरदा में धारजो,
निश्चय करु । रा भाव रे जीवा।

शक्ति सारूँ सफलो करे,
जब मिले व्यवहार रो दाव रे जीवा ॥ मो० १३ ॥

भावार्थ :—ज्ञानी पुरुष कहते है कि हे भव्य जीवो ! करुणा के भावो को सदा हृदय से धारण करो और शक्ति और समया-नुसार व्यवहार से अनुकम्पा करके दुःखी जीवो के दुःखो को दूर कर उनके आर्त्त रौद्र ध्यान को मिटाओ जिससे आत्मा का कल्याण हो ॥१३॥

साधु श्रावक दोनों तणा,
करुणा रा भाव सुहाय रे जीवा ।
परवरती जुई जुई,
तुमे जुवो सूत्र रो न्याय रे जीवा ॥ मो० १४ ॥

भावार्थ :—साधु और श्रावक दोनो मे करुणा के भाव (भाव अनुकम्पा) एक सरीखे होते है किन्तु शास्त्र मे दोनो की व्यवहारिक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न बतलाई गई है ॥१४॥

जिन ल्पी थीवरकल्पी नी,
प्रवृत्ति एक न होय रे जीवा ।
एक करयाँ प्राछित हुवे,
दूजे नहीं करवा थी जोय रे जीवा ॥ मो० १५ ॥

तिम श्रावक साधु तणी,
भिन्न-भिन्न छै मर्याद रे जीवा ।

गेही न करे पापी हुवे,
ते ही करवो न कल्पे साध रे जीवा ॥ मो० १६ ॥

भूखा राखे भोजन ना दिये,
श्राव होवे दयाहीण रे जीवा।
साधु आहार न देवे गृहस्थ ने,
ते तो कल्प राखण परवीण रे जीवा ॥ मो० १७ ॥

भावार्थ :—जिस प्रकार जिनकल्पी और स्थविरकल्पी साधुओं की प्रवृत्ति एक नही है किन्तु उन दोनो की प्रवृत्ति एवं कल्प भिन्न-भिन्न है। कई एक कार्य ऐसे है जिन्हे करने से जिन-कल्पी साधु को प्रायश्चित्त आता है और उन्हीं कार्यों को न करने से स्थविरकल्पी साधु को प्रायश्चित्त आता है। जैसे कि किसी को दीक्षा न देना, शिष्य न बनाना, आहार-पानी आदि लाकर दूसरे साधु की वैयावच्च न करना इत्यादि जिनकल्पी साधु के कल्प है। यदि वह इन उपरोक्त कार्यों को करे तो उसे प्रायश्चित्त आता है किन्तु इन सब कार्यों को करना स्थविरकल्पी साधु का कल्प है। वह योग्य दीक्षार्थी को दीक्षा भी देता है, आहार-पानी आदि लाकर अपने संभोगी साधुओं की वैयावच्च भी करता है। यदि शक्ति अनुसार वह इन वैयावच्च कार्यों को न करे तो उसे प्रायश्चित्त आता है। कहने का अभिप्राय यह है कि जिन-कल्पी और स्थविरकल्पी का कल्प भिन्न-भिन्न है उसी प्रकार साधु और श्रावक दोनो के कर्त्तव्य भी भिन्न हैं। कई एक कार्य ऐसे हैं जिन्हे न करने से गृहस्थ को पाप लगता है किन्तु उन कार्यों को करना साधु का कल्प नही है। जैसे कि अपने आश्रित मनुष्य और पशु आदि को श्रावक यदि समय पर आहार-पानी

न दे और उन्हे भूखा रक्खे तो उसे पहले अहिंसाव्रत का 'भत्त-पाण वोच्छेए' नामक अतिचार लगता है किन्तु गृहस्थ को आहार-पानी देना साधु का कल्प नहीं है इसलिए अपने कल्प की रक्षा के लिए साधु गृहस्थ को आहार पानी नहीं देते है। कहने का अभिप्राय यह है कि साधु और श्रावक दोनों की भाव-अनुकम्पा एक सरीखी है किन्तु दोनो की व्यवहारिक प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न है ॥१५-१७॥

'साधु श्रावक दोनों तणी,
अनुकम्पा प्रवृत्ति एक' रे जीवा।
एवी करे प्ररूपणा,
प्रश्न पूछ्याँ पलटता देख रे जीवा ॥ मो० १८॥

साधु उपधि में उलझिया,
उंदरादिक जीव जाण रे जीवा।
साधु अनुकम्पा थी छोड़ दे,
नहीं छोड्यॉ थी होवे हाण रे जीवा ॥ मो० १६॥

गेही रे रस्सी में उलझिया,
गायादिक प्राणी जाण रे जीवा।
गेही दया से छोड़ दे,
नहीं छोड्याँ थी होवे हाण रे जीवा ॥ मो० २०॥

धर्म बतावे साध ने,
गेही ने बतावे पाप रे जीवा।

पड्यो किण रंगे,
ोटी श्रद्धा दीखे फ रे जीवा ॥ मो० २१ ॥

भावार्थ :—'साधु और श्रावक दोनो की अनुकम्पाविषयक प्रवृत्ति एक सरीखी है' यदि कोई ऐसी प्ररूपणा करता है तो यह अयुक्त है। उसकी प्ररूपणा उसके कथन से ही खण्डित हो जाती है क्योकि प्रश्न पूछने पर वह स्वयं अपनी प्ररूपणा पर स्थिर नहीं रहता किन्तु पलट जाता है। जैसे कि साधु की उपधि मे अर्थात् साधु के वस्त्र-पात्र आदि मे कोई चूहा आदि प्राणी उलझ जाय तो उस पर अनुकम्पा लाकर साधु उसे छोड़ देता है क्योंकि नहीं छोड़ने से अनर्थ होने की सम्भावना है। इसी तरह किसी गृहस्थ की रस्सी आदि मे कोई गाय, भैंस आदि प्राणी उलझ जाय तो उस पर अनुकम्पा लाकर गृहस्थ उसे छोड़ देता है, क्योकि नहीं छोड़ने से अनर्थ होने की सम्भावना है।

यहाँ पर साधु और श्रावक दोनों ने एक सरीखी प्रवृत्ति की है, एक सरीखी व्यवहारिक अनुकम्पा की है अर्थात् दोनो ने अपनी उपधि मे उलझ कर दुः पाते हुए एवं मरते हुए प्राणी की प्राणरक्षा की है। दोनो को समान फल होना चाहिए किन्तु वे लोग इस उपरोक्त कार्य से साधु को तो धर्म होना कहते हैं और श्रावक को पाप होना कहते है। अब उनसे पूछना चाहिए कि "तुम लोग साधु और श्रावक दोनो की व्यवहारिक अनुकम्पा विषयक प्रवृत्ति एक सरीखी कह रहे थे अब इतना फर्क कैसे कहते हो कि दोनों की एक समान प्रवृत्ति होने पर भी साधु को तो धर्म और श्रावक को पाप बता रहे हो।" इस प्रकार तुम लोग अपनी मान्यता का अपने मुख से ही खण्डन करते हो। अतः तुम्हारी मान्यता प्रत्यक्ष मिथ्या है ॥१८-२१॥

"साधु श्रावक री एक रीत छे"
मूँढा थी बोलो एम रे जीवा।
दोनों सरीखा काम में,
तुमे फर्क बताओ केम रे जीवा ॥ मो० २२ ॥

जीव मरे साधु योग थी,
गृहस्थ बतायाँ धर्म रे जीवा।
गेही-गेही ने जीव बताय दे,
तिण में तो बताओ अधर्म रे जीवा ॥ मो० २३ ॥

जीव बच्या दोनों जगा,
दोनों रा टलिया पाप रे जीवा।
इण दोनों सरीखा काम में,
उलट-पलट करे खोटी थाप रे जीवा ॥ मो० २४ ॥

धर्म बतावे एक में,
दूजा में केवे पाप रे जीवा।
यो कुटिल पन्थ कुगुराँ तणो,
खोटी श्रद्धा दीसे साफ रे जीवा ॥ मो० २५ ॥

भावार्थ :—उन लोगो से पूछना चाहिए कि "तुम लोग कहते हो कि साधु और श्रावक दोनो की रीति एक सरीखी है फिर दोनो के एक सरीखे कार्य मे तुम फर्क क्यो बताते हो ? जैसे कि किसी साधु के पैर नीचे आकर कोई जीव मर रहा है,

यदि श्रावक उसे बता दे तो इस कार्य मे धर्म होता है ऐसा तुम भी मानते हो किन्तु यदि किसी श्रावक के पैर नीचे आकर कोई जीव मर रहा है उसे यदि कोई श्रावक बता दे तो इसमे पाप होता है ऐसा तुम कहते हो। यह तुम्हारा कैसा बेढङ्गा न्याय है? दोनों जगह जीव की रक्षा हुई है अर्थात् साधु के पैर के नीचे आकर मरता हुआ जीव भी बचाया गया है और गृहस्थ के पैर नीचे आकर मरता हुआ जीव भी बचाया गया है। इन दोनों जगहों पर प्राणी की प्राणरक्षा हुई है और ये दोनो कार्य एक समान हैं फिर तुम लोग एक मे धर्म और दूसरे मे पाप कहते हो इसका क्या कारण है? यह तुम्हारा कुटिल पन्थ एक भ्रमजाल है। जिसमे फँसकर तुम अपनी आत्मा का अधःपतन कर रहे हो और भोले प्राणियो को भी इसमे फँसा कर उन्हे भी विवेक-भ्रष्ट करते हो और अपने साथ ही अनन्त संसार मे भटकाते हो ॥२२-२५॥

गुरु पट ओलखायवा,
जोड़ री शुद्ध न्याय रे जीवा।
ज्ये कृष्णा चतुर्दशी,
उगणीसे छियासी माँय रे जीवा ॥
मोह अनुकम्पा न जाणिये ॥२६॥

भावार्थ :—ग्रन्थकर्त्ता कहते है कि इन कुगुरुओ के कपट को ओलखाने के लिए एवं इनके भ्रमजाल को तोड़ने के लिए शुद्ध न्यायपूर्वक यह जोड़ संवत् १९८६ के ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को की गई है ॥२६॥

॥ इति तीसरी ढाल समाप्त ॥

❀ दोहा ❀

दुखिया देखी तावड़े, जो कोई मेले छाय।
पाप बतावे तेहने, या मन्दमति नी वाय ॥१॥

भावार्थ :—यदि कोई प्राणी धूप मे पड़ा हुआ दुःख पा रहा हो उसे कोई दयावान् पुरुष उठाकर छाया मे रख दे, इस अनुकम्पा के कार्य मे जो पाप बतावे उसे मन्दबुद्धि अज्ञानी समझना चाहिए॥१॥

हणे हणावे भल जाणवे, तीनों करणा पाप।
तिम रक्षा माँही कहे, खोटी श्रद्धा फ ॥२॥

भावार्थ :—जिस प्रकार जीव को मारना, मरवाना और मारने वाले की अनुमोदना करना पाप का कार्य है उसी प्रकार जो लोग जीव की रक्षा करना, रक्षा कराना और रक्षा करने वाले की अनुमोदना करने मे पाप कहते हैं वे मिथ्यावादी अज्ञानी हैं उनकी यह श्रद्धा मिथ्या है ॥२॥

कर्म उदे थी जीवडा, तीव्र वेदना पाय।
आरत-रुद्र ध्यान थी, माठाँ कर्म बंधाय ॥३॥

कर्मबन्ध टालन तणो, ज्ञानी करे उपाय।
उपदेशे अरु साज थी, देवे कष्ट छुड़ाय ॥४॥

साधु कल्प थी साधजी, गृहस्थ ल्प थी गृहस्थ ।
तीव्र आर मिटाय ने, संतोषी करे स्वस्थ ॥५॥

भावार्थ :—पूर्वक्त अशुभ कर्मो के उदय से जीव इस संसार मे तीव्र वेदना भोगते है और उस समय आर्त्त रौद्र ध्यान करते हुए जीव फिर अशुभ कर्मो का बन्ध करते है। ऐसे समय मे ज्ञानी पुरुष साधु मुनिराज अपने कल्प के अनुसार उपदेशादि द्वारा उन दु:खी जीवो के आर्त्त रौद्र ध्यान मिटाने का प्रय करते हैं और गृहस्थ अपनी शक्ति और अवसर के अनुसार उन्हें साज (सहायता) देकर उनके आर्त्त रौद्र ध्यान मिटाने का प्रय करते हैं ॥३-५॥

दु: मेटण में मन्द ति, पापबन्ध बतलाय ।
संजती रो नाम ले, खोटा चोज लगाय ॥६॥

मारण वालो असंजती, संजती मारयो । ।
ए देवे महावेदना, ए दुखे घबराय ॥७॥

ारत रुद्दर ध्या थी, दोनों बाँधे पाप ।
पाप टलावे बेहु , ते ज्ञानी मन साफ ॥८॥

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानी लोग कुहेतु लगाकर कहते हैं कि दु:खी जीव के दु:ख को दूर करने मे पापवन्ध होता है क्योकि वह असंयति है किन्तु उनका यह कथन अज्ञानतापूर्ण है। जो प्राणियो को दु:खी करता है एवं उन्हें मारता है वह स्वयं भी असंयति है और जो मारा जाता है वह भी असंयति है। उनमे से

एक महावेदना देता है और दूसरा दुःख मे घबराता है। इस प्रकार आर्त्त रौद्र ध्यान से दोनो पापकर्म का बंध करते है किन्तु ज्ञानी पुरुप उन दोनो के पापबन्ध को टाल देते है अर्थात् मारने वाले हिसक को हिसा के पाप से बचा देते है और मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा कर उसे आर्त्त रौद्र ध्यान से होने वाले कर्मबन्ध से बचा देते है। इस प्रकार ज्ञानी पुरुप का मन तो साफ है अर्थात् उसके हृदय से किसी के प्रति राग-द्वेप नही है। वह तो दोनो का हित चाहता है और दोनो का आर्त्त रौद्र ध्यान मिटा कर दोनो को पापबन्ध से बचाता है ॥६-८॥

(कहे) 'हिंसक पाप छुड़ाय दाँ, मरे तो भुगतो कर्म।
दुःख मेटे कोई तेहनो, म्हें नहीं मानाँ धर्म ॥६॥

भावार्थ :—कितनेक अज्ञानी लोग कहते है कि 'हम तो हिंसक के पापकर्म को छुड़ा देते है किन्तु जो मारा जाता है उसकी प्राणरक्षा हम नही करते। वह तो अपने कर्म भुगतता है। यदि कोई हिसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणी के दुःख को दूर कर उसकी प्राणरक्षा करता है तो हम इसे धर्म नही समझते।' ऐसा कहने वाले अनुकम्पा के द्वेपी अज्ञानी है ॥६॥

या श्रद्धा गुरु तणी, मिथ्या जाणो साफ।
त युक्ति माने नहीं, उदय मोह रो पाप ॥१०॥

भावार्थ :—यह उपरोक्त श्रद्धा कुगुरुओ की है। इसे मिथ्या समझना चाहिए। उन कुगुरुओ के मिथ्यात्व मोहनीय कर्म का उदय है इसीलिए वे सत्युक्ति को भी नही मानते हैं ॥१०॥

जीव बचावा ऊपरे, खोटा देवे न्याय।
युक्ति थी खण्ड किया, मिथ्यातम मिट जाय ॥११॥

भावार्थ :—जो लोग जीवो की रक्षा करने मे पाप बताते हैं और इसके लिए कुयुक्तियाँ देते हैं। उन कुयुक्तियो का इस ग्रन्थ मे सत्य एवं न्यायपूर्ण युक्तियो द्वारा खण्डन किया गया है ताकि मिथ्यात्वरूप अन्धकार का नाश होकर सत्यधर्म का प्रकाश हो और मिथ्यामत मे फँसे हुए लोगो का भी उद्धार हो ॥११॥

: चौथी ढाल :
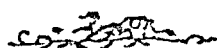
(कहे) 'नाडो भरियो हो डेंडक माछला,
तिण पर भैंस्यो आयो चलाय हो भविकजन ।
तिण ने हंकाल्याँ दुःख थी मरे,
नहीं हँकाल्याँ मरे तसकाय हो भविकजन ॥
करो परीक्षा सतधर्म री ॥१॥

धर्मी छोड़ावे केहने,
कर्म करी दुःख पाय हो भविकजन ।
ाय लागी संसार में,
बीचे पड़ियाँ पाप बँधाय हो भविकजन ॥ क० २ ॥

भावार्थ :—अनुकम्पा के द्वेषी वे लोग अनुकम्पा को उठाने के लिए एक दृष्टान्त देते हैं :—

एक नाडा (तलैया-छोटा तालाब) है जिसमे बहुतसे मेढक और मछलियाँ हैं। उस तलैया मे पानी पीने के लिए एक भैंस आई। वहाँ पर खड़ा हुआ एक धर्मी पुरुष देख रहा था। अब वह क्या करे ? अगर वह भैंस को वहाँ से हँकाल देता है तो वह प्यास से मरती है और यदि नही हँकालता है तो तलैया का पानी पी जाने पर उसमे रहे हुए मेढक और मछलियाँ तड़फ कर मरती है। अब वह धर्मी पुरुष क्या करे ? किसकी रक्षा करे ?

ऐसी अवस्था में उसे मध्यस्थ रहना चाहिए, कुछ भी न करना चाहिए। संसार में कर्मों की लाय लगी हुई है। सब प्राणी अपने कर्मानुसार दुःख पा रहे हैं। इसलिए उनके बीच मे न पड़ना चाहिए। बीच मे पड़ने से पापकर्म का वन्ध होता है ॥१-२॥

भोलाँ ने भरमायवा,
खोटा लगाया न्याय हो भविकजन।
ज्ञानी कहे हिवे भिलो,
इण रम ने देवाँ मिटाय हो भविकजन॥ ० ३॥

भावार्थ :—इस प्रकार कुगुरु अपने मिथ्यापक्ष की स्थापना करके अनुकम्पा की घात करते हैं और कुयुक्तियो द्वारा भोले प्राणियों को भ्रम मे डालते हैं। उन्होने मछली और मेंढक वाली तलैया में जाती हुई भैंस का दृष्टान्त देकर जो भ्रम पैदा किया है अब उसका निराकरण किया जाता है ॥३॥

भैंस्या ने जाताँ देख ने,
दयावन्त दया लाय हो भवि जन।
पाय संतोषियो,
तिर दीवी मिटाय हो भविकज ॥ ० ४॥

हिंसा लागी भैंस्या तणी,
जीवों री टल गई घात हो भविकजन।
दया शान्ति दोयाँ तणी,
धर्म त ी या बा हो भवि जन॥ ० ५॥

भावार्थ :—मछली मेंढक वाली तलैया पर जाती हुई भैंस को देखकर पास में खड़े हुए दयावान पुरुष ने भैंस को छाछ पिला दी। छाछ पी लेने से भैंस की तृष्णा शान्त हो गई। मछली और मेंढकों के मरने से जो हिंसा भैंस को लगती थी, अब भैंस उस हिंसा से बच गई और उन जीवों की प्राणरक्षा हो गई। इस प्रकार दोनों तरफ शान्ति हो गई। यह धर्म का कार्य हुआ। इसमें किसी को भी किसी तरह का पाप नहीं लगा ॥४-५॥

जो पाप बताओ थे एह में,
तो खोटो थारो पक्षपात हो भविकजन।
नाडा भैंसा रो नाम ले,
थें करुणा री कर रया घात हो भविकजन ॥ क० ६ ॥

भावार्थ :—अब उन लोगों से पूछना चाहिए कि इस उपरोक्त कार्य से धर्म हुआ या पाप ? यदि वे इसमें भी पाप बतावें तो समझना चाहिए कि यह उनका पक्ष मिथ्या है। उन्हें तो अनुकम्पा से ही द्वेष है। तलैया और भैंस का दृष्टान्त देकर वे अनुकम्पा की बात करते हैं। न्याययुक्त सत्य बात को समझने की उनकी इच्छा नहीं है ॥६॥

(कहे) 'साधु छा , पावे नहीं,
तिण थी बतावाँ पाप हो भविकजन।
जो इणमें साधु धर्म मानता,
तो झटपट करता आप हो' भविकजन ॥ क० ७ ॥

भावार्थ :—उन लोगों का कथन है कि साधु इस कार्य को नहीं करते अर्थात् साधु उस भैंस को छाछ नहीं पिलाते इसलिए

हम इस कार्य मे पाप बतलाते हैं क्योंकि यदि यह कार्य धर्म का होता तो साधु स्वयं इस कार्य को करने परन्तु साधु इस कार्य को नहीं करते इसलिए हम इसे पाप का कार्य बतलाते हैं ॥७॥

(उत्तर) ाधु गेही रा कल्प रो,
ज्याँरा घट में घोर अँधार हो भवि जन।
तेथी ाधु रो नाम ले,
दया छुड़ावे धिक्कार हो भविकजन ॥ ० ८॥

भावार्थ :—'जो कार्य साधु नहीं करता वह कार्य गृहस्थ को भी न करना चाहिए तथा जो कार्य साधु नही करता वह कार्य करने से गृहस्थ को पाप लगता है' ऐसी प्ररूपणा करने वालो को साधु और गृहस्थ के कल्प का ज्ञान नही है इसीलिए वे साधु का नाम लेकर गृहस्थ की दया छुड़ाते हैं। साधु का कल्प भिन्न है और गृहस्थ का कल्प भिन्न है। कई एक धर्म के ऐसे कार्य हैं जिनको अपने कल्प की रक्षा करने के लिए साधु नहीं कर सकता किन्तु गृहस्थ उन कार्यों को करके धर्मोपार्जन कर सकता है ॥८॥

जिनकल्पी आदरता त्यागियो,
थीवरकल्पी ने देणो आहार हो भवि जन।
ते परिचय टालण कारणे,
यो कल्पतणो व्यवहार हो भविकजन ॥ ० ९॥

थीवरकल्पी दीक्षा समय,
गृहस्थ ने देणो आ ार हो भविकजन।

त्याग्यो परिचय टालवा,
यो मुनि रो आचार हो भविकजन ॥क० १०॥

तेथी साधु न दे गेही ने,
ते कल्प रो मोटो काम हो भविकजन।
गेही देवै पाप छुड़ायवा,
ते कल्पे शुद्ध परिणाम हो भविकजन ॥क० ११॥

भावार्थ :—अपने-अपने कल्प की मर्यादा भिन्न-भिन्न होती है जैसे कि जिनकल्प को स्वीकार करते समय जिनकल्पी मुनि परिचयनिवारण के लिए स्थविरकल्पी मुनि को आहार देने का त्याग कर देते है और इसीलिए जिनकल्पी मुनि आहार लाकर स्थविरकल्पी मुनि को नहीं देते, यह जिनकल्पी मुनि का कल्प है परन्तु इससे यह सिद्धान्त स्थापित नहीं किया जा सकता कि स्थविरकल्पी मुनि को आहार देना पाप का कार्य है। इसी तरह दीक्षा लेते समय स्थविरकल्पी मुनि परिचयनिवारण के लिए गृहस्थ को आहार देने का त्याग कर देते है। इसलिए स्थविर-कल्पी मुनि गृहस्थ को आहारादि नहीं देते। यह स्थविरकल्पी मुनि का कल्प है। इससे यह सिद्धान्त स्थापित नहीं किया जा सकता कि गृहस्थ को आहार देना पाप का कार्य है। मुनि अपने कल्प की मर्यादा मे बँधा हुआ है, उस कल्प की रक्षा करना उनका प्रथम कर्त्तव्य है किन्तु जीवरक्षा के शुद्ध परिणामो से प्रेरित होकर गृहस्थ आहारादि दे सकता है इससे हिंसक हिंसा के पाप से बच जाता है और मारे जाने वाले प्राणी की प्राण-रक्षा हो जाती है। इस प्रकार दोनो जीवो को शान्तिलाभ प्राप्त

होता है। इस कार्य मे पाप बताना अज्ञान का ही परिणाम है ॥९-११॥

इम लिया ध रो ले,
लटाँ इल्याँ रो न्याय हो भवि ज ।
चा पाणी ने कन्द रो,
तिम उकरड़ी य हो भविक न ॥ ० १२॥

भावार्थ :—जिस प्रकार वे लोग मछली और मेढकों वाली तलैया का दृष्टान्त देते है उसी तरह लट सौर इल्यो से युक्त सूले हुए (घुन लगे हुए) धान का, सचित्त पानी का, कन्दमूल और उकरड़ी आदि का दृष्टान्त देते हैं उनका सबका समाधान जिस तरह तलैया मे जाती हुई भैस के दृष्टान्त का समाधान किया गया है उसी प्रकार कर देना चाहिए। यथा :—

इल्याँ लटाँ ल्या धान पे,
ए बकरी ण जाय हो भवि जन।
दय न्त ुँगड़ा य ने,
लिया दोनों ने बचाय हो विक ॥ ० १३॥

हिं टली इल्याँ तणी,
बकरी रो मिट्यो सन्ताप हो भवि ।
थाँरी श्रद्धा थी कहो तेने,
धर्म हुवो के प हो भविकजन ॥ ० १४॥

भावार्थ :—जैसे कि एक बकरी इल्यों और लटों से युक्त सूले हुए धान को खाने के लिए जा रही है। वहाँ पास ही में एक दयावान् पुरुष खड़ा था उसने उस बकरी को भूँगड़े (भुने हुए चने) खिला दिये। इस प्रकार उस दयावान ने उन दोनों को बचा लिए अर्थात् भूँगड़े खाने से बकरी की भूख शान्त हो गई तथा वह इल्यों और लटो की हिंसा से बच गई और उधर इल्यों और लटों की प्राणरक्षा हो गई। इस प्रकार दोनों का सन्ताप मिट गया। अब उन लोगों से पूछना चाहिए कि इसमें धर्म हुआ या पाप? यदि इस कार्य में भी वे पाप बतावे तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि उनको अनुकम्पा से ही द्वेष है। इसीलिए किसी जीव पर किसी भी निर्वद्य तरीके से की गई अनुकम्पा को भी वे पाप का कार्य बताते है। इसलिए बुद्धिमान् पुरुषों को चाहिए कि ऐसे कुगुरुओं के कुपन्थ को दूर से ही तिलांजलि दे दे ॥१३-१४॥

ाडा में पाणी थोड़को,
जीव घणा तिण माँय हो भविकजन।
भरिया डेंडक माछला,
पाणी पीवण आई गाय हो भविकजन ॥ क० १५ ॥

करुणावन्ते धोवण धान को,
गाय ने दियो पाय हो भविकजन।
तिणे पाप टाल्या दोनाँ तणा,
इण में धरम हुवो के नाय हो भविकजन ॥ क० १६ ॥

भावार्थ :—जिस प्रकार मेंढक, मछली वाली तलैया पर पानी पीने के लिए जाती हुई भैंस का दृष्टान्त देते हैं उसी प्रकार गाय का भी दृष्टान्त देते है। जैसे कि एक खड्डे मे थोड़ासा पानी है। एक गाय उस पानी को पीने के लिए आई। वहाँ एक दयावान् पुरुष खड़ा है, वह किसकी अनुकम्पा करे ? यदि वह गाय की अनुकम्पा करता है और उसे पानी पीने से नही रोकता है तो पानी पी जाने पर उस खड्डे मे रहे हुए मछली, मेंढक आदि बहुत से जीव मर जाते हैं। यदि वह दयावान् पुरुष उन मछली, मेंढक आदि जीवो की अनुकम्पा कर उस गाय को वहाँ पानी पीने से रोकता है तो वह गाय प्यास से मरती है। ऐसी अवस्था मे दयावान् पुरुष किसकी रक्षा करे ?

इसका समाधान इस प्रकार है कि ऐसे समय मे उस दयावान् पुरुष ने धोवण (अचित्त जल) उस गाय को पिला दिया जिससे गाय की प्यास भी बुझ गई और खड्डे मे रहे हुए मछली, मेंढक आदि बहुत से जीव भी बच गये। इस प्रकार दोनो तरफ के जीवो की प्राणरक्षा हो गई।

अब उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'तुम अपनी श्रद्धा के अनुसार बतलाओ कि इस कार्य मे धर्म हुआ या पाप ? यदि इस कार्य मे भी तुम पाप मानते हो तो यह स्पष्ट हो जाता है कि तुम्हारी श्रद्धा मिथ्या है। तुम्हे अनुकम्पा से पूर्ण द्वेष है। इसीलिए किसी भी निर्वद्य ढङ्ग से की गई अनुकम्पा को भी तुम लोग पाप ही बतलाते हो। यह तुम्हारी मान्यता मिथ्या है ॥१५-१६॥

चूहा ने बिल्ली तणा,

मा ी मा ा चित्राम हो भवि न।

दया काढण गुरु किया,
खोटाँ जाँरा परिणाम हो भविकजन ॥ क० १७ ॥

भावार्थ :—जिनके हृदय मे परिणाम बहुत कलुषित है ऐसे कुगुरुओ ने अनुकम्पा को उठाने के लिए चूहा और बिल्ली तथा मक्खियाँ आदि के कई चित्र (फोटो) बना रक्खे है जिन्हे दिखा कर भोले जीवो को भ्रम मे डालते है और उनके हृदय से अनुकम्पा निकालने की चेष्टा करते है ॥१७॥

चूहा मारण बिल्ली चली,
दयावन्त दया लाय हो भविकजन।
रक्षा री चूहा तणी,
पय मिनकी ने दीनो पाय हो भविकजन ॥ ० १८ ॥

प्राण बच्या चूहा तणा,
मिन्नी रो मिटायो पाप हो भविकजन।
थारी श्रद्धा से कहो,
धरम हुवो के पाप हो भविकजन ॥ क० १९ ॥

भावार्थ :—वे लोग दृष्टान्त देते हैं कि एक बिल्ली किसी चूहे को मारने के लिए दौड़ी। वहाँ एक दयावान् पुरुष खड़ा है। ऐसे समय मे वह क्या करे ? चूहे की रक्षा करने के लिए यदि वह बिल्ली को रोकता है तो बिल्ली को अन्तराय लगती है और वह भूख से मरती है। ऐसे समय मे दयावान् किसकी रक्षा करे ?

इसका समाधान यह है कि दयावान् पुरुष ने बिल्ली को दूध पिला दिया या रोटी खिला दी जिससे बिल्ली की भूख शान्त हो गई और उधर चूहे के प्राण बच गये। इस प्रकार बिल्ली और चूहे दोनो की रक्षा हो गई।

अब उन लोगो से पूछना चाहिए कि 'तुम अपनी श्रद्धा के अनुसार बतलाओ कि इस कार्य मे धर्म हुआ या पाप ?' यदि इस कार्य मे भी पाप बतलाते हो तो इससे साफ जाहिर हो जाता है कि तुम्हारी श्रद्धा मिथ्या है। तुम्हें तो अनुकम्पा से ही द्वेष है। इसीलिए अनुकम्पा के प्रत्येक कार्य में पाप ही पाप मानते हो। प्रतीत होता है तुम्हारे हृदय मे पाप ही पाप समाया हुआ है। जिस प्रकार पीलिया रोग वाले पुरुष को सब चीजें पीली ही पीली दिखाई देती हैं उसी प्रकार जिनके हृदय मे पाप ही पाप समाया हुआ हो ऐसे पापी जीवो को अनुकम्पा जैसे पवित्र और लोकोपकारी प्रत्येक कार्य मे पाप ही पाप दि ाई देता है। ऐसे पामर प्राणी सचमुच दयनीय है। जिनेश्वरदेव उन्हे सद्बुद्धि दे ताकि वे सत्य सिद्धान्त को समझकर सत्पथ ग्रहण कर सके ॥१८-१६॥

ज्ञानी पुरुष हुआ घणा,
त्र रच्या तंतसार हो भ ।
जीवरक्षा रे रणे,
दे ो रद्वार हो विकज ॥क० २०॥

भावार्थ :—अनन्त तीर्थकर हो गये है उन सब ने जीवरक्षा के लिए ही जैनागमो की रचना की है। प्रश्नव्याकरण सूत्र के प्रथम संवरद्वार मे लिखा है कि :—

"सव्व जगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं"

अर्थात्—जगत् के सम्पूर्ण जीवों की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र के इस मूलपाठ मे जीवरक्षा रूप धर्म के लिए जैनागम की रचना होना बतलाया गया है। अतः जीव-रक्षा रूप धर्म जैनधर्म का प्रधान अङ्ग है। उस जीवरक्षा को जो धर्म मानता है और विधिवत् उसका पालन करता है वही तीर्थंकर की आज्ञा का आराधक पुरुष है। इसके विपरीत जो जीवरक्षा को धर्म नहीं मानता किन्तु इसको पाप अथवा अधर्म बतलाता है वह धर्म का द्रोही और वीतराग की आज्ञा का तिरस्कार करने वाला है ॥२०॥

जिण न्याय हेतु दृष्टान्त थी,
कोमल हुवे चित्त हो भविकजन।
दया अनुकम्पा ऊपजे,
ते सत शास्त्र री रीत हो भविकजन ॥क० २१॥

जिण न्याय हेतु दृष्टान्त थी,
दया भाव उठ जाय हो भवि जन।
ते कुहेतु जाणज्यो,
साँचो समझो न्याय हो भविकजन ॥क० २२॥

भावार्थ :—जिन हेतु और दृष्टान्तों से चित्त कोमल बने और चित्त में दया अनुकम्पा उत्पन्न हो उन्हें सद्हेतु और सद्-दृष्टान्त समझना चाहिए और ऐसे सद्हेतु और सद्दृष्टान्तों का कथन जिसमे किया गया हो उसे सद्ग्रन्थ एवं सत्शा समझना चाहिए। जैसा कि कहा गया है :—

जं च्चा पडिवज्जंति, तवं ंि महिं यं ॥

(उत्तरा० अध्य० ३)

अर्थात्—जिसके श्रवण से तप, क्षमा और अहिसा इन गुणों की प्राप्ति हो वह सत्शास्त्र (सच्चा शास्त्र) है।

जिन हेतु और दृष्टान्तो से हृदय कठोर बन जाय और हृदय में से दया-अनुकम्पा उठ जाय उन्हें कुहेतु और कुदृष्टान्त समझना चाहिए और ऐसे कुहेतु और कुदृष्टान्तो का कथन जिसमें किया गया हो उसे कुग्रन्थ (खोटा ग्रन्थ) और कुशा (ोटा शास्त्र) समझना चाहिए ॥२१-२२॥

अल्प पाप बहु पाप रा,
ज्ञानी बताया हो भ जन।
बुधवन्त समझे ज्ञान सूँ,
ोलखे ध परिणाम ो भविकजन ॥ ० २३॥

भावार्थ :—ज्ञानी पुरुषों ने अल्प पाप (अल्पारम्भ) और बहु पाप (महारम्भ) के कार्य बताये हैं। बुद्धिमान् पुरुष उन्हे अपने शुद्ध परिणामो के द्वारा समझ सकता है। वह स्वयं महारम्भ का कार्य नही करता और दूसरो से भी महारम्भ का कार्य छुड़ाने का प्रयत्न करता है ॥२३॥

जे ारज करता थकाँ,
भारी टल जावे पाप हो भविकजन।
आपनो परनो वेहू नो,
कर्मों ने नाँखे काप हो भविकजन ॥ क० २४ ॥

ज्ञान दर्शन होवे निर्मला,
पाप टालण परिणाम हो भविकजन।
संवर निरजरा दीपती,
सद्गुण रो होवे धाम हो भविकजन ॥ क० २५ ॥

भावार्थ :—बुद्धिमान् पुरुष ऐसा कार्य करता है जिससे भारी पापकर्म (महारम्भ) टल जाता है। अपना स्वयं का, दूसरे का और उभय का अर्थात् स्वपर दोनो का कर्मबन्ध शिथिल हो जाता है, ज्ञान-दर्शन निर्मल हो जाते हैं, संवर और निर्जरा की वृद्धि होती है और जो कार्य सद्गुणो का स्थान होता है तथा जिस कार्य को करने मे उसके परिणाम पाप घटाने के होते है किन्तु पापवृद्धि के परिणाम नहीं होते ॥२४–२५॥

पेला रो पाप छुड़ावियो,
ते पिण पावे ज्ञान हो भविकजन।
तो पथि होवे ते मोक्ष रो,
गुणाँ रो ध्यावे ध्यान हो भविकजन ॥ क० २६ ॥
जो ज्ञान पावण शक्ति नहीं,
तो पिण टलियो पाप हो भविकजन।

तीव्र आरत रु वा थकी,
    मिटे महा संताप हो भवि जन ॥ ० २७॥

भावार्थ :—जिस प्राणी की प्राणरक्षा की जाती है उसका पाप टल जाता है, वह ज्ञान को प्राप्त होता है और मोक्षमार्ग का पथिक बनता है, सद्‌गुणो का ध्यान करता है और उन्हें प्राप्त करने का प्रयत्न करता है। यदि कदाचित् उस प्राणी मे गुणों को एवं ज्ञान को प्राप्त करने की शक्ति न हो तो भी इतना लाभ तो अवश्य है कि उसका पाप टल जाता है और उसके आर्त्त ध्यान, रौद्र ध्यान रुकने से उसका महासंताप मिट जाता है और उसके चित्त को शान्ति मिलती है ॥२६–२७॥

कुगुरु थन खोटा किया,
    पाप मेटण में पाप हो भवि जन।
भोलाँ ने भर ायवा,
    खोटी कर रया थाप हो भविकजन ॥ ० २८॥

भावार्थ :—'किसी प्राणी के पाप को मिटाने मे पाप होता है' ऐसी प्ररूपणा कुगुरु करते है। वे मिथ्या सिद्धान्त की प्ररूपणा करके भोले प्राणियो को भ्रम मे डालते हैं ॥२८॥

हापाप टलावे पार ,
    तन ध मम उतार हो भविकजन।
ाय रे संतोष दे,
    विविध करे उ ार हो भविकजन ॥ क० २९॥

ज्ञान दया शुद्ध भाव सूँ,
टाले पर रो पाप हो भविकजन।
तीव्र वेदना छुड़ाय दे,
अरु मेटे सन्ताप हो भविकजन ॥ क० ३० ॥

भावार्थ :—परोपकारी पुरुष अपने तन और धन से ममत्व-भाव उतार कर दूसरों के महापाप को टला देता है, उन्हे सुख, शान्ति और सन्तोष देता है। इसी प्रकार के अनेक परोपकार के कार्य करता है। वह दयाभाव से प्रेरित होकर विवेकपूर्वक दूसरो को पापकार्य से बचाता है और मारे जाने वाले तथा दुःख मे पड़े हुए प्राणी की रक्षा कर उसकी तीव्र वेदना और महासंताप को मिटा देता है ॥२९-३०॥

उलटी मति रा मानवी,
दुःख मेटण में पाप हो भविकजन।
धर्म ँश श्रद्धे नहीं,
खोटो ज्यॉरो जाप हो भविकजन ॥ क० ३१ ॥

भावार्थ :—जिनकी बुद्धि विपरीत है ऐसे कितनेक अज्ञानी जीव उपरोक्त परोपकार के कार्यों मे धर्म नही मानते। प्रत्युत दुःख मे पड़े हुए प्राणी के दुःख को मिटाने मे पाप कहते हैं। ऐसा कथन करने वाले मिथ्यात्वी है। उनका साधुवेष लेकर फिरना केवल ढोंग है। साधुता का वेष पहनकर वे निर्दयता का कार्य करते है। इसलिए वे साधुवेष को लजाने वाले है ॥३१॥

दुःख दियाँ हिंसा हुवे,
सुख अनुकम्पा जाण हो भविकजन।
घूघू ने सूझे नहीं,
परगट उगो भान हो भवि न॥ ० ३२॥

भावार्थ :—किसी भी प्राणी को दुः देने से हिंसा होती है और दुःखी प्राणी के दुःख को दूर कर उसे सु और साता उपजाना अनुकम्पा है। यह सत्य, सरल और सीधा सिद्धान्त सूर्य के प्रकाश के समान स्पष्ट है। ऐसा स्पष्ट सत्य सिद्धान्त भी यदि किसी की समझ मे न आवे तो इसमे सिद्धान्त का कुछ भी दोप नही किन्तु उसी का दोष है जैसे कि सूर्य के उदय होने पर घूग्घू (उल्लू) को दिखाई न दे तो इसमे सूर्य का कुछ भी दोष नहीं किन्तु यह घूग्घू का ही दोप है ॥३२॥

पापी ने धर्मी करे,
देई दान सन्मान हो भविकजन।
कीधो मिथ्याती रो मकिती,
करि बहुलो सन्मान हो भवि न॥ ० ३३॥
इत्यादि पर उपकार में,
ए न्त थापे पाप हो विकजन।
सूत्र वचन उत्थापने,
या खोटी श्रद्धा साफ हो भवि जन॥ ० ३४॥

भावार्थ :—कोई परोपकारी सम्यग्दृष्टि पुरुष यथायोग्य दान सन्मान देकर पापी पुरुष को धर्मी, मिथ्यात्वी को समकिती

बना देता है। इस प्रकार के परोपकार के कार्यों में जो पाप की स्थापना करते हैं वे उत्सूत्र की प्ररूपणा करने वाले हैं। उनकी मान्यता मिथ्या है ॥३३-३४॥

पिछलाँ री साल सँभाल सूँ,
पुरुषाँ एक हजार हो भविकजन।
कृष्ण दलाली थीं हुवा,
निर्मल संजमधार हो भविकजन ॥क० ३५॥

भावार्थ :—श्रीकृष्ण महाराज ने द्वारिका नगरी में यह उद्-घोषणा करवाई थी कि "जो भगवान् नेमिनाथ के पास दीक्षा लेना चाहें वे खुशी से दीक्षा लें। उनके पीछे रहने वाले कुटुम्बी-जनों की सारसम्भाल मैं करूँगा" इस उद्घोषणा से एक हजार पुरुषों ने दीक्षा अङ्गीकार की। जिस प्रकार कृष्ण महाराज की यह धर्मदलाली है उसी प्रकार जो पुरुष यथायोग्य दान-सन्मान देकर पापी को धर्मी और मिथ्यात्वी को समकिती बनाता है वह भी धर्मदलाली करता है। इस कार्य में जो पाप बताता है उसे मिथ्यात्वी समझना चाहिए ॥३५॥

खेत्र खेत्रवासी समा,
दाता ह्या जिणराज हो भविकजन।
पात्र पात्रे दान दे,
जिनधर्म दिपावण काज हो भविकजन ॥क० ३६॥

शङ्का होवे तो देख लो,
ठाणायङ्ग रे माय हो भविकजन।

चौथे ठाणे जिन कह्यो,
समभू सरधा पाय हो भविकजन ॥क० ३७॥

भावार्थ :—ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे मे कहा गया है—

"चत्तारि मेहा पण्णत्ता तंजहा खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी एवामेव चत्तारि पुरिस जाया पण्णत्ता तंजहा खेत्तवासी णाममेगे णो अखेत्तवासी"

(ठाणांग ४ उद्देशा ४ सूत्र ३४६)

अर्थात्—मेघ चार प्रकार के होते है, एक तो वह जो क्षेत्र मे ही बरसता है अक्षेत्र मे नही। दूसरा वह है जो अक्षेत्र मे बरसता है क्षेत्र मे नही बरसता। तीसरा—क्षेत्र और अक्षेत्र दोनो मे बरसता है। चौथा—क्षेत्र और अक्षेत्र किसी मे नही बरसता। इसी तरह मनुष्य भी चार प्रकार के होते हैं :—एक तो वह जो पात्र को दान देता है अपात्र को नही देता। दूसरा—अपात्र को दान देता है पात्र को नहीं देता। तीसरा—पात्र और अपात्र दोनों ही को दान देता है। चौथा—पात्र और अपात्र किसी को भी दान नही देता।

जो विशाल उदारता के कारण या प्रवचन की प्रभावना के लिए सबको दान देता है वह तीसरे भङ्ग का स्वामी उभयवर्षी है। जो विशाल उदारता के कारण सबको दान देता है वह पुरुष उदारता रूप गुण के प्रभाव से प्रशंसनीय है और जो प्रवचन की प्रभावना के लिए सबको दान देता है वह पुरुष प्रवचन-प्रभावनारूप महान् पुण्य का उपार्जन करता है और प्रवचन-प्रभावना से तीर्थङ्कर नाम गोत्र का बँध करता है इसलिए परोपकार के कार्यों मे एकान्त पाप कहना अज्ञानता है ॥३६-३७

कहि कहि ने कितनो कहूँ,
शुद्ध आवे पर उपकार हो भविकजन ।
धर्म पुण्य शुद्ध उपजे,
पावे सुख श्रीकार हो भविकजन ॥क० ३८॥

बीदासर माँहे भली,
जोड़ की धर ध्यान हो भविकजन ।
पूनमचन्दजी री हाट में,
छियासी साल दरम्यान हो भविकजन ॥
करो परीक्षा सतधर्म री ॥३६॥

भावार्थ :—ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि कितना कहा जाय ! परोपकार के कार्यों के विषय मे जितना कहा जाय उतना थोड़ा है। परोपकार से जीव को शुद्ध धर्म और पुण्य की प्राप्ति होती है। पुण्य की प्राप्ति से जीव को इस लोक मे सुख सम्पत्ति की प्राप्ति होती है और धर्म की प्राप्ति से जीव अविचल (शाश्वत) सुख को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करता है।

ग्रन्थकर्त्ता ने भव्य जीवो के लाभार्थ बीकानेर राज्यान्तर्गत बीदासर शहर मे पूनमचन्दजी की हाट मे (दूकान) मे ठहरकर संवत् १६८६ की साल मे यह चौथी ढाल पूर्ण की है ॥३८-३६॥

॥ इति चौथी ढाल सम्पूर्ण ॥

❀ दोहा ❀

अनुकम्पा उत्थापवा, देवे तीन दृष्टान्त।
यथायोग खण्डन करूँ, ते सुणजो मन शान्त ॥१॥

भावार्थ :—अनुकम्पा को उठाने के लिए भीषण मतानुयायी तीन दृष्टान्त देते है। उन दृष्टान्तो का युक्तिपूर्वक यथायोग्य खण्डन किया जाता है। अतः शान्तचित्त होकर ध्यानपूर्व श्रवण करो ॥१॥

: पांचवी ढा :

[तर्ज—सहेल्यां ए आंबो मोरियो]

केई हेतु इम कथे,
देखाड़े हो ाँ रा चित्राम।
"एक चोर चोरे धन पार हो,
एक मारे हो पंचेन्द्री ने ठाम ॥"
शुद्ध श्रद्धा ने ओलखो ॥१॥

(भवि) शुद्ध श्रद्धा ने ओलखो,
किण विध री हो रची मायाजाल।
करुणा ने उत्थापवा,
भोलाँ ने हो नाख्या भ्रमजाल ॥ शु० २॥

एक लम्पट परनार नो,
याँ तीनों रे हो कर्म नो बन्ध होय।
याँ तीनों ने साधु मिल्या,
प्रतिबोध्या हो कर्मबन्ध न होय ॥ शु० ३॥

याँ तीनों ने समझावियाँ,
तीनों रा हो टाल्या महापाप।
चोर चोरी छोड्या थकाँ,
धन रयो हो टल्यो धनि संताप ॥ शु० ४॥

हिंसक हिंसा छोड़ दी,
जीव बचिया हो धर्म प्रेमानुराग।
परनारी त्यागी तिण पुरुष री,
पड़ी कूवे हो जारणी उण रे राग ॥ ० ५॥

धन जीव रया नारी ई,
जाँ रे काजे हो नहीं दाँ उपदेश*।

* जैसा कि वे कहते है :—
चोर तीनो ही समझ्याँ थकाँ,
धन रह्यो हो धनी री कुशलक्षेम।

चोर हिंसक लम्पट तणा,
पाप छोड़ावाँ हो मारी श्रद्धा रो रेश' ॥ ० ६ ॥

भावार्थ :—भीषण मतानुयायी साधु अपने पास कई तरह के चित्र (फोटो) रखते हैं। उन पर कँकरियाँ र कर अनुकम्पा उठाने के लिए कँकरियों का खेल दिखाते है और भोले जीवो को भ्रम मे डालते हैं। तीन चित्रो को और कँकरियो को दिखा कर वे तीन दृष्टान्त देते है। जैसे कि—एक चोर चोरी करके धन चुराता है, एक हिंसक पंचेन्द्रिय जीव को मारता है और एक लम्पट पुरुष परनारी का सेवन करता है। चोर, हिसक और लम्पट इन तीनो के कर्मबन्ध होता है। संयोगवश उन तीनो को साधु मिल गये। साधुओं ने उन तीनो को उपदेश द्वारा समझा

हिंसक तीनो ही प्रतिबोधिया,
जीव बचिया हो किया मारण रा नेम ॥
भव्य जीवाँ तुमे जिनधर्म ओलखो ॥७॥

जे शील आदरियो तेहनी,
स्त्री हो पड़ी कूवा माँही जाय।
याँ रो पाप धर्म नही साधु ने,
रह्या मूवा हो तीनो अव्रत माय ॥८॥

धन रो धणी राजी हुवो (धन रह्याँ),
जीव बचिया ते पिण हर्षित थाय।
साधु तरण तारण नही तेहना,
नारी ने हो पिण नहीं डुबोई आय ॥भ० ६॥

(अनु० ढाल ६ गाथा ७ से ९)

दिया जिससे उन तीनों का महापाप टल गया यानि वे तीनों महापाप से बच गये।

चोर के चोरी का त्याग कर देने से धनी पुरुष का धन बच गया, हिंसक के हिंसा छोड़ देने से जीव बच गये यानि जीवों की प्राणरक्षा हो गई और लम्पट पुरुष के परस्त्रीगमन का त्याग कर देने से जारणी (व्यभिचारिणी) स्त्री ने उसके रागवश कुए मे गिर कर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार चोर, हिंसक और लम्पट पुरुष के चोरी, हिंसा और जारी (परस्त्रीगमन) का त्याग कर देने से धनरक्षा, जीवरक्षा और व्यभिचारिणी स्त्री की आत्महत्यारूप परिणाम निकला। इस परिणाम के लिए अर्थात् धनरक्षा, जीवरक्षा और जारणी की आत्महत्यारूप परिणाम के लिए हम (तेरहपन्थी साधु) उपदेश नही देते है किन्तु चोर, हिंसक और लम्पट के पाप को छुड़ाने के लिए उपदेश देते है।

उपरोक्त तीन दृष्टान्त देकर वे लोग जीवरक्षा को जारणी ी की आत्महत्या के समान बुरा और पाप का कार्य बताने की धृष्टता करते है। उनके सारे कथन का अभिप्राय यह है कि यदि जीवरक्षा को पुण्य का कार्य माना जाय और जीवरक्षा के लिए उपदेश देने वाले उपदेशक को पुण्यबन्ध होना माना जाय तो लम्पट पुरुष को परस्त्रीगमन का त्याग कराने से जारणी स्त्री की आत्महत्या के पाप का भागी भी उस उपदेशक को मानना पड़ेगा। इसलिए हम लोग (भीषण मतानुयायी साधु) जिस प्रकार केवल लम्पट पुरुष को पाप से बचाने के लिए उपदेश देते हैं उसी तरह हिंसक को हिंसा के पाप से बचाने के लिए उपदेश देते हैं किन्तु हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राण-रक्षा के लिए हम उपदेश नही देते ॥१-६॥

इसड़ा कुहेतु केलवे,
जीवरक्षा में हो बतावे पाप।
उत्तर इण रो साँभलो,
तेथी मिटे हो मिथ्या सन्ताप ॥ ० ७॥

भावार्थ :—उपरोक्त प्रकार से कुहेतु और कुदृष्टान्त देकर वे लोग जीवरक्षा मे पाप बताने की धृष्टता करते हैं। अब उपरोक्त तीनो दृष्टान्तो का उत्तर दिया जाता है। शान्तचित्त होकर श्रवण करो जिससे मिथ्या भ्रम दूर हो जाय ॥७॥

चोर अदत्त ले पारको,
ते धन ने हो दुःख- ख वी कोय।
धन रा धणी ने दुःख ऊपजे,
इष्ट वियोगे ो आरत बहु होय ॥ ० ८॥

तेथी अदत्त पाप भु भाखियो,
धनहर ने हो मुनि दे उपदेश।
परधन पर । प्राण छै,
ते हरताँ हो दुः पावे विशेष ॥ ० ९॥

चोर ने मुनि प्रतिबोध दे,
तिण नर ना हो माठा टालन पाप।
धन धणी ने आरत तणो,
पाप दुः ो हो मेटण न्ताप ॥ ० १०॥

इम पाप छुड़ावे बेहू ना,
बेहू नर ना हो वलि टलिया दुःख ।
कर्मबन्ध टल्या मोटका,
दोनों रे हो हुवो शान्ति नो सुख ॥ शु० ११ ॥

भावार्थ :—अहिसा जैनधर्म का मूल सिद्धान्त है। अहिंसा ही सब व्रतो का आधार है। इसके विपरीत हिसा सब पापो का आधार एवं कसौटी है। जिस कार्य मे हिंसा हो, दूसरे जीव को दुःख हो वह पापकार्य है।

अब प्रश्न उपस्थित होता है कि एक चोर चोरी करके धन चुराता है। उस धन को तो कोई दुःख नहीं होता फिर अदत्त यानि चोरी करना पाप क्यो कहा गया है ?

इसका उत्तर यह है कि धन तो अजीव है। अजीव को सुख-दुःख नहीं होता। सुख-दुःख तो जीव को होता है। धन चुराने से उसके स्वामी को दुःख होता है। धन उसके स्वामी का बाह्य प्राणरूप है। जिस प्रकार प्राणहरण से जीव को दुःख होता है उसी प्रकार धनहरण से उसके स्वामी को दुःख होता है और वह अत्यन्त आर्त्तध्यान करता है। इसलिए श्री तीर्थकर भगवान् ने अदत्त (चोरी) को पाप कहा है। इसलिए मुनि चोर को उपदेश देकर उसे चोरी के पाप से बचाते है और धन के स्वामी को दुः सन्ताप और आर्त्तध्यान से बचाते है। इस प्रकार मुनि दोनों को पाप-कर्मबन्ध से बचाते है जिससे दोनो के चित्त मे शान्ति बनी रहती है ॥७-११॥

केई साहूकार रा पूत रो,
　　देवे हेतु हो दया काढण ाज।
"एक ऋण लेवे कोई पारको,
　　ऋण मेटे हो दूजो धरि लाज" ॥ ० १२ ॥

ऋण लेता ने वरज दे,
　　ऋण मेटण हो नहीं रोके बाप।
तिम हिंसक बकरा नित हणे,
　　करज कर । हो बाँधे बहु पाप ॥ ० १३ ॥

बकरा रे कर्ज चुके घणो,
　　ऋण मेटक हो पुत्तर सम जाण।
साधु पिता सम तेहने,
　　किम वरजे हो हो चतुर जान ॥ ० १४ ॥

हिंसक ने वरजे सही,
　　करम ऋण रो हो क्यों बाँधे ॢ र।
इम भोलाँ ने भरमायवा,
　　रच दीनी हो कूड़ी कूड़ी ढार* ॥ ० १५ ॥

---

* जैसा कि वे कहते हैं :—

　　जे बकरा रो जीवणुँ, वाँछे नही लिगार।
　　तिण ऊपर दृष्टान्त ते, साँभलजो सुखकार ॥६॥

भावार्थ :—वे लोग कहते है कि जो जीव मर रहा है या दुःख पा रहा है वह अपने पूर्वसंचित कर्मों का भुगतान कर रहा है। ऐसे जीव को मरने से बचाना या उसको किसी प्रकार की सहायता देकर उसको दुःखो से छुड़ाना, उस जीव को अपने ऊपर चढ़ा हुआ कर्मऋण चुकाने से वञ्चित रखना है। मारे जाते हुए जीव की रक्षा क्यो नही करनी चाहिए ? इस पर वे लोग एक दृष्टान्त देते है :—

साहुकार रे दोय सुत, एक कपूत अवधार।
ऋण करड़ी जागा तणु, माथे करे अपार ॥७॥

दूजो सुत जग दीपतो, यश संसार मझार।
करड़ी जागा रो करज, उतारे तिण वार ॥८॥

कहो केहने वरजे पिता, दोय पुत्र मे देख।
वर्जे कर्ज करे तसु, के ऋण मेटत पेख ॥९॥

(ढाल ३२ गाथा ६ से ९)

[समता रस विरला ए देशी]

कर्ज माथे सुत अधिक करंतो,
बारबार पिता वरजंतो रे, समझू नर विरला।
करड़ी जागा रा माथे कॉय कीजे,
प्रत्यक्ष दुःख पामीजे रे ॥ समझू० १ ॥

अधिक माथा रो कर्ज उतारे,
जनक तास नही वारे रे।
पिता समान साधु पिछाणो,
बकरो रजपूत वे सुत मानो रे ॥ समझू० २ ॥

एक सेठ के दो-लड़के हैं जिनमे से एक कपूत है, जो अपने सिर पर बहुत कठिन और अपार ऋण कर रहा है किन्तु दूसरा लड़का संसार मे सुप्रसिद्ध एवं यशस्वी है जो कठिन ऋण चुका रहा है। अब पिता दोनो पुत्रो को देखकर किसको वर्जेगा एवं रोकेगा ? जो कर्ज ले रहा है उसको रोकेगा या जो कर्ज चुका रहा है उसे रोकेगा ? जो लड़का कर्ज ले रहा है उसी को पिता रोकेगा और कहेगा कि इतना कठिन ऋण क्यो ले रहा है ? कर्ज करने का दुष्परिणाम तुझे भोगना होगा। जो लड़का अपने सिर का कर्ज उतार रहा है, पिता उसे नहीं रोकेगा बल्कि उसकी तो प्रशंसा करेगा।

यह तो दृष्टान्त हुआ। अब इसका द्राष्टान्तिक बताया जाता है :—

कर्मरूप ऋण माथे कुण करतो,
　　आगला कर्म कुण अपहरतो रे।
कर्मऋण रजपूत माथे करे छे,
　　बकरा संचित कर्म भोगवे छे रे॥ समझू० ३॥

साधु रजपूत ने वर्जे सुहाय,
　　　　कर्म करज करे कॉय रे।
कर्म बंध्या घणा गोता खासी,
　　　　परभव मे दुःख पासी रे॥ समझू० ४॥

सरवर पणे तिण ने समझायो,
　तिण रो तिरणो बंछयो मुनिरायो रे।
बकरा जीवण नही दे उपदेश,
　　　रुड़ी ओलख बुद्धिवन्त रेस रे॥ समझू० ५॥

(भिक्षु जस रसायण)

इस दृष्टान्त के अनुसार साधु पिता के समान है और राजपूत (बकरे को मारने वाला) और बकरा (मारा जाने वाला) दोनो साधु रूपी पिता के दो पुत्र है। इन दोनों पुत्रों से से कौन तो अपने सिर पर कर्मरूपी ऋण चढ़ा रहा है और कौन अपने पूर्वसंचित कर्मरूपी ऋण को चुका रहा है, यह विचार करने की बात है। राजपूत (बकरे को मारने वाला) बकरे को मार कर अपने सिर पर कर्मरूपी ऋण चढा रहा है और बकरा राजपूत के हाथ से मर कर अपने पूर्वसंचित कर्म भोगने रूप अपने सिर पर का ऋण चुका रहा है। इसलिए साधुरूपी पिता राजपूत (बकरा मारने वाले) रूप पुत्र को ही वर्जेगा कि अपने सिर पर कर्मरूपी ऋण क्यो करता है? कर्मरूपी ऋण करने से तुझे संसार मे बहुत चक्कर खाने पड़ेंगे और परभव मे दुःख पाना होगा। इस तरह राजपूत रूपी पुत्र को मुनिराज ने भली प्रकार समझाया और उसका तिरना चाहा परन्तु बकरे को जीवित रखने के लिए मुनिराज उपदेश नही देते क्योकि वह तो मर कर अपने सिर का कर्मऋण चुका रहा है। उसको कर्मरूपी ऋण चुकाने से मुनिराज रूपी पिता क्यो रोके? यदि वह रोके तो पिता होकर भी उसका अहित करते है। इसलिए किसी मरते जीव को बचाना या दुःख पाते हुए जीव को दुःख से मुक्त करना पाप है। यह तेरहपन्थियो के मत का गूढ़ रहस्य है ॥१२-१५॥

कहे ज्ञानी तुमे कुहेतु थी,
मिथ्यापख नी हो कीनी या थाप।
बकरो दुःख थी तड़फड़े,
दुःख पावे हो तेने अति सन्ताप ॥ शु० १६ ॥

शान्तिभाव उण रे नहीं,
तीव्र आरत हो ध्यावे रुद्र ध्या ।
तेथी हल्का कर्म भारी हुवे,
मन्द रस ना हो तीव्ररस पहिचान ॥ ० १७॥

अल्पस्थिति महास्थिति करे,
पाप भोगताँ हो बाँधे माठा कर्म ।
एवी करकश वेदना वेदताँ,
अरड़ावे हो ज्ञानी जाणे मर्म ॥ ० १८॥

एवा संबन्ध ना काम में,
कर्म छूटण हो लेवे मिथ्या नाम ।
न्याय अन्याय तोले नहीं,
परत दीखे हो माठा परिणा ॥ ० १९॥

भावार्थ :—कुहेतु और कुयुक्तियाॅ लगाकर उन्होने ोटी-खोटी ढालो की रचना की है और उन ढालो से अपने मिथ्यापक्ष की स्थापना करके भोले लोगो को भ्रमजाल मे डाल दिये हैं। ज्ञानी पुरुप उनकी कुयुक्तियो का खण्डन करते हुए कहते हैं कि 'हिंसक के हाथ से मारा जाने वाला बकरा अपने कर्मरूपी ऋण को चुकाता है' यह तुम्हारा कथन एकान्त मिथ्या है क्योकि कर्मों का ऋण तो गजसुकुमालजी सरीखे महापुरुष जिन्होने कष्ट एवं तीव्र वेदना, जिसे टाल देने की शक्ति उनमे विद्यमान थी और यदि वे चाहते तो उस कष्ट को टाल सकते थे फिर भी

उन्होंने उसे समभावपूर्वक सहन किया वे ही चुकाते हैं, सब जीव नहीं। वे तो अधिक कर्जा कर लेते है। किसी हिंसक या कसाई द्वारा मारे जाते हुए बकरे आदि जीव को देखो कि वह कैसा दुःख पाता हुआ और किस प्रकार तड़फडाता एवं चिल्लाता हुआ मरता है।

जैन-शास्त्रो मे कहा गया है कि जो जीव आर्त्तध्यान रौद्र-ध्यान करता हुआ मरता है वह हल्के कर्म को भारी करता है, मन्दरस वाले कर्म को तीव्ररस वाला करता है और अल्पस्थिति के कर्मो को दीर्घस्थिति के बनाता है।

इस प्रकार हिंसक के हाथ से मारा जाने वाला जीव मारणा-न्तिक कष्ट एवं कठोर वेदना के समय अरड़ाट (मूक प्राणी का चिल्लाना) एवं हाय-बॉय करता है। तब वह नवीन कर्मो का कर्जा अपने सिर पर और कर लेता है। यह प्रत्यक्ष कर्मबन्ध का स्थान है। ऐसे स्थान मे यह कहना कि 'बकरा अपने कर्मऋण को चुकाता है' मिथ्या है। कठोर हृदय और निर्दयी पुरुष ही ऐसा कह सकता है।

भीषण मतानुयायियो से यह पूछना चाहिए कि जो जीव धर्म को नही जानते, जब वे किसी के द्वारा मारे जाने लगेगे तब उनमे आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान होगा या धर्मध्यान और शुक्ल-ध्यान होगा ? यदि धर्म न जानने पर भी बकरे को धर्मध्यान और शुक्लध्यान हो सकता है तब तो धर्म की जरूरत ही क्या रही ? क्योकि धर्म का उद्देश्य आत्मा मे धर्मध्यान तथा शुक्ल-ध्यान लाना है। ये दोनो ध्यान यदि धर्म न जानने वाले पशु को भी हो सकते हैं तो फिर धर्म की जरूरत ही क्या रही ? और यदि

धर्म न जानने वाले बकरे को हिंसक द्वारा मारा जाने के समय धर्मध्यान और शुक्लध्यान नहीं होता किन्तु आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान होता है तो आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान से महान् कर्म का बन्ध होता है या नहीं ? और यदि महान् कर्म का बन्ध होता है तो आपका यह कथन कि "बकरा अपने सिर पर का कर्मऋण चुकाता है" झूठ और शास्त्रविरुद्ध रहा या नहीं ? ॥१६-१६॥

सौ बकरा कसाई हणता थकाँ,
निवरजी हो तिहाँ दे उपदेश ।
ते घात टालण बकरा तणी,
कसाई रा हो मेटण पाप क्लेश ॥ ० २० ॥

करकश वेदना ऊपज्याँ,
बकरा ध्यावे हो महा आरतध्यान ।
वलि रुद्रध्यान पिण उपजे,
ठाणायङ्ग हो जोवो धर ध्यान ॥ शु० २१ ॥

पूर्वकर्म दोनों भोगवे,
नवा बाँधे हो दोनों वैराणुबन्ध ।
मुनि उपकारी बेहू ।,
उपदेशे हो टाले बेहूना द्वन्द्व ॥ शु० २२ ॥

भावार्थ :—कोई कसाई सौ बकरों को मार रहा है यह देख कर उस कसाई के पाप को मिटाने के लिए तथा उसके हाथ से मारे जाने वाले बकरों की प्राणरक्षा के लिए मुनिराज उसे

उपदेश देते है जिससे दोनो के पाप टल जाते हैं। क्योंकि कठोर वेदना के समय बकरे को आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पैदा होते है। ठाणाङ्ग सूत्र के चौथे ठाणे से बतलाया गया है कि कठोर वेदना के समय आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पैदा होते है।

इस प्रकार बकरा और कसाई दोनो के आर्त्तध्यान और रौद्रध्यान पैदा होते है इसलिए वे अपने पूर्व कर्म को भोगते हुए वैरानुबन्धी नवीन कर्मों का बन्ध करते है। इसलिए मुनिराज बकरा और कसाई दोनो पर अनुकम्पा करके दोनो के हित तथा दोनो को तारने की दृष्टि से उपदेश देकर दोनो के संताप को मिटा देते है ॥२०-२२॥

(कहे) "हिंसक पाप छुड़ायवा,
म्हें तो देवाँ हो धर्म रो उपदेश।
बकरा धन एक सारखा,
तिण रे कारण हो नहीं दाँ उपदेश" ॥ शु० २३ ॥

भावार्थ:—वे लोग कहते है कि 'हम (तेरहपन्थी साधु) हिंसक को हिंसा के पाप से बचाने के लिए उपदेश देते है किन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते क्योंकि हमारे लिए धन और बकरा दोनो एक समान है जिस प्रकार हम धनी के धन की रक्षा के लिए उपदेश नहीं देते उसी प्रकार हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे की प्राणरक्षा के लिए भी उपदेश नही देते ॥२३॥

(उत्तर) एवी करे कोई थापना,
विकल हुआ हो अनुकम्पा रे द्वेष।

पाणाणुकम्पा प्रभु कही,
नहीं पैसा नी हो जरा समझो रेस ॥ शु० २४ ॥

धनिक री अनुकम्पा होवे,
प्राणधणी हो बकरा री पि ,ाण ।
पैसा ने दुःख सुख नहीं,
किम होवे हो दया चतुर सुजाण ॥ शु० २५ ॥

आरतरुद्र बकरा तणो,
नि मेटण हो देवे उपदेश ।
पैसा रे ध्यान लेश्या नहीं,
ख दुःख रो हो नहीं तिण रे क्लेश ॥ ० २६ ॥

प्राणी अनुकम्पा नि करे,
जड़ धन में हो नहीं करुणा रो लेश ।
जो जीव जड एक-सा गिणे,
निर्दयता हो ज्यांरा घट में विशेष ॥ शु० २७ ॥

भावार्थ :—हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे के साथ चोर द्वारा चुराये जाने वाले धन का दृष्टान्त देना महा मूर्खता है क्योकि बकरा चेतन प्राणी है। वह दुःख-सु को समझता है किन्तु धन अचेतन जड़ पदार्थ है। वह धनी के पास रहे अथवा चोर के पास रहे उसे सुख-दुःख कुछ नहीं होता। जिसे सुख-दुःख कुछ भी न हो उसकी दया एवं अनुकम्पा क्या

हो सकती है ? किन्तु बकरा चेतन प्राणी है उसको सुख-दुःख होता है। इसीलिए उसकी दया-अनुकम्पा होती है। हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे को आर्त्तध्यान रौद्रध्यान पैदा होता है इसलिए उस सन्ताप को मिटाने के लिए मुनि उपदेश देते है किन्तु धन के कोई ध्यान या लेश्या नही होती और न उसे सुख-दुःख एवं क्लेश होता है। इसलिए उसकी क्या करुणा हो सकती है ? जो लोग चेतन प्राणी के साथ अचेतन धन का दृष्टान्त देकर तथा जीवरक्षा और धनरक्षा को एक समान बता कर भोले जीवो को भ्रम मे डालते है और उनके हृदय से अनुकम्पा उठाते है वे महानिर्दयी है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे जीवरक्षारूप दया के लिए जैनागम की रचना का कथन कर जीवरक्षारूप धर्म को जैनागम का प्रधान उद्देश्य कहा है इसलिए साधु जीवरक्षा के लिए धर्मोपदेश देते हैं परन्तु धनी के धन की रक्षा के लिए नही क्योकि उक्त सूत्र मे परद्रव्य के हरणरूप पाप से निवृत्तिरूप दया के लिए जैनागम का कथन होना बतलाया है, धनी के धन की रक्षारूप दया के लिए नही। इसलिए चोर को चोरी के पाप से मुक्त करने के लिए तथा धन के चुराये जाने से धनी के हृदय मे होने वाले सन्ताप को मिटाने के लिए मुनि उपदेश देते है किन्तु धनी के धन की रक्षा के लिए नही क्योकि धन को कोई सुख-दुःख एवं क्लेश नहीं होता। प्रश्नव्याकरण सूत्र का वह पाठ यह है :—

'परदव्वहरणवेरमणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं'

अर्थात्—परद्रव्य के हरणरूप पाप से निवृत्ति रूप धर्म की रक्षा के लिए भगवान् ने प्रवचन कहा है।

इस पाठ मे परद्रव्य के हरणरूप पाप से निवृत्ति के लिए प्रवचन का कथन होना कहा है, धनी के धन की रक्षा के लिए नहीं। इसलिए साधु चोर को चोरी से बचाने के लिए ही धर्मोपदेश देते हैं धनी के धन की रक्षा के लिए नहीं, परन्तु जीवरक्षा के विषय मे यह नहीं कहा है कि "हिंसा की निवृत्ति के लिए जैनागम का कथन हुआ है जीवरक्षा के लिए नहीं" बल्कि वहाँ तो यह साफ लिखा है कि :—

"सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।"

अर्थात्—"संसार के सभी प्राणियों की रक्षारूप दया के लिए भगवान् ने प्रवचन (जैनागम) कहा है।" इसलिए हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले जीव की रक्षा के लिए धर्मोपदेश देना शास्त्रानुमोदित और बहुत ही उत्तम कार्य है। इसे पाप कहने वाले एकान्त मिथ्यावादी और मिथ्यादृष्टि हैं।

ऊपर बताया जा चुका है कि धनरक्षा के साथ जीवरक्षा की तुल्यता बताना अज्ञानता है क्योंकि धन अचित्त पदार्थ है। उसकी अनुकम्पा नहीं होती परन्तु जीव चेतन है उसकी रक्षा करना धर्म है। अतएव शा मे जगह-जगह :—

"पाणाणु पाए भूयाणुकंपाए जी णु पाए सत्ताणुकंपाए।"

इस प्रकार का पाठ आया है किन्तु "धणाणुकंपाए वित्ताणुकंपाए" इत्यादि पाठ नही आया है। इसलिए धनरक्षा

का दृष्टान्त देकर जीवरक्षा के लिए धर्मोपदेश देने में पाप कहना अज्ञानियों का कार्य है।

बकरे आदि निरपराधी मूक प्राणियों को मारने वाला कसाई तो निर्दयी है ही किन्तु कसाई के हाथ से मारे जाने के समय बिलबिलाट शब्द करते हुए तथा किसी दयालु पुरुष द्वारा अनुकम्पा से अपनी प्राणरक्षा चाहने वाले, डबडबाये हुए कायर नेत्र और दीनमुख वाले बकरे पर अनुकम्पा करने के बजाय जो व्यक्ति यह कहता है कि 'यह बकरा अपने कर्मरूपी ऋण को चुका रहा है और जो पुरुष इस बकरे की प्राणरक्षा करता है, वह इसको कर्मरूपी ऋण चुकाने में अन्तराय देता है तथा पाप का कार्य करता है' ऐसा कथन करने वाले व्यक्ति को उपरोक्त कसाई से भी बदतर महानिर्दयी समझना चाहिए ॥२४-२७॥

हिंसक पाप मेटण कहो,
बकरा रो हो मेट्याँ कहो दोष।
चूक पड़ी इण में किसी,
थारो दीखे हो बकरा पर रोष ॥शु० २८॥

इम पाप छूटा बेहू तणा,
बेहू जीवना हो वलि टलिया दुःख।
कर्मबन्धन टल्या मोटका,
दोनों रे हो हुओ शान्ति नो सुख ॥शु० २९॥

भावार्थ :—उन लोगो से पूछना चाहिए कि "तुम कहते हो कि हिंसक का पाप छुड़ाने के लिए उपदेश देते हैं और वह

धर्मकार्य है" तो जो कसाई आपका उपदेश सुनकर बकरा न मारेगा तब बकरे की रक्षा स्वतः हो गई फिर बकरे की रक्षा करने में तुम पाप कहते हो, इसका क्या रहस्य है? बकरे की प्राणरक्षा करने के लिए जो उपदेश देता है वह क्या बुरा कार्य करता है जो तुम उसे पाप बताते हो? वह तो हिंसक और बकरा दोनो के पाप को छुड़ाता है जिससे उन दोनो का दुःसन्ताप दूर हो जाता है और आर्त्तध्यान रौद्रध्यान से होने वाला महान् कर्मबन्ध रुक जाता है तथा दोनो के चित्त मे शान्ति हो जाती है। अतः बकरे की प्राणरक्षा मे पाप बताने वाला व्यक्ति बकरे का द्वेषी तथा अनुकम्पाद्वेषी है ॥२८-२९॥

कदा खोटी पख खाँची कहो,
मरता जे हो नहीं दाँ उपदेश।
तिण रे निर्जरा होती बन्द हुवे,
म्हारी सरधा री हो या उँ ी रे ॥शु० ३०॥

भावार्थ :—अपने मिथ्या मत के पक्ष मे पड़कर यदि वे लोग ऐसा कहे कि 'हिंसक के हाथ से जो जीव मारा जाता है वह अपने कर्मरूपी ऋण को चुकाता है और कर्मो की निर्जरा करता है।' उसकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश देने से उसके कर्म-ऋण चुकाने मे अन्तराय पड़ती है और उसकी निर्जरा बन्द हो जाती है। इसलिए हम लोग उसकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश नही देते है यह हमारे भीषण मत का गूढ़ रहस्य है ॥३०॥

(उत्तर) इण लेखे तो हिंस भणी,
उपदेश देणो हो थाँरे पाप रे माय।

हिंसा छोड्याँ बकरो बचे,
तदा निर्जरा हो होती रुक जाय ॥ शु० ३१ ॥

इम अटके श्रद्धा थाहरी,
खोटी माँडी हो तुमे माया जाल।
इण मिथ्या पख ने छोड़ दो,
सत श्रद्धा रो हो मन आणो ख्याल ॥ शु० ३२ ॥

भावार्थ :—उपरोक्त कथन करने वाले लोगों से कहना चाहिए कि इस तरह तो हिंसक को हिंसा न करने का तुम्हारा उपदेश भी पाप मे ठहरेगा क्योंकि तुम्हारे उपदेश द्वारा हिंसक के हिंसा छोड़ देने पर बकरा बच जायगा और आपके मतानुसार उसकी निर्जरा बन्द हो जायगी। अतः तुम्हारी मान्यतानुसार तुम्हारा हिंसक को उपदेश देना भी पाप मे ठहरता है। इस प्रकार तुम्हारा मत तुम्हारी मान्यतानुसार ही मिथ्या साबित होता है।

ऐसे अज्ञानी जीवो पर करुणा करके सद्गुरु कहते है कि 'तुम लोगो ने यह खोटा मायाजाल रच रक्खा है जिसमे तुम स्वयं फँस कर तथा भोले जीवो को फँसा कर अपनी और उनकी दोनो की आत्मा का अधःपतन कर रहे हो। अब इस मिथ्या पक्ष को छोड़कर सच्ची श्रद्धा को धारण करो और सत्पथ के पथिक बनो जिससे आत्मा का कल्याण हो ॥३१-३२॥

निर्जरा भ्रम मिटायवा,
एक हेतु हो सुणो चतुर सुजाण।

मासखमण रे पारणे,
गोचरी आया हो निजी गुण ।ण ॥ ० ३३ ॥

कोई मूरख मन में चिन्तवे,
आहार बेराया हो निर्जरा बन्द होय ।
नहीं बेरायाँ निर्जरा घणी,
तप बधसी हो नि ने गुण जोय ॥ ० ३४ ॥

जिण सुपात्र दान ।ोलख्यो,
ते मूढमति हो एवो करे विचार ।
नि जाँचे छै आहार ने,
देवण वाला ने हो हुवे लाभ पार ॥ ० ३५ ॥

कदा आहार नि ने मिले नहीं,
स भावे हो निर्जरा बहु होय ।
त्याँ ने पिण ।हार आपताँ,
दा । रे हो धर्म रो ल जोय ॥ ० ३६ ॥

मुनि दा माँगे दाता दिये,
दोनों रे हो धर्म रो फल होय ।
न्तरा हीं ।र्जरा तणी,
यो ही न्याय हो बकरा रो जोय ॥ ० ३७ ॥

बकरो चावे निज प्राण ने,
मरण भय थी हो छोड़ावे (मुक्त) कोय।
जो छोड़ावे अभयदानी कह्यो,
दाता रे हो फल मोटको होय ॥ शु० २८ ॥

भावार्थ :—हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे की प्राणरक्षा करने के लिए उपदेश देने से उस बकरे की निर्जरा बन्द हो जाती है ऐसा कथन करके उन लोगों ने जो भ्रम पैदा किया है उसके निराकरण के लिए एक दृष्टान्त दिया जाता है :—

मान लीजिए एक साधु के एक मास की तपस्या है। साधु को धर्म का ज्ञान है और वे समभावपूर्वक कष्ट सहन करके कर्मों की निर्जरा करने के लिए ही साधु बने हैं। उनको जब तक आहार नहीं मिलता है तब तक उनके कर्मों की महा निर्जरा होती है। यह बात आप लोग (तेरहपन्थी) भी मानते हैं और साथ ही आप यह भी मानते हैं कि "कर्मऋण चुकाते हुए एवं निर्जरा करते हुए को अन्तराय देना पाप है" जैसा कि आपने बकरे और राजपूत का दृष्टान्त देकर बताया है।

मासखमण के पारणे के दिन वे मुनि गोचरी (आहार-पानी) के लिए निकले तब उस समय आपके सिद्धान्त को मानने वाला कोई व्यक्ति यह सोचे कि आहार मिलने से मुनि के कर्मों की निर्जरा होती हुई बन्द हो जावेगी ऐसा सोचकर वह स्वयं भी मुनि को पारणे के लिए आहार न देवे तथा दूसरों से भी कहे कि "मुनि के कर्मों की होती हुई निर्जरा को मत रोको क्योंकि आहार देने से इनकी निर्जरा रुक जावेगी" तो उसका यह कार्य अनुचित तो न होगा? इसके सिवाय जो लोग मुनि

को आहार देकर उनकी होती हुई कर्मो की निर्जरा को रोक देते है उन्हे पाप तो न होगा ? जिस तरह आपने अपने दृष्टान्त मे यह वतलाया है कि साधु बकरे और राजपूत दोनो का पिता है उसी तरह शास्त्र मे यह वतलाया गया है कि श्रावक साधु का पिता होता है। जिस तरह साधु उस मारे जाते हुए बकरे को कर्मऋण चुकाने से नही रोकते उसी तरह श्रावक को भी यही उचित है कि कर्मऋण चुकाते हुए एवं कर्मो की निर्जरा करते हुए साधु को वह न रोके। ऐसा होते हुए भी यदि कोई श्रावक साधु को आहार देकर उन्हे कर्मऋण चुकाने से रोकते हैं तथा उनकी होती हुई कर्मो की निर्जरा को रोकते हैं तो उन श्रावको को भी वैसा ही पाप होना चाहिए जैसा पाप कर्मऋण चुकाते हुए वकरे को बचाने से आप लोग मानते हैं।

उन लोगो से पूछना चाहिए कि शास्त्र मे श्रावक को साधु का माता-पिता कहा है या नहीं ? और आहार न मिलने पर साधु के लिए कर्मो की निर्जरा होना कहा है या नही ? यदि हाँ तो जो श्रावक साधु को आहार-पानी देता है और कर्मऋण चुकाते हुए एवं कर्मों की निर्जरा करते हुए साधु को कर्मऋण चुकाने से एवं कर्मो की निर्जरा करने से रोकता है वह तेरहपन्थ के सिद्धान्तानुसार पापी हुआ या नही ? और तेरहपन्थी लोग जिसकी बड़ी महिमा गाते हैं वह सुपात्रदान उन्ही के सिद्धान्त से पाप ठहरता है या नही ? यदि साधु को आहार-पानी देना धर्म है तो मरते हुए जीव को बचाना पाप क्यो होगा ?

मासखमण के पारणे के दिन गोचरी के लिए आये हुए साधु के लिए जो यह विचार करता है कि "मुनि को आहार देने से इनकी होती हुई कर्मनिर्जरा बन्द हो जायगी। इसलिए

इन्हे आहार न देना चाहिए। आहार न देने से इनके कर्मों की निर्जरा होगी और तप बढ़ेगा।" जो व्यक्ति इस प्रकार विचार करता है, समझना चाहिए उस मूर्ख ने सुपात्रदान का स्वरूप समझा ही नही है। जब कि मुनि गोचरी आये हैं और वे आहार-पानी की याचना करते हैं उस समय उन्हे निर्दोष आहार-पानी देने से दाता को महालाभ होता है। यदि कदाचित् कोई मुनि गोचरी के लिए निकले है किन्तु लाभान्तराय कर्म के उदय से उन्हे आहार-पानी न मिले तो मुनिराज समभाव रक्खे अर्थात् ऐसा विचार करे कि "मुझे आहार-पानी नहीं मिला तो इसमे दाता का कोई दोष नही है मेरे ही लाभान्तराय कर्म का उदय है जिससे मुझे आहार-पानी का लाभ नहीं हुआ परन्तु इससे मेरी कुछ भी हानि नहीं है, मेरे तो तप की वृद्धि होगी" ऐसा विचार कर समभाव रखने वाले मुनि के महानिर्जरा होती है। ऐसे मुनि को भी आहार-पानी देने वाले दाता को धर्म का महान् लाभ होता है।

आहार-पानी की याचना करने वाले मुनि को आहार-पानी देने वाले दाता को और ग्रहण करने वाले मुनिराज को दोनो को धर्म का महान् लाभ होता है किन्तु निर्जरा की अन्तराय नहीं लगती यही बात हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले बकरे के विषय मे समझनी चाहिए। हिंसक जब बकरे को मारता है उस समय वह तड़फड़ाता है और अपने प्राणो की रक्षा चाहता है और चाहता है कि कोई दयालु पुरुष मुझे मरण के भय से मुक्त करे। ऐसे समय मे जो दयालु अनुकम्पा करके बकरे की रक्षा करता है और उसे मरणभय से मुक्त करता है वह अभयदानी कहलाता है और उसे धर्म का महान् लाभ होता है और बकरे

का आर्त्तध्यान रौद्रध्यान छूट कर उसे शान्ति प्राप्त होती है ॥ ३३-३८॥

भयभ्रान्त हुवो राय संजती,
ते जाँचे हो [थी कर जोड़ ।
अभयदान दो मुझ भणी,
मृग मारण हो पराध थी छोड़ ॥ ० ३९॥

तब ध्यान खोल निरायजी,
अभय दीनो हो भय मेटण जोय ।
तिम मर (जीव) भय पामता,
ते [भय हो अभयदान थी होय ॥ ० ४०॥

तिण अभयदान ने पाप में,
जे थापे हो ते मूढ गिवाँर ।
भय मेट्याँ अभयदा ,
समदृष्टि हो लेवे हिरदा में धार ॥ ० ४१॥

भावार्थ :—उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवे अध्ययन में यह वर्णन आता है कि एक समय संयति राजा शिकार खेलने के लिए उद्यान मे गया। वहाँ जाकर उसने एक मृग पर बाण छोड़ा। बाण जाकर मृग के लगा। वह मृग दौड़ता हुआ उस उद्यान में ध्यानस्थ बैठे हुए गर्दभाली मुनि के पास पहुँचा। घोड़ा दौड़ाता हुआ राजा संयति मृग का पीछा करने लगा। जब उसने दे । कि मृग मुनि के पास मरा पड़ा है तब उसने विचारा

कि यह मृग तो मुनि का मालूम होता है। इसको बाण मार कर मैंने महान् अनर्थ किया है। ऐसा सोच कर राजा अत्यन्त भय-भ्रान्त हुआ। वह तुरन्त घोड़े से नीचे उतरा और मुनि के पास आकर दोनो हाथ जोड़कर कहने लगा कि हे मुनिवर ! मैंने आपके मृग को बाण मार कर आपका महान् अपराध किया है। इस अपराध को आप क्षमा करे और मुझे अभयदान दान दें।

मुनि ध्यानस्थ बैठे हुए थे इसलिए उन्होंने कुछ भी उत्तर नहीं दिया तब तो राजा और भी अधिक भयभ्रान्त हुआ। वह अपना परिचय देता हुआ मुनि से बार-बार अभयदान की याचना करने लगा। तब ध्यान खोलकर मुनि ने कहा कि :—

अभओ पत्थिवा तुज्झं, अभयदाया भवाहि य।

(उत्तरा० अ० १८)

अर्थात्—हे पार्थिव (राजन्) ! मेरी तरफ से तुझे अभय है। जङ्गल के जानवर तुझ से भयभीत हो रहे हैं अतः हे राजन् ! तू भी इन्हे अभयदान दे।

मुनि से अभयदान प्राप्त कर राजा संयति के हृदय मे परम शान्ति हुई। जिस प्रकार राजा संयति भयभ्रान्त था किन्तु अभयदान मिलने से वह निर्भय हो गया उसी प्रकार हिंसक के हाथ से मारा जाता हुआ जीव भी मरणभय से अत्यन्त भय-भीत होता है। उसे अभयदान देने से अर्थात् उसकी रक्षा करने से वह निर्भय होता है और परम शान्तिलाभ करता है। ऐसे प्राणरक्षा रूप अभयदान के पवित्र कार्य मे जो पाप बताता है उसे मिथ्यात्वी समझना चाहिए। जो समदृष्टि होता है वह तो

मरणभय से भयभीत प्राणी के भय को दूर करने रूप अभयदान के कार्य को परम पवित्र कार्य मानता है ॥३९-४१॥

समभाव बकरा रे नहीं,
 तिण रे निर्जरा हो कहो किणविध होय।
आर्त्त रुद्र परिणाम थी,
 माठा पाप रो हो बन्ध कर रयो सोय ॥ ० ४२॥

तेथी तिण ने बचायाँ गुण होवे,
 निर्जरा री हो अन्तराय होय।
भय मिटियो गुण नीपज्यो,
 मेटणहारो हो अभयदानी होय ॥ ० ४३॥

भावार्थ :—जो लोग कहते हैं कि 'हिंसक के हाथ से मारा जाता हुआ बकरा अपने कर्मरूपी ऋण को चुकाता है और कर्मों की निर्जरा करता है।' उनका यह कथन एकान्त मिथ्या है। कर्मों की निर्जरा समभावपूर्वक कष्ट सहन करने से होती है किन्तु कष्ट के समय हाय-त्राय करने से एवं आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करने से पापकर्मों का बन्ध होता है। हिंसक के हाथ से मारा जाता हुआ बकरा प्रत्यक्ष हाय-वाँय करता हुआ और तड़फड़ाता हुआ दिखाई देता है। उसके तो नवीन कर्मों का बन्ध होता है। इसलिए उसको बचाना महान् पुण्य का कार्य है किन्तु कर्मों की निर्जरा की अन्तराय नहीं है। मरणभय से भयभ्रान्त बने हुए बकरे के भय को मिटाने से बकरे को शान्ति-लाभरूप गुण की

प्राप्ति होती है और उसका भय मिटाने वाला अभयदानी कह-लाता है ॥४२-४३॥

वलि सत्य हेतु एक साँभलो,
तीन वाण्याँ री हो चाली सुतर में वात ।
एक लाभ लेइ घर आवियो,
वीजो लायो हो धन मूलज साथ ॥ शु० ४४ ॥

तीजो मूल गमावियो,
ई दृष्टान्ते हो जाणो दया री काम ।
एक जीव बचावा उपदेशे,
लाभ वहुलो हो होवे शुध परिणाम ॥ शु० ४५ ॥

मौन रहे बोले नहीं,
मूलपूँजी रो हो ते राखणहार ।
मार हे तीजो पापियो,
मूलपूँजी रो हो ते खोवणहार ॥ शु० ४६ ॥

भावार्थ :—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के सातवे अध्ययन मे तीन वणिको का दृष्टान्त दिया गया है। जैसे कि—तीन वणिक् अपने साथ मे कुछ पूँजी लेकर धन कमाने के लिए परदेश गये। उनमे से एक वणिक् तो बहुत-सा धन कमा कर वापिस घर को लौटा। दूसरे वणिक् ने कमाया तो कुछ नही किन्तु वह अपनी मूलपूँजी को लेकर वापिस लौटा और तीसरा वणिक् मूलपूँजी को भी खोकर वापिस लौटा।

यह एक व्यावहारिक दृष्टान्त है। इसी प्रकार दयाधर्म विषय में भी समझना चाहिए :—

कोई हिंसक किसी जीव को मार रहा है उस समय में कोई दयालु पुरुष उस हिंसक को उपदेश देकर उस मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा कर लेता है वह तो उस लाभ कमाने वा प्रथम वणिक् के समान है। दूसरा पुरुष ऐसा है जो हिंसक के हाथ से मारे जाते हुए जीव को देखकर किसी कारण से छ नहीं बोलता किन्तु मौन रहता है वह उस मूलपूँजी की रक्षा करने वाले दूसरे वणिक् के समान है और जो पुरुष 'इसे मार' ऐसा कह कर उस हिंसक पुरुष को उत्तेजना देता है वह अपनी मूलपूँजी को भी ोने वाले उस तीसरे वणिक् के समान है ॥४४-४६

केइ तरकी इम हे,
जीव बचियाँ हो बधे पाप री वे ।
खोटा न्याय बहुविध थे,
मे सुणजो हो खोटी सरधा रो खेल ॥ ० ४ ॥

(कहे) 'पर ी पापी ए ष ा,
उपदेशे हो ि मे पाप।
परनारी जाई कुवे पड़ी,
ति रो ि ने हो हीं पाप न्ताप ॥ ० ४८॥

बकरा बच्या ारी मुई,
म्हें तो मभ्काँ हो दोनों ए ।

बकरा बच्या दया नहीं,
नारी मुआँ हो नहीं हिंसा स्थान ॥ शु० ४६ ॥

बकरा बच्या धर्म सरधसी,
तिण री सरधा में हो नारी मुआँ रो पाप।
एवा कुहेतु केलवी,
भोलाँ आगे हो करे मत री थाप ॥ शु० ५० ॥

भावार्थ :—कुतर्कों द्वारा अनुकम्पा की घात करने वाले वे लोग कहते हैं कि 'हम लोग हिंसक को हिंसा का पाप छुड़ाने के लिए उपदेश देते हैं किन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले बकरे की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नहीं देते हैं क्योंकि जीव बचाने से पापो की परम्परा बढ़ती है।'

जीव बचाने मे पाप सिद्ध करने के लिए वे एक दृष्टान्त देते है। जैसे कि—एक जार (परस्त्रीगामी) पुरुष है। मुनिराज ने उसे उपदेश देकर परस्त्रीगमन का त्याग करवा दिया। उसके परस्त्रीगमन का त्याग कर देने से उसमे राग रखने वाली परस्त्री मोहान्ध बनकर कुए मे गिर गई।

यह दृष्टान्त देकर वे लोग कहते है कि "जिस प्रकार हम लोग उस परस्त्रीगामी पुरुष के पाप छुडाने के लिए उपदेश देते है उसका शुभफल यानि धर्मपुण्य हमको होता है किन्तु उसके परस्त्रीगमन के त्याग का जो परिणाम निकला अर्थात् वह जारणी स्त्री कुए मे गिर पड़ी उसका पाप हमें नही लगता। इसी प्रकार हम हिसक को हिसा का पाप छुड़ाने के लिए उपदेश देते हैं

केवल उसका ही धर्म हमको होता है किन्तु बकरे को बचाने के लिए हम उपदेश नहीं देते हैं और इसीलिए उसके बचने से होने वाला पाप हमे नहीं लगता। अर्थात् बकरे की प्राणरक्षा हुई और जारणी स्त्री की आत्महत्या हुई, दोनों को हम एक समान मानते हैं। परन्तु जो लोग बकरे की प्राणरक्षा होने मे धर्म मानते हैं तो उनकी मान्यतानुसार जारणी स्त्री की आत्महत्या का पाप भी उन्हे लगेगा।"

इस प्रकार खोटे और असंगत दृष्टान्त देकर भोले लोगो के सामने वे अपने मत की स्थापना करते हैं और अनुकम्पा मे पाप स्थापित करने की धृष्टता करते है ॥४७-५०॥

(उत्तर) हिवे ज्ञानी कहे भवि साँभलो,
बचिया मरिया री हो सरखी नहीं बात।
करा री रक्षा कारणे,
उपदेशे हो निजी साक्षात् ॥ ० ५१॥

री मारण (मुनि) कामी नहीं,
मारण में हो नहीं पर उप र।
आत्मघात करे पापिणी,
महा मोहवश हो मरे ते नार ॥शु० ५२॥

त्या हेते ी मरे नहीं,
मोह रण हो वा मरे मतही ।
तिण री पिण घात छुड़ायवा,
उपदेशे हो नि धर्म प्रवीण ॥ ० ५३॥

सुण उपदेश बच गई,
तेथी टलिया हो महामोहनी कर्म ।
आत्महत्या पिण टल गई,
गुण निपज्यो हो यो धर्म रो मर्म ॥ गु० ५४॥

भावार्थ :—ज्ञानी पुरुष कहते है कि उन लोगों ने जो दृष्टान्त दिया है उसका उत्तर ध्यानपूर्वक सुनो। उन लोगों ने बकरे की प्राणरक्षा और स्त्री की आत्महत्या दोनो को एक समान बतलाया है यह उनका अज्ञान है क्योंकि किसी जीव की प्राणरक्षा और आत्महत्या अर्थात् बचाना और मारना ये दोनों कार्य एक समान कभी नही हो सकते। इन दोनो मे प्रकाश और अन्धेरा तथा दिन और रात एवं अमृत और जहर के समान महान अन्तर है। जीवो की रक्षा के लिए मुनि सदा उपदेश देते हैं। दूसरो की रक्षा परोपकार का कार्य है किन्तु मारना एवं आत्महत्या करना परोपकार का कार्य नही है। मुनि के भाव उस जारणी स्त्री को मारने के नहीं है। वह स्वयं मोहवश होकर आत्महत्या करती है। परपुरुष के त्याग से नहीं। मुनि उसकी आत्महत्या के कामी नही है किन्तु मुनि तो उस जारणी स्त्री के भी हितचिन्तक है। इसलिए मुनि तो उसे भी आत्मघात तथा व्यभिचार सम्बन्धी पाप छुड़ाने के लिए उपदेश देते हैं क्योंकि जिस प्रकार मुनि उस परस्त्रीगामी पुरुष के व्यभिचार को छुड़ाना चाहते है उसी प्रकार उस पुरुष के साथ दुराचार मे आसक्त उस जारणी स्त्री के व्यभिचार को भी छुड़ाना चाहते है। मुनि तो दोनो का हित चाहते है किसी का अहित नहीं चाहते। मान लीजिये मुनि का उपदेश सुन कर उस जारणी स्त्री ने भी परपुरुषगमन रूप दुराचार का त्याग कर दिया तो कितना बड़ा

लाभ हुआ ? कितना महान् उपकार हुआ ? दोनों अर्थात् जार और जारणी व्यभिचार के त्याग से महामोहनीय कर्म के बन्ध से बच गये तथा जारणी स्त्री की आत्महत्या भी टल गई। इस प्रकार महान् धर्म का लाभ हुआ।

जिन लोगों के हृदय मे पाप बसा हुआ हो वे सदा पाप की ही कल्पना करते हैं। तेरहपन्थी लोगो की मनोवृत्ति ऐसी दूषित हो गई है कि वे सदा प्रतिकूल और पाप की ही कल्पना करते हैं। 'किसी सबल पुरुष के हाथ से मारे जाते हुए निर्बल पुरुष की रक्षा करना पाप का कार्य है। इसमे वे कल्पना क्या करते हैं कि यदि वह पुरुष बच जायगा तो फिर जीवित रह कर संसार मे जितने पाप-कार्य करेगा वह सब पाप उस बचाने वाले को लगेगा।' इस प्रकार पाप की कल्पना करके रक्षा को वे पाप बताते है किन्तु उनके हृदय मे धर्म की कल्पना नही आती कि 'यदि वह पुरुष बच जायगा तो यह बहुत कुछ सम्भव है कि उसके हृदय मे वैराग्य की भावना उत्पन्न हो सकती है। इसलिए यदि वह दीक्षा ले लेगा तो कितना धर्मलाभ का कार्य होगा।' इस प्रकार धार्मिक कल्पना करना वे जानते ही नहीं। मानो उनका हृदय पाप-भावना से इतना मलीन बन गया है कि उसमें धार्मिक कल्पना पैदा ही नही होती। उन्होने व्यभिचारी पुरुष और [illegible]ी का जो उदाहरण दिया है वह भी धार्मिक-भावनायुक्त अनुकूल रूप मे रक्खा जा सकता है। जैसे कि :—

मान लो कोई व्यभिचारी पुरुष व्यभिचारार्थ अपनी प्रेयसी (जारणी स्त्री) के पास जा रहा था। मार्ग मे उसे मुनि मिल गये। उन्होने व्यभिचार से होने वाली हानियाँ बता कर उसे उपदेश दिया जिससे उसने पर[illegible]ीगमन त्याग कर दिया। इसके

बाद वह उस स्त्री के पास गया और मुनि द्वारा बताई गई व्यभिचार की हानियाँ एवं दुष्परिणाम उसे बतलाया और उससे यह भी कहा कि मैंने तो मुनि के उपदेश से व्यभिचार का त्याग कर लिया है। यह सुन कर उस स्त्री के मन में भी व्यभिचार से घृणा हो गई और व्यभिचार के दुष्परिणामों से वह भी भयभीत हुई। अतः मुनि के पास आकर उसने भी परपुरुष-सेवन का त्याग कर लिया और सदाचारिणी बन गई। इस बात का पता जब उस पुरुष की विवाहिता स्त्री को लगा तब वह प्रसन्न होती हुई मुनि के पास आई और कहने लगी कि आपने बड़ा अच्छा कार्य किया है। आपने मेरे पति को परस्त्रीगमन का त्याग करा दिया, यह आपने बड़ी कृपा की है। मेरा बर्बाद होता हुआ घर बच गया है। मेरे पति दुराचारी हो गये थे और बहुत कहने-सुनने पर भी वे नहीं मानते थे। इसलिए बहुत कुछ सम्भव था कि मैं भी व्यभिचारिणी हो जाती परन्तु आपकी कृपा से मेरे पति सुमार्ग पर आ गये अतः मैं भी परपुरुष-सेवन का त्याग करती हूँ।

इस प्रकार एक व्यभिचारी पुरुष को उपदेश देने से तीन व्यक्ति सुधर गये अर्थात् उस पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री ने व्यभिचार का त्याग कर दिया और उस पुरुष की पत्नी व्यभिचार में प्रवृत्त होने से बच गई। यह क्या बुरा हुआ?

मतलब यह है कि जिस प्रकार चोर को उपदेश देने से चोर का हित हुआ और धन के स्वामी का सन्ताप मिट गया तथा उसका आर्त्त रौद्रध्यान टल गया उसी प्रकार मारने वाले हिंसक को उपदेश देने से हिंसक का और उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणी का दोनों का हित हुआ और उसी प्रकार व्यभिचारी को उपदेश देने से व्यभिचारी पुरुष, उसकी पत्नी तथा व्यभिचारिणी स्त्री तीनों का हित हुआ। इसमें पाप क्या हुआ?

दूसरी बात यह है कि तेरहपन्थी लोग ऐसे खोटे दृष्टान्त अपने मनगढ़न्त लगाते हैं जैसा उन्होने दृष्टांत दिया है वैसा अर्थात् कोई व्यभिचारिणी स्त्री जार पुरुष के लिए कुए में पड़ कर मरी हो ऐसा उदाहरण संसारभर मे ढूढने पर एक भी नहीं मिल सकता। जो ी अपने विवाहित पति को भी छोड़ सकती है वह अपने जार पुरुप के लिए प्राण दे दे—यह कभी सम्भव ही नहीं है। इस तरह का उदाहरण देना लोगो को भ्रम मे डालने के लिए है। दर असल मे बात यह है कि तेरहपन्थी लोगों को अनुकम्पा से तीव्र द्वेप है। इसलिए अनुकम्पा को उठाने के लिए वे इस तरह के कुहेतु और कुदृष्टान्त दिया करते है। जो भोले लोग है वे बिचारे इनके मायाजाल मे फॅस जाते है किन्तु विवेकी पुरुप तो उनकी चालो को समझ जाते है इसलिए वे इनके जाल मे नही फॅसते है ॥५१-५४॥

बकरो, नारी बचिया थकाँ,
गुण निपजे हो टले पाप विकार।
स्वघाते गुण नहीं नीपजे,
सुधम थी हो रो जरा विचार॥ ० ५५॥

भावार्थ :—हिंसक को उपदेश देने से बकरा बच गया और व्यभिचारी पुरुप को उपदेश देने से उसका पाप-कार्य छूट गया तथा व्यभिचारिणी स्त्री भी बच गई तथा उसका भी पापकर्म छूट गया। यह सब गुण का कार्य है किन्तु आत्मघात करने मे कोई गुण का कार्य नही है। मुनि तो गुणो के अभिलाषी हैं अतः गुणो की अनुमोदना ही उन्हे प्राप्त होती है। वे दुर्गुणो के कामी नहीं हैं अतः उन्हें दुर्गुणो की अनुमोदना नहीं लग सकती।

जो पुरुष जिस बात का कामी (अभिलाषी) नहीं है उसको उसकी अनुमोदना कैसे लग सकती है? मुनि तो व्यभिचारी पुरुष और व्यभिचारिणी स्त्री दोनो के व्यभिचाररूप दुर्गुण को मिटा कर सदाचार रूप सद्गुण की प्राप्ति कराने के कामी (अभिलाषी) हैं। अतः गुणो की ही अनुमोदना उन्हे प्राप्त होती है ॥५५॥

मरणो बचावणो एक है,
  एतो जाणो हो विकलाँ रा वेण।
ज्याँ रे भान नहीं धर्म पाप रो,
  ज्याँ रा फूटा हो हिया रा नेण ॥ शु० ५६ ॥

भावार्थ:—जिनके ज्ञानरूपी नेत्र नहीं हैं और जिनको धर्म और पाप का कुछ भी ज्ञान नहीं है ऐसे अज्ञानी ही यह कह सकते है कि मरना और बचाना एक सरीखा है अर्थात् जो लोग यह कहते है कि "हिंसक को उपदेश देने से बकरे की प्राणरक्षा हुई और व्यभिचारी पुरुष को उपदेश देने से व्यभिचारिणी स्त्री कुए मे गिर कर मर गई। इन दोनो कार्यों को अर्थात् बकरे की प्राणरक्षा और स्त्री की घात इन दोनो कार्यों को हम एक समान मानते है" ऐसा कथन करने वालो को अज्ञानी समझना चाहिए ॥५६॥

मुनि उपकारी बेहू ना,
  बेहू जण ना हो मेट्या माठा कर्म।
जो श्रद्धा पामे बेहू जणा,
  तो पामे हो संवर नो धर्म ॥ ० ५७ ॥

आरत रुद्र टले वेहू ना,
श्रद्धा योगे हो धर्मध्यानी होय।
इम तिरण तारण मुनि वेहूना,
उपकारी हो मुनि वेहूना जोय॥ ० ५८॥

भावार्थ :—जिस प्रकार हिंसक को उपदेश देकर मुनि उसके ाथ से मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा करते हैं इस तरह मुनि दोनो के उपकारी हैं उसी प्रकार मुनि व्यभिचारी पुरुष और ी दोनो का हित चाहते हैं और व्यभिचार से होने वाले महा-मोहनीय कर्मबन्ध से दोनों को बचाते हैं। फिर यदि वे दोनो शुद्ध श्रद्धा को प्राप्त करते हैं तो शुद्ध संवर धर्म को अङ्गीकार करते हैं। इस प्रकार उन दोनो का आर्त्त रौद्रध्यान टल जाता है और शुद्ध श्रद्धा के योग से वे धर्मध्यान को प्राप्त करते है। इस प्रकार मुनि दोनो के उपकारी हैं और दोनो का तिरना चाहते हैं ॥५७-५८॥

कदि र्म उदय वेहू जणा,
संवर श्रद्धा हो पामे नहीं दोय।
तो भारी पाप वेहू ा टले,
ारत पिण हो हलको बहु होय॥ ० ५९॥

भावार्थ :—यदि कदाचित् वे दोनो शुद्ध श्रद्धा को प्राप्त न कर सके तो भी दोनो के भारी पाप टल जाते है और आर्त्त रौद्र-ध्यान भी बहुत हल्का हो जाता है ॥५९॥

उपदेश वेहू ने नहीं,
सा रे हो उपदेश रो धर्म।

एक माने एक माने नहीं,
जो माने हो तिण रा टलिया कर्म ॥ शु० ६० ॥

किण री शक्ति नहीं समझण तणी,
तिण रो पिण हो मुनि वंछ्यो हित ।
तेथी वच्छल छहु काया तणा,
परतख प्रोच्छे हो हितकारी चित्त ॥ शु० ६१ ॥

भावार्थ :—यदि कदाचित् वे दोनो मुनि के उपदेश को न माने तब भी मुनि के लिए तो कोई हानि नहीं है क्योंकि उपदेश देना मुनि का धर्म है। उस उपदेश से मुनि धर्मफल को प्राप्त करते है। मुनि दोनो के हित की दृष्टि से उपदेश देते हैं किन्तु उनमें से एक व्यक्ति उनके उपदेश को माने और दूसरा न माने तो उपदेश को माननने वाले व्यक्ति के पापकर्म टल जाते है। मुनि के उपदेश को समझने की शक्ति किसी जीव मे नहीं होती है फिर भी मुनि तो उसका प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनो रूप से हित चाहते हैं। इसीलिए मुनि छः काया के वत्सल कहलाते है ॥६०-६१॥

सरदह तलाव फोड़ण तणा,
त्याग कराया हो मुनि मेट्या कर्म ।
सरदह तलाव जीवाँ तणो,
दुःख टलियो हो जिन भाख्यो धर्म ॥ शु० ६२ ॥

भावार्थ :—मुनि उपदेश देकर सरोवर, द्रह, तालाब आदि फोड़ने का त्याग कराते है। इनको फोड़ने का त्याग करने वाले पुरुष के पापकर्म का बन्ध टल जाता है और सरोवर, द्रह,

तालाब के जीवों का दुःख टल जाता है। यद्यपि सरोवर, द्रह और तालाब आदि के जीवो मे मुनि के उपदेश को समझने की शक्ति नही है फिर भी मुनि तो उन जीवो का भी हित चाहते हैं और उनके दुःख को मिटाते हैं ॥६२॥

नीम्ब आम्बादि वृक्ष ना,
कराया हो मुनि टण नेम।
ते हित ारी बेहू तणा,
तरुवर ने हो नि कीनो खेम ॥ ० ६३॥

भावार्थ :—मुनि ने किसी को नीम, आम आदि वृक्ष काटने के त्याग करा दिये तो त्याग करने वाले व्यक्ति के तत्सम्बन्धी पाप को तो मुनि ने टाल ही दिया और साथ ही वृक्ष को भी क्षेम कर दिया अर्थात् उसके भय से रहित बना दिया। इस प्रकार मुनि उन दोनो के हितकारी है ॥६३॥

उपकार समझ शक्ति नहीं,
विकलेन्द्री हो जीवाँ री ाण।
मुनि ाणे तस वेदना,
उपदेशे हो हित ारी ब ाण ॥ ० ६४॥

भावार्थ :—विकलेन्द्रिय अर्थात् एकेन्द्रिय, बेइन्द्रिय, तेइन्द्रिय और चौइन्द्रिय इन जीवो मे उपकार को समझने की शक्ति नहीं किन्तु उन्हें छेदन-भेदन करने से जो वेदना होती है उसका ान मुनिराज को है। इसलिए लोगो को उपदेश देकर उन्हे उन जीवों के छेदन-भेदन करने का त्याग कराते हैं। इस प्रकार मुनि

उपकार को समझने की शक्ति से रहित उन विकलेन्द्रिय जीवों का भी हित चाहते है और उनका उपकार करते हैं ॥६४॥

दव देई गाँव जलावताँ,
उपदेशे हो कराया नेम।
ते दाहक ग्राम बेहू तणो,
पाप टाली हो उपजायो खेम ॥ शु० ६५ ॥

भावार्थ :—जैसे कोई व्यक्ति आग लगा कर गाँव को जला देने वाला है, मुनि उस पुरुष को उपदेश देकर गाँव जलाने का त्याग कराते है। जिससे वह पुरुष पाप-कर्मबन्ध से बच, जाता है और गाँव जलने से बच जाता है। इस प्रकार मुनि गाँव जलाने वाले पुरुष का और गाँव का दोनो का हित चाहते हैं ॥६५॥

इम माँसादि खावा तणा,
सूँस करावे हो मेटणा तस पाप।
वलि माँसे मरता जीव रा,
हितकारी हो मुनि मेटे सन्ताप ॥ ० ६६ ॥

भावार्थ :—जिस प्रकार गाँव जलाने वाले व्यक्ति को गाँव जलाने का त्याग करा कर मुनि उस पुरुष का और गाँव का दोनो का उपकार करते हैं उसी प्रकार माँस खाने वाले पुरुष को माँस खाने का त्याग करा कर मुनि उसको पाप से बचाते हैं और उस पुरुष के द्वारा माँस के लिए मारे जाने वाले प्राणी की प्राणरक्षा कर उसके दुःख सन्ताप को मिटाते है। इस प्रकार मुनि हिंसक और उसके हाथ से मारे जाने वाले जीव दोनो का हित चाहते है ॥६६॥

सूत्र भगोती शतक सातवें,
इम भाख्यो हो श्री दीनदयाल।
निर्दोषण नि भोगवे,
छः काया ना हो वाँछक करुणाल ॥ ० ६७॥
ज्याँ जीवाँ रा शरीर रो आहार ले,
त्याँ जीवाँ ना नि वंछक होय।
हिंसा छूट्याँ बच्या जीवड़ा,
उपकारी हो मुनि रक्षक जोय ॥ ० ६८॥

भावार्थ :—श्री भगवती सूत्र के सातवे शतक मे श्री तीर्थंकर भगवान् ने फरमाया है कि "निर्दोष आहार लेने से मुनि छः काया का रक्षक होता है" क्योकि जिन जीवो के शरीर से आहार वनता है उन जीवो के सचित्त शरीर को मुनि ग्रहण नहीं करते इसलिए मुनि उन जीवो के हितचिन्तक कहलाते हैं। इसी प्रकार हिंसक को हिसा का त्याग करा देने से उसके हाथ से मारे जाने वाले जो जीव बच जाते हैं मुनि उन जीवों के उपकारी और रक्षक कहलाते हैं। जिस प्रकार मुनि हिसक को हिंसा के पाप से वचाते है उसी प्रकार उसके हाथ से मारे जाने वाले जीवो की रक्षा भी चाहते हैं तभी 'छःकाय रक्षक' और 'छःकाय प्रतिपालक' ये मुनि के विशेषण भी सार्थक होते है ॥६७–६८॥

िव मारण में हो हिंसा ही,
नहीं मारे हो दया रा परिणाम।
मरता जीव बचाविया,
नसा वाचा हो दया रो ाम ॥ ० ६९॥

भावार्थ :—जीवो को मारना हिंसा कहलाती है और जीवो को न मारना दया कहलाती है तथा मरते हुए जीव को बचाना मनसा वाचा दया कहलाती है अर्थात् जो व्यक्ति जीवो को नहीं मारता वह उन जीवो पर अपने शरीर की अपेक्षा यानि शारीरिक दया करता है और जो व्यक्ति हिंसक को उपदेश देकर उसके हाथ से मारे जाने वाले जीवो की रक्षा करता है वह उन जीवो पर अपने मन और वचन से दया करता है क्योंकि उसके मन मे उन जीवो को बचाने के परिणाम होते है और वचन से वह उपदेश देकर उन जीवो की रक्षा करता ही है। इस प्रकार मरते हुए जीव की रक्षा करने से तथा किसी जीव की हिंसा न करने से मुनि मन, वचन, काया से दयावान् कहलाते हैं ॥६६॥

*केईक इण में इम कहे,
जीवाँ काजे हो नहीं दाँ उपदेश।

---

*जैसा कि वे कहते हैं :—

केईक अज्ञानी इम कहे,
छः काया काजे हो देवाँ धर्म उपदेश।
एकण जीव ने समझाविया,
मिट जावे हो घणा जीवाँ रा क्लेश॥
भव्य जीवाँ तुमे जिनधर्म ओलखो ॥१६॥

छः काय वरे शान्ति हुवे,
एवो भासे हो अन्यतीर्थी धर्म।
त्याँ भेद न पायो जिनधर्म रो,
ते तो भूल्या हो उदय आया अशुभ कर्म ॥१७॥

(अनु० ढाल ५ गाथा १६–१७)

ए हिंस ने समझाय ने,
नहीं मेटाँ हो घणा जीवाँ रा क्लेश ॥ ० ७० ॥

भावार्थ :—वे लोग कहते हैं कि 'छः काय के जीवो की शान्ति के लिए हम उपदेश नहीं देते हैं और एक हिंसक को समझाकर उसके हाथ से मारे जाने वाले बहुत से जीवो का क्लेश मिटाने के लिए भी हम उपदेश नही देते है।' तेरहपन्थ मत के प्रवर्त्तक भीषणजी ने 'अनुकम्पा ढाल' नामक पुस्तक मे इस विषय मे ढाल जोड़ रक्खी है जिसके दो पद्य यहाँ नीचे नोट मे उद्धृत किये गये हैं। उनका मतलब यह है :—

"कुछ लोग कहते है कि वे छ:काय के जीवो के घर में शान्ति होने के लिए धर्म का उपदेश देते है क्योकि एक जीव को समझा देने से बहुत जीवो का क्लेश मिट जाता है किन्तु छः काय के जीवो के घरो मे शान्ति होने के लिए उपदेश देना अन्य-तीर्थी लोगो का धर्म बतलाता है, जैनधर्म नहीं बतलाता। इस-लिए छः काय के घरो मे शान्ति होने के लिए उपदेश देने वाले जैनधर्म के रहस्य को नही जानते, वे भूले हुए है और उनके अशुभ कर्म का उदय हुआ है।"

इस प्रकार की अनर्गल बाते लिखकर भीषणजी ने जैनधर्म के विषय मे भ्रम फैलाया है ॥७०॥

सब जीवाँ रे शान्ति होवे,
एहवो भाखे हो दयाधर्मी धर्म।
गुरु तेने पापी है,
बतावे हो मिथ्यात रो भ्रम ॥ ० ७१ ॥

भावार्थ :—दया को प्रधान मानने वाला जैनधर्म तो यह बतलाता है कि "सभी जीवो को शान्ति हो' इस प्रकार का जैन-मुनि उपदेश देते है किन्तु सभी जीवो के शान्ति का उपदेश देने वाले को वे लोग पापी और मिथ्यात्वी कहते है यह उन लोगो की कितनी अज्ञानता है ।.७१॥

हिवे सद्गुरु कहे साँभलो,
सूतर थी हो निरणो लेवो जोय ।
छः काया रे शान्ति कारणे,
उपदेशे हो दयाधर्म ते होय ॥ शु० ७२ ॥

सूयगडाङ्ग श्रुतस्कन्ध दूसरे,
अध्ययन छठे हो भाख्यो पाठ रे माँय ।
त्रस थावर खेमङ्कर वीरजी,
धर्म भाखे हो मत हणो तस वाय ॥ शु० ७३ ॥

त्रस थावर शान्ति कारणे,
करुणा कही दसमा अँग रे माँय ।
ये सहू पाठ उत्थाप ने,
मिथ्यामति हो बोले झूठा वाय ॥ शु० ७४ ॥

भावार्थ :—सद्गुरु कहते हैं कि हे भव्य जीवो ! उन लोगो ने जैनजगत् मे जो झूठा भ्रम फैलाया है उसका उत्तर सूत्रपाठ की साक्षीपूर्वक दिया जाता है। अत. उसे ध्यानपूर्वक श्रवण करो ।

सूयगडाङ्ग सूत्र मे मरते जीव की प्राणरक्षा करने के लिए एवं छः काय जीवों की शान्ति के लिए भगवान् का उपदेश देना स्पष्ट लिखा है। वह गाथा यह है :—

समिच्च लोगं तस थावराणं, खेमङ्करे समणे ाहणे वा।
ाइक्खमाणे ि सहस्समज्झे, एगंतयं सारयति तहच्चे॥

(सूय० श्रुत० २ अध्य० ६ गाथा ४)

टीका :—"स्यादेतत् धर्मदेशनया प्राणिनां कश्चिदुपकारो भवत्युत नेति ? भवतीत्याह–'समिच्च लोग' मित्यादि सम्यग्यथावस्थितं लोगं षड्द्रव्यात्मकं मत्वा अवगम्य केवलालोकेन परिच्छिद्य त्रस्यन्तीति त्रसाः त्रसनामकर्मोदयाद् द्वीन्द्रियादयः, तथा तिष्ठन्तीति स्थावराः स्थावरनामकर्मोदयात् स्थावराः पृथिव्यादयस्तेषामुभयेषामपि जन्तूनां क्षेमं शान्तिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंकरः।"

अर्थात्—भगवान् महावीर स्वामी के धर्मोपदेश से प्राणियों का कुछ उपकार होता था या नहीं ?

उत्तर दिया जाता है कि होता था। भगवान् महावीरस्वामी केवलज्ञान से षड्द्रव्यात्मक लोक को यथार्थरूप से जानकर द्वीन्द्रियादिक त्रस और पृथ्वीकाय आदि स्थावर प्राणियों की स्वभाव से ही रक्षा, शान्ति एवं क्षेम करते थे।"

इस गाथा मे कहा है कि भगवान् महावीर स्वामी त्रस और स्थावर सम्पूर्ण प्राणियो के क्षेम यानि रक्षा करने वाले थे। टीकाकार ने भी लि ा है कि :—

"क्षेमं शान्तिः रक्षा तत्करणशीलः क्षेमंकरः"

अर्थात्—भगवान् सब प्राणियो का क्षेम, शान्ति एवं रक्षा करने वाले थे।

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि भगवान् मरते प्राणी की प्राण-रक्षा के लिए भी उपदेश देते थे, केवल हिंसक को हिंसा के पाप से छुड़ाने के लिए ही नही।

यदि कोई यह कहे कि हिंसा के पाप से बचा देना ही जीव की रक्षा या क्षेम है, मरने से बचाना नहीं, तो उससे कहना चाहिए कि इस गाथा मे स्थावर जीवो का भी क्षेम करने वाला भगवान् को कहा है। यदि वे मरते जीव की प्राणरक्षा के लिए उपदेश नहीं देते थे तो वे स्थावर जीवो का क्षेम करने वाले क्यो कहे गये? क्योकि स्थावर जीवो मे उपदेश-ग्रहण करने की योग्यता नही होती। इसलिए हिंसा के पाप से बचाने के लिए उनको उपदेश देना नहीं घट सकता किन्तु उनकी प्राणरक्षा के लिए उपदेश देना ही घटित होता है। अतः भगवान् मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए भी उपदेश देते थे। यह इस गाथा से स्पष्ट सिद्ध होता है।

प्रश्नव्याकरण सूत्र मे यह पाठ आया है कि :—

" सव्वजगजीवरक्खणदयट्ठयाए पावयणं भगवया सुकहियं।"

अर्थात्—संसार के सभी जीवो की रक्षारूप दया के लिए तीर्थंकर भगवान् ने प्रवचन फरमाया है।

यदि हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले जीवों की रक्षा करने के लिए उपदेश देना एकान्त पाप होता तो इस पाठ में संसार के सभी जीवो की रक्षारूप दया के लिए जैनागम का कथन होना क्यो कहा जाता ?

इस प्रकार शास्त्रों मे जगह-जगह मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देने का कथन किया गया है। इसलिए मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए उपदेश देने मे पाप कहने वालों को सूत्रपाठों के उत्थापक, मिथ्या-भाषण करने वाले मिथ्यात्वी समझना चाहिए।।७२-७४।।

* "शान्ति होवे छः य रे"
एवा नघड़ हो घरडावे ढोल।
मिथ्या उदय जे जीव रे,
तेना थी हो एवा ि ले बोल ॥ ० ७५ ॥

भावार्थ :—"छः काय जीवो के शान्ति नहीं हो सकती।" ऐसे अनर्गल वचन उन्हीं लोंगो के मुख से निकल सकते हैं जिनके भारी मिथ्यात्व का उदय है ॥७५॥

---

* जैसा कि वे कहते हैं :—

आगे अरिहन्त अनन्ता हुवा,
कहता-कहता हो नहीं आवे त्यॉ रो पार।
ते आप तरया और तारिया,
छः काया रे हो शान्ति न हुई लिगार ॥
(अनु० ढाल ५ गाथा २१)

व्यवहार शान्ति परजीव ने,
निश्चय थी हो निज री ते होय।
व्यवहार शान्ति उथापताँ,
निश्चय पिण हो खोय बैठा सोय ॥ शु० ७६॥

भावार्थ :—मरते प्राणी की प्राणरक्षा करना व्यवहार मे परजीव की शान्ति कहलाती है किन्तु निश्चय मे तो वह निजात्मा की ही शान्ति है। जिन लोगो ने व्यवहारशान्ति को उठा दी है वे लोग निजात्मा की शान्ति भी खो बैठे है ॥७६॥

आगे जिन अनन्ता हुआ,
छः काया रा हो शान्ति करतार।
दुःख मेटण उपदेश थी,
जगवच्छल हो जग ना सुखकार ॥ शु० ७७॥

जगनाथ जगबन्धु कह्या,
नन्दीसूत्रे हो गाथा प्रथम माँय।
सब जीव राखण उपदेश थी,
सुख थापे हो बन्धु पद पाय ॥ शु० ७८॥

भावार्थ :—गतकाल मे अनन्त तीर्थंकर भगवान् हो गये है वे सब छः काय जीवो के शान्तिकर्त्ता थे। श्री नन्दीसूत्र की प्रथम गाथा मे तीर्थंकर भगवान् के लिए जगत्वत्सल, जगन्नाथ, जगद्बन्धु आदि विशेषण दिये गये है जिनका अर्थ यह है कि अपने उपदेश द्वारा दुःखी प्राणियो के दुःखो को दूर करने वाले

होने से वे जगत्वत्सल, जगत्सुखकर्त्ता कहलाते हैं और समस्त जीवों की रक्षा का उपदेश देकर उन्हें सुख उपजाने के कारण वे जगद्बन्धु कहलाते हैं ॥७७–७८॥

शान्तिनाथ प्रभु सोलवाँ,
शान्ति करता हो सब लो रे माँय।
उत्तराध्ययन में देख लो,
गणधरजी हो गुण ज्याँरा गाय ॥ ० ७६ ॥

भावार्थ :—श्री उत्तराध्ययन सूत्र के अठारहवे अध्ययन में कहा गया है कि :—

"संती संति रे लोए पत्तो गइमणुत्तरं ।"

अर्थात्—"सब लोक मे शान्ति करने वाले सोलहवे तीर्थंकर भगवान् शान्तिनाथ मोक्ष को प्राप्त हुए।"

इस प्रकार गणधर देवो ने तीर्थङ्कर भगवान् के गुणो का वर्णन किया है। उन्होने तीर्थङ्करो को सब लोक मे शान्ति करने वाले बतलाये है। अतः जो लोग यह कहते हैं कि "आगे अनन्त तीर्थङ्कर हो गये है किन्तु किसी ने छःकाय जीवो के शान्ति नहीं की" यह कथन शास्त्र-विरुद्ध एकान्त मिथ्या है ॥७६॥

कही ही ने कितना हूँ,
छः काया रे हो शान्तिकरता रा नाम।
जो शान्ति होती छः ाय रे,
शान्तिकरता हो ि म होता श्याम ॥ ० ८० ॥

भावार्थ :—ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि छ:काय जीवों के शान्ति करने वाले कितने महापुरुषो के नाम गिनाये जाएँ ? क्योंकि गत-काल मे अनन्त तीर्थङ्कर हो चुके हैं वे सब छ:काय जीवो के शान्ति करने वाले थे। अत: जो लोग यह कहते है कि 'छ:काय जीवो के शान्ति नही होती' उनका कथन मिथ्या है क्योंकि यदि छ:काय जीवो के शान्ति न होती तो तीर्थङ्कर भगवान् शान्ति-कर्त्ता कैसे कहलाते ? अत. 'छ:काय जीवो के शान्ति नहीं होती' ऐसा कहना सूत्रविरुद्ध एकान्त मिथ्या है ॥८०॥

मिथ्या हेतु खण्डवा,
वलि भाखूँ हो सूत्र री साख।
सत्य स्वरूप ने ओलखी,
भव्य छोड़ो हो मिथ्यात रो पाख ॥ शु० ८१ ॥

भावार्थ :—'छ:काय जीवो के शान्ति नही होती' इस मिथ्या कथन के खण्डन के लिए शास्त्र का एक उदाहरण दिया जाता है। उससे सत्य स्वरूप को समझकर भव्य जीवो का कर्त्त-व्य है कि वे मिथ्या पक्ष को छोड़ दे ॥८१॥

—: था :—

राजप्रश्नीय सूत्र मे राजा परदेशी का वर्णन आया है वह इस प्रकार है :—

श्वेताम्बिका नाम की एक नगरी थी। नगरी से उत्तरपूर्व मे मृगवन नाम का एक उद्यान था। नगरी के राजा का नाम परदेशी था। वह बड़ा पापी था। धार्मिक बातो पर उसे विश्वास

न था। साधु-साध्वियो से वह घृणा करता था। राजा के चित्त नाम का सारथि था। वह बड़ा चतुर था। राज्य का प्रत्येक कार्य उसकी सलाह से होता था। उन्ही दिनो कुणाल देश की श्रावस्ती नामक नगरी मे जितशत्रु राजा राज्य करता था। एक दिन राजा परदेशी ने चित्त सारथि को जितशत्रु के पास एक बहुमूल्य भेट देने के लिए तथा उसकी राज्य-व्यवस्था देखने के लिए भेजा।

जिस समय चित्त सारथि श्रावस्ती मे ठहरा हुआ था उस समय तेईसवे तीर्थङ्कर भगवान् पार्श्वनाथ के शिष्यानुशिष्य श्री केशीश्रमण अपने पॉच-सौ शिष्यो के साथ वहॉ पधारे। उनका धर्मोपदेश सुनकर चित्त सारथि उनका उपासक बन गया। उसने श्रावक के बारह व्रत अङ्गीकार कर लिए।

कुछ दिनो बाद चित्त सारथि ने श्वेताम्बिका लौटने का विचार किया। उसने जितशत्रु से लौटने की अनुमति माँगी। जितशत्रु ने एक बहुमूल्य भेट परदेशी के लिए देकर चित्त सारथि को विदा किया। चित्त सारथि केशीश्रमण को वन्दना करने गया। उसने केशीश्रमण से श्वेताम्बिका पधारने की विनती की और प्रस्थान कर दिया।

ग्रामानुग्राम विहार करते हुए केशीश्रमण अपने शिष्यों सहित श्वेताम्बिका के मृगवन उद्यान मे पधारे। उद्यान-रक्षकों ने इसकी सूचना चित्त सारथि को दी। केशीश्रमण के आगमन की सूचना पाकर चित्त सारथि को बड़ी प्रसन्नता हुई। आनन्दित होता हुआ वह उद्यान मे पहुँचा और भक्तिपूर्वक केशीश्रमण को वन्दना-नमस्कार किया। तत्पश्चात् केशीश्रमण ने धर्मोपदेश

फरमाया जिसे सुन कर चित्त सारथि बड़ा प्रसन्न हुआ। वह केशीश्रमण से प्रार्थना करने लगा :—

"जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा पएसिस्स रण्णो तेसिं च बहूणं दुप्पयचउप्पयमियपसुपक्खीसरिसवाणं। तं जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं फलं होज्जा तेसिं च बहूणं समणमाहणभिक्खुयाणं। तं जइ णं देवाणुप्पिया! पएसिस्स बहुगुणतरं होज्जा सव्वस्स वि जणवयस्स।"

(रायप्रश्नीय सूत्र)

अर्थ :—"हे देवानुप्रिय! यदि आप परदेशी राजा को धर्म सुनावे तो बहुत गुणयुक्त फल हो। यह किसे हो? खुद राजा परदेशी को गुण हो और उसके हाथ से मारे जाने वाले द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु-पक्षी और सरीसृपो को हो। हे देवानुप्रिय! यदि आप राजा परदेशी को धर्म सुनावे तो बहुत-से श्रमण, माहण और भिक्षुको को तथा राजा परदेशी को और उनके सम्पूर्ण राष्ट्र को बहुत गुणयुक्त फल हो।"

चित्त सारथि की उपरोक्त प्रार्थना को सुन कर केशीश्रमण ने उत्तर दिया कि तुम्हारा कहना यथार्थ है किन्तु राजा के हमारे पास बिना आये हम क्या कर सकते है? चित्त सारथि ने किसी उपाय से राजा को वहाँ लाने का विचार किया।

एक दिन चित्त सारथि कुछ नये घोड़ो की चाल दिखाने के बहाने राजा को उधर ले आया। राजा बहुत थक गया था

इसलिए विश्राम करने मृगवन मे चला गया। वहाँ केशीश्रमण और उनकी पर्षदा को देख कर राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। पहले तो उसने श्रमण और श्रावक दोनो को मूर्ख समझा किन्तु चित्त सारथि के समझाने पर उसकी जिज्ञासावृत्ति बढ़ी। वह केशीश्रमण के पास गया और नम्रता से एक स्थान पर बैठ गया। केशीश्रमण के धर्मोपदेश को सुना। 'जीव और शरीर भिन्न-भिन्न है या एक' इस प्रकार के कई प्रश्न किये। केशीश्रमण ने बड़ी युक्तिपूर्वक राजा के प्रश्नो का उत्तर देकर उसका पूर्ण समाधान कर दिया। अपनी शङ्काओ का समाधान हो जाने पर राजा परदेशी केशीश्रमण का उपासक बन गया। उसने श्रावक के व्रत अङ्गीकार कर लिये। अब वह न्याय-पूर्वक राज्य करने लगा। प्रजा मे सब तरह से शान्ति छा गई, सारी प्रजा बहुत सुखी हो गई।

राजा धर्मध्यानपूर्वक अपना जीवन विताने लगा। अन्तिम समय मे शुभभावो से काल करके राजा सौधर्म देवलोक के सूर्याभ नामक विमान मे उत्पन्न हुआ। वहाँ से चव कर महाविदेह क्षेत्र मे जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध यावत् मुक्त होगा।

❀ ढाल ❀

चउ [illegible]णी श्रुतकेवली,
जगतार हो केशी गुरुराय।
सितंविका रा बाग में,
धर्मदेशना हो दीनी सुखदाय ॥शु० ८२॥

भावार्थ :—राजा को भेट देने के लिए श्रावस्ती मे गये हुए चित्त सारथि ने चार ज्ञान के धारक, श्रुतकेवली श्री केशीश्रमण को श्वेताम्बिका पधारने की विनती की। उसकी विनती को स्वीकार कर केशीश्रमण श्वेताम्बिका पधारे और मृगवन उद्यान मे ठहरे। वहाँ उन्होने सब जीवो के हितकारी धर्मोपदेश फरमाया ॥८२॥

चित्त श्रावक सुण हर्षियो,
करे विनती हो सुनिजे गुरुराय।
परदेशी अति पापियो,
पाप करने हो अति हर्षित थाय ॥ शु० ८३ ॥

धर्मी यो राजवी,
धर्म नी हो करे निशदिन थाप।
रुधिर नीर एक सम गिणे,
गाढा गाढा हो स्वामी कर रयो पाप ॥ शु० ८४ ॥

यो तो नर प पंखी नी,
वृत्ति आदि हो छेदी हर्षाय।
विनयभाव तिण में नहीं,
तेथी गुरुजन हो आदर नहीं पाय ॥ शु० ८५ ॥

देश दुःखी इण राय थी,
करड़ा लेवे हो हासिल दुःखदाय।

तेने धर्म सुणावियाँ,
　　बहु गुण र हो होसी निराय ॥ ० ८६ ॥

भावार्थ :—केशीश्रमण के धर्मोपदेश को सुन कर चित्त सारथि का चित्त अति हर्षित हुआ। वह उनसे प्रार्थना करने लगा कि हे स्वामिन्! हमारा राजा परदेशी अति पापिष्ठ है और पाप-कार्य करके अति हर्षित होता है। वह बड़ा अधर्मी है और सदा अधर्म की ही स्थापना करता है। रुधिर से उसके हाथ रंगे रहते है। वह रुधिर और पानी को एक समान गिनता है और महापापकर्म करता है। उसने मनुष्य, पशु-पक्षी आदि सबकी वृत्ति का उच्छेद कर दिया है। माता पिता गुरुजन आदि के प्रति उसमे लेशमात्र भी विनयभाव नही है। प्रजा से वह अति कठोर कर लेता है जिससे सारा देश दुःखी हो रहा है। इसलिए हे स्वामिन्! आप राजा परदेशी को धर्म सुनावे। उसे धर्म सुनाने से बहुत गुण होगा ॥८३-८६॥

राजा परदेशी को धर्म सुनाने से किन-किन को गुण होगा? जिसका विवरण सूत्र मे इस प्रकार खोला गया है :—

गुण होसी परदेशी राय ने,
　　प पंखी हो र ने गुण य।
श्रमण माहण भिखारी ने,
　　बहु गुणतर हो होसी सुखदाय ॥ शु० ८७ ॥

देश रे बहु गुण उपजसी,
　　हो जासी हो करड़ा हासिल दूर।

राय, जीव, भिक्षु, देश रे,
गुण हेते हो धर्म भाखो सनूर ॥ शु० ८८ ॥

भावार्थ :—१. स्वयं राजा परदेशी को गुण होगा। २. मनुष्य, पशु-पक्षी आदि जीवो को गुण होगा। ३. श्रमण, माहण और भिखारियों को गुण होगा। ४. कठोर हासिल के बन्द हो जाने से सारे देश को बहुत गुण होगा। इस प्रकार हे स्वामिन्! आपके धर्मोपदेश सुनाने से राजा, प्रजा, श्रमण माहण भिखारी और समस्त देश को बहुत गुण होगा। अतः आप राजा परदेशी को धर्मोपदेश सुनावे ॥८७—८८॥

राजा को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते है :—

जीव मारण परिणाम थी,
राजा रे हो माठा लागे पाप।
उपदेश थी टल जावसी,
गुण पासी हो परदेशी आप ॥ शु० ८६ ॥

भावार्थ :—जीवो को मारने रूप क्रूर परिणाम राजा के हृदय मे उत्पन्न होते है जिससे उसे गाढ़ पापकर्मो का बन्ध होता है। वह आपके उपदेश से टल जायगा। इस प्रकार स्वयं राजा परदेशी को गुण होगा ॥८६॥

जीवो को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते है :—

राय उपद्रव ना कोप थी,
मनुष्यादिक ने उपजे घणा क्लेश।

तेथी पाप में संचो करे,
राजा ऊपर हो घणो उपजे द्वेष ॥ शु० ६० ॥

याँ रो पाप क्लेश मिट जावसी,
राजा ऊपर हो मिट जासी द्वेष।
जीवाँ ने बहुगुण होवसी,
मुनिसरजी हो थारे उपदेश ॥ शु० ६१ ॥

भावार्थ :—राजा मनुष्यादि जीवो पर अत्याचार करता है और अनेक प्रकार के उपद्रवो द्वारा उन्हे पीड़ित करता है जिससे उन जीवो को क्लेश एवं दुःख होता है और उनके हृदय मे राजा पर द्वेष उत्पन्न होता है जिससे वे पाप-संचय करते हैं। हे भगवन्! आपके उपदेश से उन जीवो का क्लेश मिट जायगा और राजा पर उत्पन्न होने वाला द्वेष मिट जायगा। इस प्रकार उन जीवो का बहुत गुण होगा ॥६०-६१॥

श्रमण, माहण, भिखारी को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते है :—

वृत्तिछेद नृप करड़ी करे,
तेथी बाँधे हो मेला पापकर्म।
वृत्तिछेद राय छोड़सी,
उपदेशो हो स्वामी निर्मल धर्म ॥ शु० ६२ ॥

वृत्ति टूटाँ दुखिया थका,
श्रमणादि हो करे हाय विलाप।

निशदिन कोपे राय पे,
खोटी लेश्या हो खोटा बाँधे पाप ॥ शु० ६३ ॥

ते सगला ही शान्ति पावसी,
मिट जासी हो खोटा परिणाम ।
तेथी महागुण श्रमण माहण रे,
भिखारी रे हो होसी गुण रो धाम ॥ शु० ६४ ॥

भावार्थ :—इस समय राजा श्रमण, माहण, भिखारी लोगों की वृत्ति (आजीविका) का छेद करता है। वृत्तिछेद होने से दुःखी बने हुए वे हाय-त्राय एवं विलाप करते है। राजा पर क्रोध करते हैं। इस प्रकार खोटी लेश्या और बुरे परिणामो के उत्पन्न होने से उन लोगो के पाप-कर्म का बन्ध होता है। हे स्वामिन्! आपके उपदेश से जब राजा वृत्तिछेद करना छोड़ देगा तो उन सब लोगो के शान्ति हो जायगी। उनकी बुरी लेश्या एवं बुरे परिणाम मिट जावेगे। इस प्रकार राजा परदेशी को उपदेश देने से श्रमण, माहण और भिखारी लोगो को बहुत गुण होगा। अतः हे स्वामिन्! आप राजा परदेशी को उपदेश दे ॥६२–६४॥

देश को किस प्रकार गुण होगा सो बतलाते हैं :—

देश दुःखी राजा कियो,
करड़ा हासिल हो बाँधे करड़ा पाप ।
ते छोड़ देसी उपदेश थी,
तेथी टलसी हो तेना प सन्ताप ॥ ० ६५ ॥

देशवासी राजा थकी,
नित्य पावे हो गाढा सन्ता ।
राजा पर कोपे घणा,
तेथी बन्धे हो घणा गाढा पाप ॥ ० ९६॥

देश-कलह मिट जावसी,
टल जासी हो मेला प विचार ।
देश ने बहुगुण निपजसी,
तुमे रो हो स्वामी ध उच्चार ॥ ० ९७॥

भावार्थ :—कठोर कर (हासिल) वगैरह लेने से सारा देश दुःखी हो गया है। देशवासी सभी लोग महान् सन्ताप को प्राप्त हो रहे हैं और राजा पर ोध करते हैं जिससे उन्हे महा-पाप-कर्मबन्ध होता है। हे भगवन्! आपके उपदेश से राजा कठोर कर (हासिल) आदि लेना छोड़ देगा तो देशवासियों का पाप, सन्ताप और बुरे परिणाम मिट जावेगे। इस प्रकार सारे देश को बहुत गुण होगा। अतः हे भगवन्! आप राजा परदेशी को धर्मोपदेश फरमावे ॥९५–९७॥

चित्त विनती री शुद्ध ाव ी,
शुद्ध श्रद्धा री हो तुमे करो पिछाण ।
ारी आ मोटको,
समकि धर हो गुणार ँ री ाण ॥ ० ९८॥

भावार्थ :—गुणरत्नों के भण्डार, समकित-रत्न को धारण करने वाले, बारह व्रतधारी चित्त श्रावक ने शुद्ध भावपूर्वक केशी-श्रमण से विनती की थी कि हे भगवन ! आप राजा परदेशी को धर्म सुनावें जिससे स्वयं राजा को, उसके हाथ से मारे जाने वाले बहुत-से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु-पक्षी, सरीसृपादि को और श्रमण, माहण, भिखारी को तथा सम्पूर्ण देश को बहुत गुणयुक्त फल हो ॥६८॥

जो जीव भिखारी देश री,
करुणा में हो नहीं श्रद्धतो धर्म।
अधर्म अर्ज तिण किम करी,
जिन वचनाँ रो हो ते तो जाणतो मर्म ॥ शु० ६६॥

भावार्थ :—चित्त श्रावक ने जो विनती की है उसका अर्थ स्पष्ट है कि राजा परदेशी को धर्म सुनाने से वह हिंसा करना छोड़कर हिंसा के पाप से बच जायगा और उसके हाथ से मारे जाने वाले द्विपद, चतुष्पद आदि प्राणियों की प्राणरक्षा हो जायगी। इसलिए राजा परदेशी को हिंसा के पाप से बचने का गुण होगा और उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों को प्राणरक्षारूप गुण होगा। इन दोनों ही लाभ के लिए चित्त श्रावक ने केशीश्रमण से राजा परदेशी को धर्म सुनाने की प्रार्थना की है, केवल परदेशी को हिंसा के पाप से बचाने के लिए ही नहीं। अतः हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों की प्राणरक्षा के लिए भी साधु उपदेश देते हैं सिर्फ हिंसक को हिंसा के पाप से बचाने के लिए ही नहीं। यह चित्त श्रावक की प्रार्थना के लिए आये हुए राजप्रश्नीय सूत्र के मूलपाठ से स्पष्ट सिद्ध होता है।

यदि कोई यह कहे कि यह पाठ चित्त श्रावक की प्रार्थना को बतलाने के लिए आया है। इसलिए यद्यपि इस पाठ मे द्विपद, चतुष्पद आदि प्राणियो की प्राणरक्षा के लिए केशी स्वामी से धर्मोपदेश देने की प्रार्थना की है तथापि इससे साधुओं का मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने के लिए धर्मोपदेश देना सिद्ध नही हो सकता क्योकि चित्त श्रावक अज्ञानवश भी मरते जीव की रक्षा करने के लिए धर्मोपदेश देने की मुनि से प्रार्थना कर सकता है तो इसका उत्तर यह है कि चित्त प्रधान कोई मामूली मनुष्य नही था किन्तु बारह व्रतधारी श्रावक था। वह जीवरक्षा मे धर्म या अधर्म होना जानता था। अतः इस पाठ से मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देना स्पष्ट सिद्ध होता है ॥९९॥

जीव बचावण कारणे,
उपदेशे हो चित्त श्रद्धतो पाप।
चौनाणी गुरु गले,
विनती करतो हो इणविध ते साफ ॥ शु० १००॥

स्वामी हिंसा छोड़ावो राय री,
परदेशी हो होसी गुण रो धार।
ीव बचे मरता थ ा,
त्याँ जीवाँ रे हो गुण नाहीं लिगार ॥ शु० १०१॥

तिम श्रमण भि ारी देश रे,
गुण श्रद्धयाँ हो स्वामी लागे मिथ्यात।

केवल राय ने तारणो,
या श्रद्धा हो स्वामी परम विख्यात ॥ शु० १०२॥

भावार्थ :—मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने के लिए उपदेश देने मे यदि चित्त श्रावक पाप मानता तो वह चार ज्ञान के धारक केशीश्रमण के सामने इस तरह विनती करता कि "हे स्वामिन्! परदेशी राजा की हिंसा को छुड़ाने के लिये आप उसे उपदेश सुनावे ताकि वह गुणो का धारक बनेगा एवं उसे गुण होगा। किन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा होने मे कुछ भी गुण नही है और इसी प्रकार श्रमण, माहण, भिखारी को तथा देश को कोई गुण नही है बल्कि मरते प्राणी की प्राण-रक्षा मे तथा श्रमण, माहण, भिखारी के तथा देश के सन्ताप को मिटाने मे गुण मानने से मिथ्यात्व लगता है। इसलिए हे स्वामिन्! सिर्फ राजा के पाप को टालने के लिए और राजा को तारने के लिए उपदेश देने मे धर्म मानना यही शुद्ध श्रद्धा है॥" १००-१०२॥

पिण चित्त इम नहीं भाषियो,
ते तो श्रद्धतो हो जीव बचियाँ में धर्म।
तेथी विनती करी गुरुराय ने,
जीवाँ रे हो कह्यो गुण रो मर्म॥ ० १०३॥

भावार्थ :—परन्तु चित्त श्रावक ने उपरोक्त रूप से विनती नही की क्योंकि वह तो जीव बचाने मे धर्म श्रद्धता था। इसलिए चार ज्ञान के धारक गुरु महाराज के सामने उसने यह विनती की थी कि हे भगवन्! राजा परदेशी को उपदेश देने से उसे स्वयं

को गुण होगा और उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियों की प्राणरक्षा हो जायगी जिससे उन जीवों को भी गुण होगा ॥१०३

जीव बचावे ते पाप में,
या श्रद्धा हो श्र री नाँय।
जीव बचे त्याँने गुण होवे,
या श्रद्धा हो चित्त री सुखदाय ॥ शु० १०४॥

जीव बचा णो धर्म में,
दुखिया रो हो ते तो जाणतो मर्म।
सगलाँ रे गुण रे कारणे,
कीधी विनती हो उपदेशो धर्म ॥ ० १०५॥

भावार्थ :—'मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने मे पाप होता है' ऐसी श्रद्धा चित्त श्रावक की नहीं थी किन्तु 'जीवों की रक्षा करने मे धर्म होता है' ऐसी चित्त श्रावक की श्रद्धा थी इसीलिए उसने सबके गुण होने के लिये विनती की थी अर्थात् उसने केशी मी से विनती की थी कि हे भगवन्! आप राजा परदेशी को धर्म सुनावे जिससे स्वयं राजा को गुण होगा, उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा हो जाने से उन जीवो को गुण होगा, वृत्तिछेद के रुक जाने से श्रमण माहण भिखारी को गुण होगा और कठोर कर (हासिल) आदि के मिट जाने से सम्पूर्ण देश को गुण होगा ॥१०४-१०५॥

जो कसर होती इण थन में,
के ी स्वामी हो हता तिण वार।

जीव, भिखारी, देश रे,
गुण श्रद्धाँ हो म्हें तो नहीं लिगार ॥ शु० १०६ ॥

सगलाँ रे गुण रे कारणे,
विनती कीधाँ हो समकित गुण जाय।
थारे श्रद्धा में दूषण ऊपनो,
आलोवो हो जिनधर्म रे न्याय ॥ शु० १०७ ॥

पिण चित्त श्रावक जिम श्रद्धता,
तिम श्रद्धता हो श्री केशी स्वाम।
दोनों री श्रद्धा एक थी,
तेथी नहीं लीनो हो निषेध रो नाम ॥ शु० १०८ ॥

मुनि जीव, भिखारी, देश रे,
गुण हेते हो उपदेशे धर्म।
या श्रद्धा चित्त शुद्ध जाणता,
विनती कीधी हो जैनधर्म रे मर्म ॥ शु० १०९ ॥

केशीश्रमण गुरुराज री,
चित्तजी री हो श्रद्धा थी ए।
विनती मानी भाव थी,
चार बाताँ री हो बतायो लेख ॥ शु० ११० ॥

भावार्थ :—चित्त श्रावक ने केशी स्वामी के सामने चार बातों के लिए अर्थात्—(१) राजा की हिंसा छुड़ाने के लिए, (२) उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की रक्षा के लिए, (३) श्रमण, माहण, भिखारी के सन्ताप को मिटाने के लिए और (४) देश की सुख-शान्ति के लिए विनती की थी। यदि इस विनती मे किसी प्रकार की त्रुटि होती अर्थात् मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने मे एकान्त पाप होता तो केशी स्वामी चित्त श्रावक को उसी समय समझा देते कि "हे देवानुप्रिय! राजा परदेशी की हिंसा छुड़ाने के लिए धर्मोपदेश देना ठीक है परन्तु उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देना उचित नही है क्योंकि मरते जीव की रक्षा के लिए उपदेश देना एकान्त पाप है। इसी प्रकार श्रमण, माहण, भिखारी के गुण के लिए अर्थात् उनके सन्ताप को मिटाने में और देश के गुण के लिए अर्थात् देश की सुख-शान्ति के लिए उपदेश देना भी एकान्त पाप है। इन कार्यों मे गुण होता है ऐसी हमारी श्रद्धा नही है अर्थात् हम इन कार्यों मे गुण होना नहीं मानते। हे चित्त श्रावक! तुमने जीवो की रक्षारूप गुण के लिए तथा श्रमणादि के और देश के गुण के लिए विनती की है इससे तुम्हारी समकित मे दोप लग गया है इसलिए तुम इस दोष की आलोचना करो।" इस प्रकार केशी स्वामी चित्त श्रावक को समझा देते क्योकि आज भी यह प्रत्यक्ष देखा जाता है कि यदि कोई व्यक्ति एकान्त पाप-कार्य करने का कथन साधु के सामने करे तो साधु उसको उसी वक्त समझा कर वह एकान्त पाप का कार्य करने से मना करते है जैसे कि साधु के समक्ष यदि कोई हिंसादि पाप-कार्य करने का विचार प्रकट करे तो साधु उस कार्य का निषेध करते हैं तो यदि मरते प्राणी की प्राणरक्षा का

कार्य एकान्त पाप का होता तो चित्त श्रावक की विनती सुनकर क्या केशी स्वामी उसको इस कार्य के लिए मना नहीं कर देते ? किन्तु अवश्य कर देते क्योंकि भला यह कब सम्भव है कि चार ज्ञान के धारक श्रुतकेवली श्री केशी स्वामी अपने सामने एकान्त पाप के कार्य का कथन करने वाले श्रावक को मना नहीं करते ? प्रत्युत उन्होंने तो मरते प्राणी की प्राणरक्षा के लिए तथा श्रमण, माहण, भिखारी और देश के गुण के लिए धर्मोपदेश देने की चित्त श्रावक की विनती को स्वीकार किया है। इससे यह स्पष्ट सिद्ध है कि चित्त श्रावक और केशी स्वामी की श्रद्धा एक थी अर्थात् जिस प्रकार चित्त श्रावक मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने के लिए तथा श्रमण, माहण, भिखारी और देश के गुण के लिए उपदेश देने मे धर्म श्रद्धता था उसी प्रकार केशी स्वामी भी इन उपरोक्त कार्यों के लिए उपदेश देने मे धर्म श्रद्धते थे। दोनों की श्रद्धा एक थी। इसलिए चित्त श्रावक ने इन चार वातो के लिए अर्थात् (१) राजा परदेशी की हिंसा छुड़ाने के लिए, (२) उसके हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा के लिए, (३) श्रमण, माहण, भिखारी के सन्ताप को मिटाने के लिए और (४) सम्पूर्ण देश के सन्ताप को मिटाकर सुख-शान्ति के लिए धर्मोपदेश देने की विनती की थी। चित्त श्रावक की इस विनती को श्री केशी स्वामी ने भावपूर्वक स्वीकार की थी।

राजप्रश्नीय सूत्र के उपरोक्त उदाहरण से जीवरक्षा मे धर्म होना स्पष्ट सिद्ध होता है तथापि हिंसक के हाथ से मारे जाने वाले प्राणियो की प्राणरक्षा के लिए धर्मोपदेश देने मे जो एकान्त पाप वतलाते है उन्हें मिथ्यावादी और उत्सूत्र प्ररूपणा करने वाले समझना चाहिए ॥१०६-११०॥

छोड़ो रे छोड़ो मिथ्यात ने,
जीवरक्षा रो हो तुमे श्रद्धो धर्म।
त्यागो कथन कुगुरु तणो,
खोटो घाल्यो हो अनुकम्पा में भर्म॥ ० १११॥

भावार्थ :—'मरते प्राणी की प्राणरक्षा करने मे पाप होता है' यह कुगुरुओ का कथन है। अनुकम्पा जो कि परम धर्म का कार्य है उसमे उन कुगुरुओ ने पाप होने का मिथ्या भ्रम घुसेड़ रक्खा है। उन कुगुरुओ के भ्रमजाल मे फँसे हुए भोले प्राणियों पर अनुकम्पा करके सद्गुरु कहते है कि तुम उस भ्रम को दूर कर जीवरक्षा मे धर्म का श्रद्धान करो जिससे आत्मा का कल्याण हो। अन्यथा ये कुगुरु तो उस कहावत को चरितार्थ करने वाले हैं :—

"आप डूबे पाँडियो, ले डूबे यजमान।"

जीवरक्षा रूप परम धर्म के कार्य मे पाप का श्रद्धान कर ये कुगुरु तो संसारसागर मे डूबते ही हैं किन्तु इस खोटी श्रद्धा का उपदेश देकर भोले प्राणियो को भी अपने भ्रमजाल मे फँसा कर अपने साथ ही संसारसागर मे डूबाते है। अतः विवेकी पुरुषों का कर्त्तव्य है कि वे ऐसे कुगुरुओ के भ्रमजाल मे न फँसें और ऐसे गुरुओं की संगति से सदा बचते रहे॥१११॥

कोई पतिव्रता सती तणो,
एक पापी हो खण्डे शील विशेष।
देह त्याग माँड्यो सती,
तिहाँ निजन हो दीनो उपदेश॥ ० ११२॥

प्रबोध पापी पामियो,
सती नार ना हो रह्या शील ने प्राण ।
नि उपकारी बेहूना,
तुमे समझो हो समझो नि सुजाण ॥ शु० ११३॥

भावार्थ :—किसी अटवी में कोई पापी पुरुष किसी पतिव्रता सती स्त्री के शील को खण्डित करने के लिए उद्यत हुआ। उस समय अपने शील की रक्षा का अन्य कोई उपाय न देख कर वह सती अपने प्राण-त्याग करने के लिए तैयार हो गई। संयोग-वश उधर कोई मुनि आ निकले। उन्होंने उस पापी को धर्मोपदेश दिया। मुनि के उपदेश से वह पापी पुरुष समझ गया। उसने अपना पाप-विचार छोड़ दिया और सदा के लिए परस्त्रीगमन का त्याग कर सदाचारी बन गया। उधर उस पतिव्रता सती स्त्री के शील और प्राण दोनो की रक्षा हो गई। इस प्रकार मुनि उस पापी पुरुष के और उस पतिव्रता स्त्री के दोनो के उपकारी हुए॥ ११२-११३॥

एक मौनव्रती मुनिराज री,
कोई पापी हो करतो थो घात ।
उपदेश देई समझावियो,
रक्षा कीधी हो नि नी विख्यात ॥ शु० ११४॥
जो बकरो बच्याँ पाप अट्ठसी,
तिण रे लेखे हो मुनि बचिया रो पाप ।
जो मुनि बच्या करुणा कहो,
तो बकरो बचिया रो दयाधर्म है साफ ॥११५॥

भावार्थ :—किसी अटवी मे कोई एक मुनिराज जा रहे थे। वे मौनव्रती थे अर्थात् उस दिन उनके मौन था। कोई पापी पुरुष उनकी घात करने को तैयार हो गया। इतने ही मे कोई दयालु पुरुष उधर आ निकला। उसने उस पुरुष को उपदेश देकर समझा दिया जिससे वह पुरुष समझ गया और उसने अपना पाप-विचार छोड़ दिया। इस प्रकार उस दयालु पुरुष के उपदेश से वह मुनि-हत्या के पाप से बच गया और मुनिराज की प्राणरक्षा हो गई।

इसी प्रकार एक हिंसक एक बकरे को मार रहा था। एक दयालु पुरुष ने उसको उपदेश दिया जिससे उसने बकरे को छोड़ दिया। इस प्रकार हिसक हिसा के पाप से बच गया और बकरे की प्राणरक्षा हो गई।

जो लोग बकरे की प्राणरक्षा को पाप कहते हैं उन्हे मुनि की प्राणरक्षा मे भी पाप मानना पड़ेगा। यदि मुनि की प्राणरक्षा में पाप न मानकर धर्म मानते हैं तो उन्हे बकरे की प्राणरक्षा मे भी धर्म मानना चाहिए क्योंकि जिस प्रकार मुनि की प्राणरक्षा दया का कार्य है उसी प्रकार बकरे की प्राणरक्षा भी दया का कार्य है। ये दोनो कार्य समान हैं। इसलिए एक मे धर्म और दूसरे में पाप मानना अयुक्त है। दोनो दयाधर्म के कार्य हैं अतः दोनो मे धर्म मानना चाहिए ॥११५॥

खोटा कुहेतु खण्डणी,
ढाल जोड़ी हो राजलदेसर माँय।
ँचे शुद्ध श्रद्धताँ,
श्रद्धा नो हो निर ल ण पाय ॥
द्ध श्रद्धा ने ओलखो ॥११६॥

भावार्थ :—कुगुरुओ के कुहेतुओ का खण्डन करने वाली यह ढाल बीकानेर राज्यान्तर्गत राजलदेसर मे जोड़ी गई है। सरलभावपूर्वक सच्चे मन से जो पुरुष इस पर श्रद्धा करेगा वह शुद्ध श्रद्धा यानि शुद्ध समकितरूप निर्मल गुण को प्राप्त करेगा ॥ ११६॥

॥ इति पञ्चम ढाल सम्पूर्ण ॥

श्री जालमसिंह मेडतवाल द्वारा श्री गुरुकुल छापाखाना, ब्यावर में मुद्रित ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
ख	४	स्वमत्यानुसार	स्वमत्यनुसार
ग	२	वाले	वालो
घ	१	यह	ये
घ	२	होगा	होगी
ङ	१२	पतिव्रता का पति स्त्री की	पतिव्रता स्त्री पति की
६	१८	तब	तक
६	५	वहीं	वहाँ
६	२१	झलियो	झेलियो
१०	१३	नहीं	नांही
१४	१६	सुत कंचेति	सुतकं चेति
१५	१६	ओर	और
२५	२	क्यो	क्यों हुआ
३०	१६	चत्तार	चत्तारि
३३	६	हठा	हटा
५०	१३	याचना	प्रार्थना
५३	८	रयणा देवी ने	×
५३	२५	अधु०	अनु०
६३	१६	योगी	बोगी
६३	२३	(द्विमुख-योगी)	(द्विमुखी-बोगी)
६६	१०	की	का
६६	१३	थी	था
६६	१६	गर्भ	गर्भ मे
७५	१३	गर्भ रे	गर्भ ने

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७७	२०	भिक्खुपडिमा	भिक्खु पडिमा
८२	१४	उन्नीसवे	उनतीसवें
८४	२१	छुटती	छूटती
८५	१	पायो	पापो
८५	२३	सथ	संघ
८८	८	यहि	यदि
९०	१४	बात	बात
९०	१७	के	का
९४	६	अमयकुमार	अभयकुमार
९४	२१	समझिया	सगझिया
९७	११	न	ने
१००	१९	द्विन्द्रियादिक	द्वीन्द्रियादिक
१०२	२	विशिष्ट	विशिष्ट
१०६	८	होती हो	न होती हो
१०७	५	ज्ञानरूपी	ज्ञानरूपी सूर्य के
१०७	२०	अवसर	अवसर पर
१०९	१५	हूँसो	हुसी
११३	१६	करने	कहने
११६	१७	कुकर्मी	कोई कुकर्मी
१२१	२	तित	तिण
१२३	१७	राज	राजा
१२३	१७	सुनाआ	सुनाओ
१३६	१९	भापा समति	भापा समिति
१४२	१५	तड़फड़ावे	तड़फड़ावे
१४२	१९	अवसर	अवसर पर

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१६२	१२	हिंसक	हिंसक हैं
१६७	४	संक्षिप्त कथा	पूर्व सम्बन्ध
१६८	१८	थो	यो
१७२	१०	जीवियासंसपओगे	मरणासंसपओगे
१७२	१०	जीविताशंसप्रयोग	मरणाशंसप्रयोग
१७२	१४	सो	से
१८३	४	अपनी	किन्तु अपनी
१८८	८	शरणागण	शरणागत
१९२	४	रक्षति	रक्षतीति
१९२	५	इति	×
१९३	४	तोल	बोल
२०१	१४	भाकार्थ	भावार्थ
२०८	६	के	को
२२१	१८	मागा	भागा
२२७	१८	काय	कार्य
२२९	४	है	×
२३२	२	र	रे
२३६	४	परोपकार बुद्धि	परोपकार बुद्धि रहित
२३६	१३	साधुशक्ति	साधु शक्ति
२३७	१०	उज्झमाणीए	इज्झमाणिए
२३७	१०	उज्झइ	डज्झइ
२३८	१२	मे	में
२४०	४	की	करी
२४०	२१	ढाल ३	ढाल २
२५१	२१	उपतर्ग	उपसर्ग

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५६	१८	थी	था
२६३	८	गोह	मोह
२६३	२०	कहा है	कहे हैं
२८१	१६	न्याय	नाय
२८५	१८	वेयावच्च	वेयावच्च आदि
२८८	२	ओलो	ओलो
२८६	४	कैसो	कैसा
२६१	१	माधजी	माधुजी
२६२	१०	तो सुगतो	ते सुगते
२६५	४	वन्ध	वन्ध
२६६	३	तृष्णा	तृषा
२६६	८	थे	थें
२६६	२३	भस	भैस
२६६	१०	उनका	उन
३००	११	निर्वद्य	निरवद्य
३०२	१४	थारी	थांरी
३१२	१२	प्रप्ति	प्राप्ति
३१२	१७	हाट मे	हाट
३१४	११	छोड्या	छोड्यां
३२१	११	द्राष्टान्तिक	दार्ष्टान्तिक
३३४	६	निजरा	निर्जरा
३६८	३	भायार्थ	भावार्थ